Bachelor of Arts (Sanskrit)

बैचलर ऑफ आर्ट्स (संस्कृत)

द्वितीय सेमेस्टर - बी0ए0एस0एल (N)- 121

वैदिक कर्मकाण्ड एवं अनुष्ठान

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी-263139

Toll Free : 1800 180 4025
Operator : 05946-286000
Admissions : 05946-286002
Book Distribution Unit : 05946-286001
Exam Section : 05946-286022
Fax : 05946-264232
Website : http://uou.ac.in

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति **बी0ए0एस0एल (N)- 121**

कुलपति (अध्यक्ष)
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
प्रोफेसर ब्रजेश कुमार पाण्डेय, संकाय अध्यक्ष
संस्कृत एवं प्राच्य विद्या अध्ययन केंद्र,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
प्रोफेसर गिरीश चन्द्र पन्त,
संस्कृत विभागाध्यक्ष, जामिया मिल्लिया
इस्लामिया विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
प्रोफेसर जया तिवारी,
संस्कृत विभागाध्यक्षा, कुमाऊँ विश्वविद्यालय,
नैनीताल

प्रोफेसर रेनू प्रकाश (संयोजक)
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
डॉ0 देवेश कुमार मिश्र,
एसो0 प्रोफे0, इन्दिरा गान्धी राष्ट्रीय मुक्त
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।
डॉ0 नीरज कुमार जोशी,
असि0 प्रोफे0-ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक एवं सम्पादन

डॉ0 नीरज कुमार जोशी
असि0 प्रोफे0 ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	खण्ड	इकाई संख्या
डॉ0 प्रभाकर पुरोहित असि0 प्रोफे0 ए.सी.,संस्कृत विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**खण्ड 1** **खण्ड 2**	(इकाई 1,4,5,6) (इकाई 1 से 5)
डॉ0 प्रमोद जोशी असि0 प्रोफे0 ए.सी.,संस्कृत विभाग , उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**खण्ड 1**	(इकाई 02 एवं 03)
डॉ0 नीरज कुमार जोशी असि0 प्रोफे0 ए.सी., संस्कृत विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**खण्ड 3**	(इकाई 1)
श्री राहुल पन्त, असि0 प्रोफे0 ए.सी., संस्कृत विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**खण्ड 3**	(इकाई 2 से 5)

प्रकाशक: (उ0 मु0 वि0, हल्द्वानी) -263139
कॉपीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
पुस्तक का शीर्षक- वैदिक कर्मकाण्ड एवं अनुष्ठान (N)- 121
प्रकाशन वर्ष : 2024
ISBN No.
मुद्रक:

नोट:- इस पुस्तक में लिखित इकाइयों से सम्बन्धित किसी भी प्रकार की आपत्ति के निस्तारण का उत्तरदायित्व इकाई लेखक का होगा । इसका उपयोग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना अन्यत्र किसी भी रूप में नहीं किया जा सकता ।

अनुक्रम

खण्ड- एक (Section-A) नित्य-नैमित्तिक अनुष्ठान विधि	**पृष्ठ संख्या 01-04**
इकाई-1 नित्य कर्म विधि	5-25
इकाई-2 षोडशोपचार पूजन विधि	26-40
इकाई-3 पंचांग परिचय एवं महत्त्व	41-52
इकाई-4 मुहूर्त विचार	53-66
इकाई-5 नवग्रह शान्तिविधि एवं महत्त्व	67-86
इकाई- 6 मूल गण्डान्त शांति विधि	87-101
खण्ड- दो (Section-B) वैदिक कर्मकाण्ड का स्वरूप	**पृष्ठ संख्या 102**
इकाई-1 कर्मकाण्ड का उद्भव एवं विकास	103-116
इकाई-2 पञ्च भू संस्कार एवं अग्नि स्थापना विधि	117-130
इकाई-3 कुशकण्डिका विधि	131-142
इकाई-4 कुण्ड निर्माण एवं होम विधि	143-155
इकाई-5 पूर्णाहुति विधान	156-170
खण्ड- तीन (Section-C) संस्कारों का स्वरूप एवं महत्व	**पृष्ठ संख्या 171**
इकाई-1 संस्कार अर्थ एवं परिभाषा	172-191
इकाई-2 गर्भाधान-पुंसवन-सीमन्तोन्नयन-जातकर्म संस्कार विधि एवं महत्त्व	192-205
इकाई-3 नामकरण-निष्क्रमण-अन्नप्राशन-चूड़ाकर्म संस्कार विधि एवं महत्त्व	206-218
इकाई-4 विद्यारंभ-कर्णवेध-यज्ञोपवीत-वेदारम्भ संस्कार विधि एवं महत्त्व	219-233
इकाई-5 केशान्त-समावर्तन-विवाह-अन्त्येष्टि संस्कार विधि एवं महत्त्व	234-249

खण्ड- एक (Section-A)
नित्य-नैमित्तिक अनुष्ठान विधि

इकाई- 1 नित्य कर्म विधि

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उदेश्य
1.3 नित्य कर्म का परिचय एवं महत्व
1.4 नित्यकर्म में प्रातःजागरण
1.5 नित्य कर्म में स्नान का महत्व
1.6 नित्य संध्या का महत्व
1.7 तर्पण के प्रकार एवं महत्व
1.8 नित्यकर्म में पञ्च महायज्ञ एवं संकल्प का महत्व
1.8.1.ब्रह्मयज्ञ
1.8.2. देवयज्ञ
1.8.3 पितृयज्ञ
1.8.4 भूतयज्ञ
1.8.5 अतिथि (मनुष्य)
1.8.6 संकल्प
1.9 नित्यकर्म में गणेश-अम्बिका पूजन व कलश स्थापन विधान
1.10 सारांश
1.11 पारिभाषिक शब्दावली
1.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रिय अध्येताओं!

प्रस्तुत इकाई वैदिक कर्मकाण्ड एवं अनुष्ठान BASL (N) 121 नामक पाठ्यक्रम के नित्य-नैमित्तिक अनुष्ठान विधि नामक खण्ड की प्रथम इकाई "नित्य कर्म विधि" नामक शीर्षक से सम्बंधित है।

भारतीय मनीषा के ज्ञान का मूल स्रोत वेद हैं, वेदों के अनुसार हमें प्रत्येक कर्म को शास्त्रोक्त विधि से ही करने का निर्दिष्ट शास्त्रों से प्राप्य है। अब हम सर्व प्रथम ये समझने का प्रयत्न करते हैं कि नित्यकर्म किसे कहा जाता है - नित्य (प्रतिदिन) किए जाने वाला कर्म को नित्य कर्म कहा जाता है। एवं नित्य का वैज्ञानिक महत्व भी है। इस श्रेणी में एक प्रातः काल से दूसरे प्रातः काल तक शास्त्र विधि द्वारा जो कृत्य आचरण होता है या जिन कर्मों को हम मानव करते हैं – जिनमें ब्रह्म मुहूर्त में जागरण, देव ऋषि एवं गुरुजनों का स्मरण, शौच आदि से निवृत्ति, वेदों का अध्ययन व अभ्यास, यज्ञ, भोजन, अध्ययन, लोक कार्य इत्यादि ये सब नित्य क्रियायें या नित्य कर्म कहलाते हैं।

आज के व्यस्ततम जीवनचर्या में इन सबका पालन करना थोड़ा आम जनमानस के लिए कठिन सा प्रतीत होता है। परन्तु कौन-कौन से नित्यनियम ऐसे हैं जिनका पालन करना हमारे लिए अति आवश्यक हैं, उनका सामाजिक – आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक महत्व क्या है इन सभी बातों का अध्ययन हम इस इकाई के अंतर्गत अध्ययन करेंगे।

1.2 उदेश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- प्रातः कालीन नित्य कर्म विधि को समझ सकेंगे।
- नित्य कर्म विधि में जागरण, स्नान, संध्या की विधि को जान सकेंगे।
- नित्य कर्म में तर्पण विधान, गणेश पूजन, करने की विधि को जान पाएँगे।
- नित्य कर्म में पंचमहायज्ञ, स्वस्तिवाचन,कलश स्थापन के बारे में समझ सकेंगे।
- नित्यकर्म का हमारे जीवन में क्या प्रभाव है इस विषय को समझ सकेंगे।
- नित्यकर्म के वैज्ञानिक स्वरुप से भी परिचय हो पायेंगे।

1.3 नित्य कर्म का परिचय एवं महत्व

नित्यकर्म का मनुष्य जीवन में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका रही है। जो की अन्य प्राणियों से भिन्नता सिद्ध करती है। हमारे यहाँ हिन्दू धर्मशास्त्रीय व्यवस्था में प्रातः जागरण से लेकर रात्री शयन तक की समस्त दिनचर्या रात्री चर्या को नित्यकर्म शव्द हमारे पूर्वजों ऋषियों ने आचायों ने दिया है। जिसके आधार पर मनुष्य की दिनचर्या निश्चित होती है। नित्य जागरण करने से ही सभी तापों का शमन हो जाता है।

नित्य कर्म विधि का अर्थ कर्मकाण्ड से भी है। जो निरन्तर किया जाता है। वह नित्यकर्म कहलाता है। नित्य कर्म का जुडाव मनुष्य जीवन से सीधा जुड़ा हुवा है। जो मनुष्य नित्य कर्म करता है वह कर्मकांड के अन्दर आता है। किसी भी कार्य को तभी पूर्ण किया जाता है जब वह कार्य नित्य कर्म में दिखता है। तब उस कार्य की प्राप्ति होती है। प्रत्येक मनुष्य को हमेशा से कुछ

न कुछ नित्य कर्म करना ही होता है। मीमांसकों ने द्विविध कर्म के विषय में कहा है।– अर्थ कर्म एवं गुणकर्म, अर्थ कर्म के तीन प्रकार बताया है जो इस प्रकार हैं – 1- नित्य कर्म, 2. नैमित्तिक, 3. काम्य कर्म

जो गृहस्थ आश्रम में है उन सभी के लिये इन तीन कर्मों को करने का विधान है जो भी में तीन कर्मों को करते है वो नित्य कर्म की श्रेणी में आ जाते है। महर्षि मनु कहते है— **'जन्मना जायते शूद्र कर्मणा द्विज उच्यते'** जन्म के समय सभी शुद्र रूप में होते है धीरे-धीरे वह संस्कार प्राप्त कर द्विज बनता है। संस्कार हमारे चित्त पर पड़े अन्धकार को दूर कर देता है और एक शुभ मार्ग की ओर ले जाता है। आईये हम इस इकाई में नित्य कर्म विधि को जानते है। नित्य किया जाने वाला कर्म नित्यकर्म कहलाता है। दैनिक जीवन में नित्य कर्म को करने के लिए सही दिनचर्या की आवश्यकता होती है। प्राचीन ऋषियों ने हमारे अन्तः करण को हर क्षण शुभ संस्कारों के द्वारा आप्लवित रखने के लिए नित्यकर्मों का विधान बनाया है। जिनमें प्रातः जागरण से लेकर रात्रि शयन तक हमारी सारी दिनचर्या का सामावेस हो जाता है। यदि हम इन नित्यकर्मों को अपने दैनिक जीवनचर्या का अंग बना लेते हैं तो हमारा जीवन साधारण मनुष्य की चेतना से ऊपर उठकर देवताओं की चेतनाओं की ओर आगे बढ़ने लगता है। नित्यकर्म विधि में ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ आदि नित्यकर्मों के नियमों का पालन केसे किया जाय इन सभी नित्य कर्म विधि के बारे में आगे दिया जा रहा है। नित्य किये जाने वाले छः कर्म शास्त्रोक्त कहे गये हैं- स्नान, जप, सन्ध्या, होम, देवपूजन, अतिथि सत्कार इत्यादी कर्मों के द्वारा मनुष्य को मानसिक एवं शारीरिक शुद्धि बनाये रखने के लिए इन कर्मों का पालन अवश्य करना चाहिये।

1.4 नित्यकर्म में प्रातःजागरण

नित्य कर्म में प्रातःजागरण का अधिक महत्व बताया गया है। प्रातः से लेकर रात्रि पर्यन्त दिनचर्या का समयानुसार पालन करने से मानसिक तनाव से लेकर सारी समस्यों का समाधान प्रातः जागरण करने से प्राप्त होता है। प्रातः जागरण के पश्चात् स्नान से पूर्व किये जाने वाले कुछ मुख्य कर्म होते है जो निम्नलिखित है। प्रात:काल उठने के बाद स्नान से पूर्व जो आवश्यक विभिन्न कृत्य हैं, शास्त्र ने उनके लिये भी सुनियोजित विधि-विधान बताया हैं। अपने नित्य- के कर्म अन्तर्गत स्नान से पूर्व के कृत्य भी शास्त्र- निर्दिष्ट-पद्धति से ही करने चाहिये, क्योंकि तभी वह आगे षट् कर्मों को करने का अधिकारी होता है-

संध्या स्नानं जपश्चैव देवतानां च पूजनम्।
वैश्वदेवं तथाऽऽतिथ्यं षट् कर्माणि दिने दिने ।।

मनुष्य को शारीरिक शुद्धि के लिए स्नान, संध्या, जप, देवपूजन, बलिवैश्वदेव और अतिथि सत्कार. ये छः कर्म प्रतिदिन करने चाहिए। हमारी दिनचर्या नियमित है। प्रातः काल जागरण से लेकर शयन पर्यंत नित्यकर्म, देवपूजन एवं कर्मकाण्ड का शास्त्रकारों ने समस्त क्रियाओं के। अपने दीर्घकालीन अनुभव से ही इस बात को कहा है। जिनका अनुसरण करके मनुष्य अपने जीवन को सफल बना सकता है।

ब्रहो मुहूर्ते या निद्रा सा पुण्यक्षयकारिणी
तां करोति द्विजो मोहात् पादकृच्छ्रेण शुद्धयति ।।

ब्रह्ममुहूर्त में जो मनुष्य शयन करता है उस समय की निद्रा उस व्यक्ति के पुण्यो को समाप्त कर देती है। इसलिए मनुष्य को ब्रह्म मुहुर्त में जागरण करना चाहिय। यहाँ पर प्रातः

जागरण- कृत्य एवं स्नान- से पूर्व-कृत्यों का निरूपण किया जा रहा है। ब्राह्म-मुहूर्त जागरण का सबसे सही मुहुर्त होता है -सूर्योदय से चार घड़ी (लगभग डेढ़ घंटे) पूर्व ब्राह्ममुहूर्त में ही उठना चाहिये। इस ब्रह्म मुहुर्त में शयन करना निषिद्ध माना गया है। सर्वप्रथम ब्राह्म-मुहूर्त में जागरण कर निम्नलिखित श्लोक का पाठ करना चाहिए।

कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती।
करमूले स्थितो ब्रह्मा प्रभाते करदर्शनम् ॥

अर्थात् 'हाथके अग्रभागमें लक्ष्मी का, हाथके मध्यमें सरस्वती का, और हाथ के मूल भाग में ब्रह्मा जी का ध्यान करना चाहिये उसके बाद प्रातःकाल दोनों हाथोंका अवलोकन करना चाहिये।' इस विधि का पालन करने के बाद भूमि पर हाथ का स्पर्श करने के बाद ध्यान करना चाहिये।

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डिते ।
विष्णुपत्निनमस्तुभ्यं पादस्पर्श क्षमस्व मे।।

इन सभी नित्यकर्मों को करने के बाद प्रातः स्मरण का विधान बताया है। शास्त्रों ने निद्रा त्याग के उपरान्त मनुष्य मात्र का प्रथम कर्तव्य उस कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड- नायक, सच्चिदानन्द-स्वरूप प्रभु का स्मरण बताया है। जिस की कृपा के द्वारा यह मानव देह प्राप्त हुई है, जो समस्त सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है, और सत्य, शिव, और सुन्दर है। उन प्रभु की कृपा से मनुष्य सब प्रकार के दुखों से मुक्त हो जाता है मन की शुधि के लिसे मंत्रो के द्वारा प्रातः स्मरण किया जाता है।

प्रातः स्मरण—

ॐ अपवित्र पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्यभ्यन्तरः शुचि ॥

निम्नलिखित श्लोकों का प्रातः काल विधि विधान से पाठ करने से कल्याण की अनुभूति होती है।

गणेशस्मरण: —

प्रातः स्मरामि गणनाथमनाथबन्धु
सिन्दूरपूरपरिशोभित गण्डयुग्मम् ।
उद्दण्डविघ्नपरिखण्डनचण्डदण्ड
माखण्डलादिसुरनायकवृन्दवन्द्यम् ।।

निम्नलिखित श्लोकों का प्रातः काल पाठ करने से कल्याण होता है। जैसे- प्रातः जागरण के समय प्रभु के नाम से पाठ करना, ध्यान करना इन सभी शुभ कर्मों को करने से धर्म की वृद्धि के साथ मानव मात्र का भी कल्याण हो जाता है।

विष्णुस्मरण—

प्रातः स्मरामि भवभीतिमहार्तिनाशं
नारायणं गरुडवाहनमब्जनाभम् ।
ग्राहाभिभूतवरवारणमुक्तिहेतुं
चक्रायुधं तरुणवारिजपत्रनेत्रम् ।।

'संसार के भयरूपी महान् दुःख को नष्ट करनेवाले, ग्राहसे गजराजको मुक्त करनेवाले, चक्रधारी नवीन कमलदलके समान नेत्रवाले, गरुडवाहन भगवान् श्रीनारायण का मैं प्रातःकाल स्मरण करता हूँ।'

शिवस्मरण—

प्रातः स्मरामि भवभीतिहरं सुरेशं
गङ्गाधरं वृषभवाहनमम्बिकेशम् ।
खट्वाङ्गशूलवरदाभयहस्तमीशं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम्

'संसारके भयको नष्ट करनेवाले, देवेश, गङ्गाधर, वृषभवाहन, पार्वतीपति, हाथमें खट्वाङ्ग एवं त्रिशूल लिये और संसाररूपी रोगका नाश करनेके लिये अद्वितीय औषध-स्वरूप, अभय एवं वरद मुद्रायुक्त हस्तवाले भगवान् शिवका मैं प्रातःकाल स्मरण करता हूँ।

देवीस्मरण—

प्रातः स्मरामि शरदिन्दुकरोज्ज्वलार्धा
सद्रत्नवन्मकरकुण्डलहारभूषाम् ।
दिव्यायुधोर्जितसुनीलसहस्रहस्तां
रक्तोत्पलाभचरणां भवतीं परेशाम् ॥

'शरत्कालीन चन्द्रमाके समान उज्ज्वल आभावाली, उत्तम रनों। जटित मकरकुण्डलों तथा हारोंसे सुशोभित, दिव्यायुधोंसे दीप्त मुरु नीले हजारों हाथोंवाली, लाल कमलकी आभायुक्त चरणोंवाली भगवन दुर्गादेवीका में प्रातः काल स्मरण करता हूँ।'

सूर्यस्मरण—

प्रातः स्मरामि खलु तत्सवितुर्वरेण्यं
रूपं हि मण्डलमृचोऽथ तनुर्यजूंषि ।
सामानि यस्य किरणाः प्रभवादिहेतुं
ब्रह्माहरात्मकमलक्ष्यमचिन्त्यरूपम् ।।

'सूर्यका वह वृहदाकार स्वरुप जिसका मण्डल ऋग्वेद, कलेवर यजुर्वेद तथा किरणें सामवेद हैं। जो सृष्टि आदिके कारण हैं, ब्रह्मा और शिवके स्वरूप हैं तथा जिनका रूप अचिन्त्य और अलक्ष्य है, प्रातःकाल मैं उनका स्मरण करता हूँ।'

त्रिदेवों के साथ नवग्रहस्मरण—

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी
भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च।
गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ।।

'ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु-ये सभी मेरे प्रातःकालको मंगलमय करें।'विघ्नका नाश करनेमें परिपूर्ण इन्द्रदिदेवो का प्रातः काल स्मरण करता हूँ।

1.5 नित्य कर्म में स्नान का महत्व

शरीर की शुद्धि स्नान के द्वारा ही होती हैं मनुष्य को शुद्ध रहने के लिए नित्य प्रति स्नान करना चाहिए जिसके की शारीरिक शुद्धि के साथ साथ आध्यात्मिक शुद्धि भी होती हैं, शारीरिक शुद्धि के बाद ही प्रतिदिन किये जाने वाले कार्य मैं मन लगा रहता है जिससे की आनेवाली समस्या का पता लग सके तथा उस समस्या का निवारण हो सके जिस प्रकार मनुष्य को जीवित रहने के लिए भोजन की आवश्यकता होती हैं उसी प्रकार मन की शुद्धि तथा तन की शुद्धि के लिए नित्य स्नान की आवश्यकता होती है। नौ छिद्रोंवाले अत्यन्त मलिन शरीरसे दिन-रात मल निकलता रहता है, अतः प्रातःकाल स्नान करनेसे शरीरकी शुद्धि होती है। स्नान कब करना चाहिए इस बारे मैं शास्त्रों मैं कहा गया है।

प्रातः स्नानं प्रशंसन्ति दृष्टादृष्टकरं हि तत्।
सर्वमर्हति शुद्धात्मा प्रातःस्नायी जपादिकम् ॥
अत्यन्तमलिनः कायो नवच्छिद्रसमन्वितः ।
स्रवत्येष दिवारात्रौ प्रातःस्नानं विशोधनम् ॥

शुद्ध तीर्थ में प्रात:काल स्नान करना चाहिये, क्योंकि यह मलपूर्ण शरीर शुद्ध तीर्थमें स्नान करने से शुद्ध होता है। प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व स्नान करना चाहिए स्नान करने के बाद ही पूजा, पाठ, जप करने का विधान है। स्नान कहां पर करें कहां न करें इस बारे मैं शास्त्रों मैं कहां गया हैं यदि प्रातः काल तीर्थ स्नान हो तो यह अत्यंत लाभदायक माना जाता है।इसलिए प्रातः काल तीर्थ स्नान करने का विधान हैं। स्नान करने के पश्चात् तैल का प्रयोग शरीर पर करते हैं कब कब तेल को लगाना चाहिए कब कब नहीं,शुभ दिन वारों मैं ही तेल का सेवन करने का विधान है इस बारे मैं भी हमारे ऋषियों ने स्पष्ट कहा हैं।

तैलाभ्यङ्गे रवौ तापः सोमे शोभा कुजे मृतिः ।
बुधे धनं गुरौ हानिः शुक्रे दुःखं शनौ सुखम् ॥
रवौ पुष्पं गुरौ दूर्वा भौमवारे तु मृत्तिका।
गोमयं शुक्रवारे च तैलाभ्यङ्गे न दोषभाक् ॥
सार्षपं गन्धतैलं च यत्तैलं पुष्पवासितम् ।
अन्यद्रव्ययुतं तैलं न दुष्यति कदाचन ॥

अर्थात् रविवार को तेल लगानेसे ताप, सोमवारको शोभा, भौमवारको मृत्यु अर्थात् आयुक्षीणता, बुधवारको धनप्राप्ति, गुरुवारको हानि, शुक्रवारको दुःख और शनिवारको सुख होता है। यदि निषिद्ध वारोंमें तेल लगाना हो तो रविवारको पुष्प, गुरुवारको दूर्वा, भौमवारको मिट्टी और शुक्रवारको गोबर तेलमें डालकर लगानेसे दोष नहीं होता। गन्धयुक्त पुष्पोंसे सुवासित, अन्य पदार्थों से युक्त तथा सरसों का तेल दूषित नहीं होता है। इस प्रकार स्नान करने से शरीर की स्वच्छता, अदृष्टफल पापनाश तथा पुण्यकी प्राप्ति-ये दोनों प्रकारके फल प्राप्त होते है, अतः प्रातःस्नान करने का समय शुभ माना गया है।

प्रातःस्नानं चरित्वाथ शुद्धे तीर्थे विशेषतः ।
प्रातः स्नानाद्यतः शुद्धयेत् कायोऽयं मलिनः सदा ॥
नोपसर्पन्ति वै दुष्टाः प्रातःस्नायिजनं क्वचित्।
दृष्टादृष्टफलं तस्मात् प्रातःस्नानं समाचरेत् ॥

जो नित्य स्नान करते है उनको ये दश प्रकार के गुण प्राप्त होते है जो निम्नलिखित है। रूप, तेज, बल, पवित्रता, आयु, आरोग्य, निर्लोभता, दुःस्वप्नका नाश, तप और मेधा-ये दस गुण स्नान करनेवालोंको प्राप्त होते हैं-

गुणा दश स्नानपरस्य साधो ! रूपं च तेजश्च बलं च शौचम्।
आयुष्यमारोग्यमलोलुपत्वं दुःस्वप्ननाशश्च तपश्च मेधाः ॥ (दक्षस्मृति अ० 2 /13)

वेद-स्मृतिमें कहे गये समस्त कार्य स्नानमूलक हैं, अतएव लक्ष्मी, पुष्टि एवं आरोग्यकी वृद्धि चाहनेवाले मनुष्यको स्नान सदैव करना चाहिये।

स्नान के प्रकार—

मुख्य रूप से स्नान के 7 प्रकार है जो निम्न है।

1. मन्त्रस्नान 2. अग्निस्नान
3. दिव्यस्नान 4. मानसिक स्नान
5. भौमस्नान 6. वायव्यस्नान
7. वारुणस्नान

'आपो हि ष्ठा०' इत्यादि मन्त्रोंसे मार्जन करना मन्त्रस्नान, समस्त शरीरमें मिट्टी लगाना भौमस्नान, भस्म लगाना अग्निस्नान, गायके खुरकी धूलि लगाना वायव्यस्नान, सूर्यकिरणमें वर्षाके जलसे स्नान करना दिव्यस्नान, जलमें डुबकी लगाकर स्नान करना वारुणस्नान, आत्मचिन्तन करना मानसिक स्नान कहा गया है।

मान्त्रं भौमं तथाग्नेयं वायव्यं दिव्यमेव च।
वारुणं मानसं चैव सप्त स्नानान्यनुक्रमात् ॥
आपो हि ष्ठादिभिर्मान्त्रं मृदालम्भस्तु पार्थिवम् ।
आग्नेयं भस्मना स्नानं वायव्यं गोरजः स्मृतम् ॥
यत्तु सातपवर्षेण स्नानं तद् दिव्यमुच्यते ।
अवगाहो वारुणं स्यात् मानसं ह्यात्मचिन्तनम् ॥ (आचारमयूख, पृ० 47/48)

जो व्यक्ति स्नान करने में समर्थ नही है उनको सिरकेनीचेसे ही स्नान करना चाहिये अथवा गीले वस्त्रसे शरीरको पोंछ लेना भी एक प्रकारका स्नान कहा गया है-

अशिरस्कं भवेत् स्नानं स्नानाशक्तौ तु कर्मिणाम्।
आर्द्रण वाससा वापि मार्जनं दैहिकं विदुः ॥

स्नानविधि—

उषाकी काल से पहले ही स्नान करना उत्तम माना गया है। इससे प्राजापत्यफल प्राप्त होता है। तेल लगाकर तथा देहको मल-मलकर नदीमें नहाना अशुभ माना गया है। अतः नदीसे बाहर तटपर ही देह-हाथ मलकर नहा ले, तब नदीमें प्रवेश करे । शास्त्रोंने इसे 'मलापकर्षण' स्नान कहा है। यह अमन्त्रक होता है। यह स्नान स्वास्थ्य और शुचिता दोनोंके लिये आवश्यक है। देहमें मल रह जानेसे शुचितामें कमी आ जाती है और रोमछिद्रोंके न खुलनेसे स्वास्थ्यमें भी अवरोध हो जाता है।

1. उषःकालस्तुलोहितादिगुणलक्षितकालात् प्राक्कालः
2. उषस्युषसि यत् स्नानं नित्यमेवारुणोदये।
प्राजापत्येनतत्तुल्यंमहापातकनाशनम् ॥

1.6 नित्य संध्या का महत्व

संध्याका शुभ समय –

यदि सूर्योदयसे पूर्व आकाशमें तारे भरे हुएहो तो उस समयकी संध्या उत्तम मानी गयी है। ताराओं के छिपनेसे सूर्योदयतक मध्यम और सूर्योदयके बादकी संध्या अधम होती है'। सायंकाल की संध्या सूर्य अस्त से पहले ही शुभ मानी जाती है। जो लोग प्रतिदिन संध्या करते हैं, वे पापरहित होकर ब्रह्मलोकको प्राप्त करते हैं—

संध्यामुपासते ये तु सततं संशितव्रताः ।
विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥

इस पृथ्वीपर जितने भी स्वकर्मरहित द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) हैं, उनको पवित्र करनेके लिये ब्रह्माने संध्याकी उत्पत्ति की है। रात या दिनमें जो भी पापकर्म मनुष्यों से हो जाय तो उस पापकर्म से मुक्ति पाने के लिए त्रिकाल-संध्या करने का विधान है संध्या करने से पापकर्म नष्ट हो जाते हैं—

उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका।
अधमा सूर्यसहिता प्रातः संध्या त्रिधा स्मृता ॥ (देवीभा० 11/16/4)
उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमा लुप्तसूर्यका।
अधमा तारकोपेता सायं संध्या त्रिधा स्मृता ॥ (धर्मसार, विश्वामित्रस्मृ० १। २४)

संध्या करने के लिए कुछ मुख्य 8 पात्रो की अवश्यकता होती है।

१-लोटा जलपात्र -1
२- घंटी और संध्याका विशेष जलपात्र-1
३-पात्र-चन्दन-पुष्पादिके लिये
४-पंचपात्र- 2
५-आमनी –2
६-अर्घा- 1
७-जल गिरानेके लिये एक थाली - 1
८-आसन

इन सभी पात्रों को अपने सामने रखने के बाद आसन पर बैठकर सध्या शुरू करनी चाहिए।मुख्य प्रकार से संध्याके चार प्रकार हैं।

1.सूर्योदय से पूर्व उषाकालीन संध्या
2.मध्याह्न संध्या बारह बजे लगभग
3.सायंकाल सूर्य अस्त से पूर्व
4.रात्रि बारह बजे की संध्या

इनमें से चार प्रकार की संध्या जो भी ब्राह्मण करता हैं वह सिद्ध हो जाता हैं तथा उसके सभी प्रकार की समस्याओं का निवारण हो जाता है। प्रायः यह देखा जाता है कि चार प्रकार की संध्या ऋषियों के लिए होती हैं जो महात्मा होते हैं वहीं चार प्रहर की संध्या करते हैं।

ब्राह्मणों को तीन प्रहर की संध्या करनी चाहिए जो त्रिकालज्ञ संध्या करते हैं वे सभी समस्याओं से मुक्ति पा लेते हैं। इसलिए संध्या को प्रातः काल सूर्योदय से पहले आठ प्रकार के पात्रों को अपने सामने रखकर आसन बिछाकर तीन बार आचमन कर प्रारंभ करनी चाहिए । ऊं

केशवाय नमः, ऊं माधवाय नमः, ऊं अच्युताय नमः, इन मंत्रों के साथ तीन बार आचमन करके स्वशरीर की शुद्धि करनी चाहिए तत्पश्चात् दिशा पूजन,आसनपूजन, पृथ्वी पूजन, सूर्य पूजन, शंख, घंटी, तथा अर्घ्य पूजन के साथ साथ भद सूक्त करने के बाद संकल्प लेकर के संध्या प्रारंभ करनी चाहिए। इसी प्रकार मध्याह्न संध्या का भी विधान कहा गया हैं। मध्याह्न मै सूर्य के मध्य यानि आकाश के मध्य भाग मैं आने पर उस दिशा को मुख कर मध्याह्न संध्या करनी चाहिए। सांयकाल सूर्य अस्त से पूर्व पश्चिम दिशा की ओर मुड़ कर सायंकालीन संध्या करनी चाहिए। इसी प्रकार एक दिन मैं तीन प्रहर की संध्या आवश्यक होती हैं। उसके बाद मां गायत्री को साक्षी मानकर पांच माला गायत्री जप प्रतिदिन सुबह, मध्याह्न, सांयकाल, करना चाहिए अन्तिम मैं गायत्री कवच का पाठ तर्पण करना चाहिए जो इस तीन प्रहर की संध्या का विधान पूर्वक पालन करता है वह बहुत ही बडी समस्या से छुटकारा पा लेता हैं। सुख को प्राप्त करते रहता है इसलिए संध्या अवश्य करनी चाहिए।

1.7 तर्पण के प्रकार एवं महत्व

तर्पण शब्द व्याकरण की दृष्टी स्त्री लिंग है तर्पण यानि तृप्त करने की क्रिया को तर्पण कहते है।. देव , पितृ, ऋषि, इन सभी देवताओं को अपनेकी कुल के कल्याण के लिय हस्त द्वारा जो जल दूध अर्पण कर पित्र तृप्त होते है उसे तर्पण कहते है। नित्य कर्म में स्नान करने के बाद तर्पण करने का विधान शास्त्रों मैं कहां गया है। जल का ही त्रिपुंड लगाकरदोनों हाथों को से लेकर के सूर्य को जल देकर पुनः देव, ऋषि,,पित्र,आदि देवताओं का तर्पण स्नान के पश्चात् करना चाहिए। प्रतिदिन स्नान के पश्चात् तर्पण का विधान शास्त्रों में बताया गया हैं। तर्पण कासामान्य अर्थ है पित्रों को जल के द्वारा दूध के द्वारा अर्पण करना ही तर्पण कहलाता हैं। पवित्र होकर देवतथा पित्रों को तर्पण देना आवश्यक होता है जिससे की हमारे पित्रों तक जल पहुंच सके। वहां तक जल पहुंचने के बाद देव तथा पित्र हमें आशीर्वाद प्रदान करतें हैं। इसलिए कर्मकांड मैं भी पूजन के बाद तर्पण का विधानदिया गया है। (स्नानानन्तरं तावत् तर्पयेत् पितृदेवताः)।

(ख) स्नानाङ्गतर्पणं विद्वान् कदाचिन्नैव हापयेत्। (ब्रह्मवैवर्त पुराण,हेमाद्रि

आशौचेऽपि तद्भवति अत्र देवपितृणामेवेज्यत्वात्

साङ्गस्य चानुष्ठेयत्वा- ज्जीवितपितृकस्याप्यधिकारः ॥ (आचाररत्न)

अब पितरों के लिए मंत्रों के द्वारा विधि पूर्व जल दिया जाता है।

जलाञ्जलि देने की रीति यह है कि दोनों हाथोंको सटाकर अञ्जलि बना ले। इसमें जल भरकर गौके सींग-जितना ऊँचा उठाकर जलमें ही अञ्जलि छोड़ दें'। इसमें देव, ऋषि, पितर एवं अपने पिता, पितामह आदि के लिए तर्पण दिया जाता है।

1. देव तर्पण–

(क) सर्वप्रथम सव्य होकर, पूर्व की ओर मुँह कर अंगोछेको बायें कंधे पर रखकर देवतीर्थसे मन्त्र पढ़कर एक-एक जलाञ्जलि देते समय निम्न मंत्रों के द्वारा तर्पण दिया जाता है।

ॐ ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम्।

ॐभु र्देवास्तृप्यन्ताम्।

ॐभुव र्देवास्तृप्यन्ताम्।

ॐ स्व र्देवास्तृप्यन्ताम्।

ॐ भूर्भुवः स्व र्देवास्तृप्यन्ताम्।

2.ऋषि-तर्पण –

उत्तर की ओर मुँह कर निवीती होकर (जनेऊ को जनेऊ मालाकार की तरह गलेमें पहनकर) और गमछेको भी मालाकी तरह पहन कर प्रजापतितीर्थसे दो-दो जलाञ्जलि ऋषियों को दिया जाता है।

ॐ सनकादयो मनुष्यास्तृप्यन्ताम्। ॐ भूर्ऋषयस्तृप्यन्ताम्। ॐ भुवऋषयस्तृप्यन्ताम्। ॐ स्वऋषयस्तृप्यन्ताम्। ॐ भूर्भुवः स्वऋषयस्तृप्यन्ताम्।

3 पितृ-तर्पण –

दक्षिणकी ओर मुँह कर अपसव्य होकर (जनेऊको दाहिने कंधे और बायें हाथके नीचे करके) गमछे को भी दाहिने कंधेपर रखकर पितरो के निमित पितृतीर्थ से तीन-तीन जलाञ्जलि देना चाहिए।

द्वौहस्तौ युग्मतःकृत्वा पुरयेदुदकाञ्जलिम्।
गोशृङ्गमात्रमुद्धृत्य जलं जलमध्ये जलं क्षिपेत्॥

ॐ कव्यवाडनलादयः पितरस्तृप्यन्ताम् (३)।, ॐ चतुर्दशयमास्तृप्यन्ताम् (३)।, ॐ भूः पितरस्तृप्यन्ताम् (३)।, ॐ भुवः पितरस्तृप्यन्ताम् (३)।, ॐ स्वः पितरस्तृप्यन्ताम् (३)।, ॐ भूर्भुवः स्वः पितरस्तृप्यन्ताम् (३)।, (इसके आगेका कृत्य जीवित-पितृक न करे) ॐ अमुकगोत्रा अस्मत्पितृपितामहप्रपितामहास्तृप्यन्ताम् (३)।, ॐ अमुक गोत्रा अस्मन्मातृपितामहीप्रपितामह्यस्तृप्यन्ताम् (३)।, ॐ अमुक गोत्रा अस्मन्मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहाः सपलीकास्तृप्यन्ताम् (३)।, ॐ ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं जगत्तृप्यताम् (३)।, इसके बाद नदी के तट के पास आकर जलमें स्थित होकर भूमिपर एक जलाञ्जलि दे,

अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम।
भूमौ दत्तेन तोयेन तृप्ता यान्तु परां गतिम्॥

जलसे बाहर आने के बाद निम्नलिखित मन्त्रसे दाहिनी ओर शिखाको पितृतीर्थ (अँगूठे और तर्जनी के मध्यभाग)- से निचोड़े-

लतागुल्मेषु वृक्षेषु पितरो ये व्यवस्थिताः।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु मयोत्सृष्टैः शिखोदकैः॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत्तृप्यत्वितिक्रमात्।
जलाञ्जलित्रयं दद्यादेतत् संक्षेपतर्पणम्॥ (आचारदर्पण)

सुमन्तु ने कहा है कि गीले वस्त्रसे भूमिपर आकर जो जलाञ्जलि देता है वह जलाञ्जलि मृत व्यक्तिको नहीं मिलती है। फिर विवश होकर केवल वस्त्रके जल को ही ग्रहण करते है रह जाता है—

जलार्द्रवासाः स्थलगो यः प्रदद्याज्जलाञ्जलिम्।
वस्त्रनिश्च्योतनं प्रेता अपवार्य पिबन्ति ते॥ (नित्यकर्म-पू-प्र)

तर्पणके बाद उस उपवीती होकर (जनेऊको बायें कंधेपर और दाहिने हाथके नीचे कर) आचमन करे और बाहर एक अञ्जलि यक्ष्माको तर्पण दें।

यन्मया दूषितं तोयं शारीरं मलसम्भवम्।
तस्य पापस्य शुद्धयर्थं यक्ष्माणं तर्पयाम्यहम्॥ (विश्वामित्रस्मृ०)

जीवित व्यक्ति वस्त्र निचोड़कर संध्या करे परन्तु जिन्हें तर्पण करना है, वे अभी वस्त्रको न निचोड़ें, तर्पणके बाद निचोड़ें। तथा स्नानके बाद देह नही पोछना चाहिय, जलको स्वयं ही सूखने दिया जाय तो उत्तम माना जाता है, क्योंकि सिरसे टपकने वाले जलको देवता, मुखभागसे टपकनेवाले जलको पितर, बीचवाले भागसे टपकनेवाले जलको गन्धर्व और नीचेसे गिरनेवाले जलको सभी जीव इस जल को पीते हैं।

स्नानाङ्गतर्पणं कृत्वा यक्ष्मणे जलमाहरेत्।
अन्यथा कुरुते यस्तु स्नानं तस्याफलं भवेत् ॥ शौनक
पिबन्ति शिरसो देवाः पिबन्ति पितरो मुखात्।
मध्यतः सर्वगन्धर्वाअधस्तात् सर्वजन्तवः॥
तस्मात् स्नातो न निर्मृज्यात् स्नानशाट्यान पाणिना।
तिस्त्रः कोट्योऽर्थकोटी च यावन्त्यङ्गरुहाणि वै।
वसन्ति सर्वतीर्थानि तस्मान्न परिमार्जयेत् ॥ (गोभिल)

इसी प्रकार से विधि विधान के द्वारा स्नान के समय पितरो के लिया तर्पण करना चाहिय।

1.8 नित्यकर्म में पञ्च महायज्ञ एवं संकल्प का महत्व

नित्यकर्म में स्नान,तर्पण, संध्या, के बाद पंचमहायज्ञ को प्रतिदिन करने का विधान शास्त्रों में कहा गया है।भारतीयपरम्परा में मनुष्यों के लिये आवश्यक अंग के रूप में पंचयज्ञ को ग्रहण किया गया हैं। धर्मशास्त्रों में भी प्रतिदिन पंच महायज्ञ करने के लिए कहा गया है। नियमित रुप इन पंचयज्ञों को करने से गृह में सुख-समृद्धि प्राप्त होती रहती है। इन महायज्ञों के करने मे मनुष्य का जीवन, परिवार, समाज,सदाचारी तथापृथिवी का संतुलन के साथ साथ वातावरण की शुधि भी होती है, जिससे की मानव जीवन पर इसका सही प्रभाव पड़ता है,जिससे वह सुखी रहता है।

प्राय: देखा जाता है धन-धान्य होने पर भी उस परिवार के लोग दुःखी और असाध्य रोगों से ग्रस्त रहते हैं, उस घर पर सुख न होने के साथ दुख ही दुख रहता है , ऐसा क्यों क्योंकि उन परिवारों में नित्य कर्म में होने वाली गतविधि नही होती है तथा पंच महायज्ञ भी घर पर नही होता है। मानव जीवन का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति है , इन चारों की प्रामि तभी संभव है, जब वैदिक विधान से नित्यकर्म तथा पंच महायज्ञों को नित्य घर किया जाये तभी उसका लाभ उस व्यक्ति को प्राप्त होगा 'मनुस्मृति' में भी पंचमहायज्ञ के बारे में वर्णन भी प्राप्त होता है। इसलिय शास्त्रों ने भी कहा है जो मनुष्य इन सभी विधियों का नित्यकर्म में पालन करता है वो सदेव सुख को प्राप्त करता है। मुख्यरूप से मानव जीवन के कल्याण लिए जो पंच महायज्ञ महत्त्वपूर्ण बताये गये हैं, जो निम्नलिखित है।

1. ब्रह्मयज्ञ 2. देवयज्ञ 3. पितृयज्ञ 4. भूतयज्ञ 5. अतिथियज्ञ

पंचमहायज्ञ का वर्णन प्रायः सभी ऋषि-मुनियों ने अपने-अपने धर्मग्रन्थों में किया है, जिनमें से कुछ ऋषियों के वचनों को यहाँ उद्धृत किया जाता है। –

मनु का वचन—

पञ्चैतान् यो महायज्ञान्न हापयति शक्तितः।
सगृहेऽपि नसन्नित्यं सूनादोषैर्न लिप्यते।
'भूतयज्ञों मनुष्ययज्ञः पितृयज्ञों देवयज्ञों ब्रह्मयज्ञो इति।'

1.8.1.ब्रह्मयज्ञ—

संध्या करने के बाद द्विजों को प्रतिदिन वेद पुराण का अध्यनन वेदों को स्वयं पढ़ना और पढ़ाना जितने भी शास्त्रीय ग्रंथ हो उन सबका अध्यनन करना गायत्री मंत्र जपने से भी ब्रह्मयज्ञ की पूर्ति होती है। ऋषियों के द्वारा संग्रहित ग्रंथों का अध्ययन कर उस ज्ञान को समाज में सही मार्ग में लगाना ही ब्रह्मयज्ञ कहलाता है।

1.8.2. देवयज्ञ—

देवताओं का षोडशोपचार .पंचो पचार ,द्वात्रिन्सोपचार,आदि विधि से पूजा,पाठ ,यज्ञ, सत्संघ के द्वारा देवताओ को प्रसन्न करना चाहिय। हमारे ऋषियों ने कहा है मनुष्य देव यज्ञ का ऋण केसे चुका सके इसके लिए धार्मिक कर्म करना आवश्यक होता है, जिससे की हम देव ऋण से उऋण हो सके।

यत्करोषि यदनासि यज्जुहोसि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तिय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ।। गीता 9 /2/

परमात्मा के इस वचन से सिद्ध होता है कि परब्रह्म परमात्मा ही समस्त यज्ञों के कर्ता है। नित्य तथा नैमित्तिक - भेद से देवता दो भागों में विभक्त है, उनमें रूद्रगण, वसुगण और इन्द्रादि ये नित्य देवता कहे जाते हैं, ग्रामदेवता, बनदेवता, तथा गृहदेवता ये देवता नेमितिक कहे जाते है। दोनों तरह के देवता इसदेव यज्ञ से संतुष्ट होते हैं।

1.8.3 पितृयज्ञ—

पितृ देवताओं को प्रसन्न रखने के लिए पितृ यज्ञ किया जाता है। शास्त्रों में पित्रदेवताओ को तृप्त करने के लिए पितरो के निमित श्राद्ध.तर्पण हर महीने उनकी तिथि पर करना चाहिए। ऐसा करने पर हमारे पित्र प्रसन्न होते है तभी मनुष्य पितृऋण से उऋण हो सकेंगे।

1.8.4 भूतयज्ञ—

स्नान पूजा पाठ करने के बाद वेश्वदेव यज्ञ करने का विधान है। जितने भी जीव इस भूखण्ड पर है उन सभी की सेवा करना कृमि, कीट पतड.ग पशु और पक्षी आदि की सेवा को भूतयज्ञ " कहते है। इस यज्ञ को करने से व्यक्ति सभी पापकर्मों से मुक्त हो जाता है प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन जीने के लिए भोज्य पदार्थो के द्वारा अपने प्राणों की रक्षा करता है परन्तु उस भोज्य पदार्थो में भी अनेकानेक जीव होते है जो मनुष्यों को दिखाई नही पड़ते है, ऐसे में उन जीवों का हम अनजाने में भक्षण कर लेते है जिससे की पापा की प्रवृत्ति बढ़ जाती है ,इन सभी पापकर्म से बचने के लिए हमें भूतयज्ञ करना आवश्यक होता है। उन सभी जीवो के लिए भोजन देना उनकी सेवा करना ही भूत यज्ञ कहलाता है।

1.8.5 अतिथि (मनुष्य) यज्ञ

इन पंचयज्ञ में अतिथि यज्ञ का विशेष महत्व रहा है। यदि कोई मनुष्य क्षुधा से पीड़ित होकर घर पर आ जाय तो उस व्यक्ति को जल, भोजन आदर पूर्वक देना उसकी समस्या का निदान करना, उसकी सेवा करना ही अतिथि यज्ञ कहलाता है। जिसका कोई भी समय नही होता है वो कभी भी घर पर आ जाय वो अतिथि कहलाते है। इनकी सेवा करने से पुण्य की प्राप्ति होती है।

बलिवैश्वदेव के बाद सबसे पहले अतिथियों को सम्मान भोजन कराये। इसके पहले मनुष्य- यज्ञ में अन्न दिया गया है, उससे भिन्न अन्न श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको जो दिया जाता है, वह मनुष्य-यज्ञ कहलाता है। यह भी देखना होता है कि नियमित भोजन करनेवाले जो भृत्य हैं, उनका

उपरोध किसी तरह न हो। अभावकी स्थितिमें मीठी बातोंसे अतिथियों को संतुष्ट करना चाहिए। आसन बिछाकर सम्मान पूर्वक बिठाये, । इन तीनों में से भी अतिथियों का जो सत्कार होता है, वह ज्योतिष्टोम से भी अधिक फलप्रद होता है।

जो अतिथि घर पर आ जाते है उनका सम्मान करना चाहिए। अतिथियों को लौटाना नहीं चाहिये, ऐसा करने से पाप लगता है। मध्यान में आये अतिथि की अपेक्षा सूर्यास्तके समय आये अतिथि का आठ गुना अधिक फल प्राप्त होताहै। सूर्यास्तके समय आये अतिथिको 'सूर्योढ' कहा जाता है।' सूर्योढ' अतिथि यदि असमयमें भी आ जाय तो उसे बिना भोजन कराये नही जाने देना चाहिए।

वैश्वदेवादूर्ध्व हन्तकारान्नव्यतिरिक्तमन्नमतिथिभ्यो वरेभ्यो
ब्राह्मणेभ्यो यद् दीयते स मनुष्ययज्ञस्तावतैव समाप्यते।
ये च नित्या भुल्यास्तेषामनुपरोधेन संविभागो विहितः। धर्मप्रश्न

स्वस्तिवाचन—

सभी नित्यकर्म को करतें समय स्नान संध्या के बाद सभी देवताओं के आवाहन के लिए वैदिक ऋचाओं के द्वारा स्वस्तिवाचन का गान करना चाहिये। जो प्रस्तुत किया जा रहा है।

ॐ आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपीतासउद्भिदः । देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ॥ देवानां भद्रा सुमतिऋजूयतां देवानाःगुं रातिरभि नो निवर्तताम। देवानाःगुं सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे । तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्त्रिधम्। अर्यमणं वरुण गुं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥ तन्नो वाले मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः । तद ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम्। तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम्। पूषानो यथा वेदसामसद्वृधेरक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ स्वस्ति इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्ता रिक्षछो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरःशुभं यावानो विदथेषु जग्मयः । अग्निजिहा मनवाः सूरचक्षसो विश्वेनोदेवा अवसागमन्निह ॥ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाभद्रपश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाःगुं सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहित यदायुः ॥ शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तन्नाम्। १

पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥ अदितिद्यौं-रादितिरन्तरिक्षमदितिर्मातास पिता स पुत्रः । विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षः गुं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वःगुं शान्तिः शान्तिरेव शातिः सामा शान्तिरेधि ॥ यतो यतः समीहसे तो नो अभयं कुरु । शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः।

1.8.6 संकल्प—

स्वस्तिवाचन के बाद संकल्प करने का विधान आता है। यदि हम विधि विधान से संपूर्ण नित्यकर्म करते है परन्तु संकल्प न करे तो उस पूजन का फल निष्फल हो जाता है अन्यथा सभी कर्म विफल हो जाते हैं। हाथों में पवित्री धारण कर तथा आचमन आदिसे शुद्ध होकर दायें हाथमें केवल जल अथवा जल, अक्षत, जों, तिल, पुष्प आदि लेकर निम्नलिखित संकल्प करे—

'ॐ विष्णवे नमः, ॐ विष्णवे नमः, ॐ विष्णवे नमः । ब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे ॐ अद्य श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे बौद्धावतारे भूर्लोके जम्बूद्वीपे भरतखण्डे भारतवर्षे....क्षेत्रे नगरे ग्रामे नाम-संवत्सरे मासे (शुक्ल/कृष्ण) पक्षे.. ....तिथौ ... वासरे.... गोत्रः*... शर्मा/वर्मा/गुप्तोऽहम् प्रातः, (मध्याहने, सायं) सर्वकर्मसु शुद्धयर्थं श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलप्राप्त्यर्थं श्रीभगवत्प्रीत्यर्थं च अमुक कर्म करिष्ये।

जान्योरूर्ध्वं जले तिष्ठनाचान्तः शुचितामियात् ।

अधस्ताच्छतकृत्वो ऽपि समाचान्तो न शुध्यति ॥ आचारेन्दु, पृ०29, विष्णु-स्मृति)

संकल्प्य च तथा कुर्यात् स्नानदानव्रतादिकम्।

अन्यथा पुण्यकर्माणि निष्फलानि भवन्ति हि ॥ आचारेन्दु, मार्कण्डेयपुराणका

यदि किसी तीर्थमें स्नान कर रहे हों तो उस रिक्त स्थान जो रिक्त स्थान दिए है उनमे मेतीर्थका नाम, नगरमें उस नगरका नाम और गाँवमें हों तो उस गाँवका नाम अंकित करना चाहिये।

1.9 नित्यकर्म में गणेश-अम्बिका पूजन व कलश स्थापन विधान

नित्य स्नान के बाद ,गणेश जी का षोडशोपचार के द्वारा पूजन करना चाहिए। जो आगे दिया जा रहा है।

पाद्यं—

ॐ एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि . ॥
आचमन लेकर भगवान के पेरो में जल अर्पण करे

अर्घ्यं—

ॐ त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः । ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि॥
हस्तयोरर्घ्यं समर्पयामि अर्घ्य का जल छोड़े।)

आचमनं—

ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥
मुखे आचमनीयं जलं समर्पयामी आचमनके लिये जल समर्पित करे।)

स्नानीय जलं—

ॐ तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।
पशूंस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥
स्नानीयं जलं समर्पयामि

वस्त्र—

ॐ युवा सुवासा परिवीत आगात् स उश्रेयान् भवति जायमानः ।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो 3 मनसा देवयन्तः ॥

आभूषण—

वज्रमाणिक्यवैदूर्यमुक्ताविद्रुममण्डितम् ।
पुष्परागसमायुक्तं भूषणं प्रतिगृह्यताम् ॥
अलङ्करणार्थ आभूषणानि समर्पयामि

चन्दन—

त्वां गन्धर्वा अखनस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः ।
त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान् यक्ष्मादमुच्यत ॥

पुष्प—

ॐ यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादा उच्येते l
ॐ ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवती: प्रसूवरी: ।
अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः ॥
पुष्पं पुष्पमालां च समर्पयामि

धूपम्—

ॐ धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्व यं वयन्धूर्वामः ।
देवानामसि वह्नितम : सस्नितमं पप्रितम जुष्टतमं देवहूतमम् ॥

दीपम्—

ॐ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा। अग्निर्वच ज्योतिर्वर्चः स्वाहा सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा।। ज्योतिःसूर्य: सूर्यो ज्योति: स्वाहा ॥

नैवेद्यम्—

नैवेद्य को प्रोक्षित कर गन्ध पुष्प से आच्छादित करें। तदन्तर जल चतुष्कोण घेरा लगाकर भगवान को नेवेद्य का भोग लगाये।

ॐ नाभ्या आसीदन्तरिक्ष गुं शीष्णोद्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ2 अकल्पयन्॥
ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा। ॐ प्राणाय स्वाहा । ॐ अपानाय स्वाहा । ॐ समानाय स्वाहा । ॐ उदानाय स्वाहा । ॐ व्यानाय स्वाहा । ॐ अमृतापिधानमसि स्वाहा।

आचमनं –

ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ मुखे आचमनीयं जलं समर्पयामी।

ताम्बूल –

ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो ऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शब्द्धविः ॥
एलालवङ्गपूगीफलयुतं ताम्बूलं समर्पयामि। (इलायची, लवंग तथा पूगी फल युक्त ताम्बूल अर्पित करें।

स्तवपाठ-

विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय ।
नागाननाय श्रुतियज्ञविभूषिताय गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते॥
तर्पणं – भगवान की स्तुति के बाद जल के द्वारा तर्पण करना चाहिये ।

नमस्कार: –

नमः सर्वहितार्थाय जगदाधारहेतवे ।
साष्टाङ्गोऽयं प्रणामस्ते प्रयत्नेन मया कृतः ॥ नमस्कारान् समर्पयामि ।

कलश-स्थापन पूजन—

हमारे सनातन संस्कृति में जब भी कोई नवीन कार्य होते है तो उस कार्य से पहले मंगलाचरण के साथ साथ गणेश पूजन के बाद कलश स्थापन के साथ कलश(वरुण) भगवान का षोडशो पचार से पूजन किया जाता है।क्योंकि वरुण कलश के उर्द्वभाग में श्री फल रखा जाता है। उस श्रीफल में माँ लक्ष्मी का वास होता है। नवीन कार्य में माँ लक्ष्मी का प्रवेश अत्यंत शुभदायक होता है।

इसलिए सर्व प्रथम कलशमें रोलीसे स्वस्तिकका चिह्न बनाकर गलेमें तीन धागावातली मौलीलपेटे और कलशको एक ओर रख लेना चाहिए। कलश स्थापित कि जानेवाली भूमि अथवा पाटे पर कुङ्कम या रोलीसे अष्टदलकमल बनाकर निम्न मन्त्रसे भूमिका का स्पर्श करें।

भूमिका स्पर्श –

ॐ भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धत्री । पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दुःगुं ह पृथिवीं मा हिः गुं सीः॥

मन्त्र पढ़कर पूजित भूमिपर सप्तधान्य' अथवा गेहूँ, चावल या जौ को छोडे

धान्यप्रक्षेप –

ॐ धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वो दानाय त्वा व्यानाय त्वा। दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रति गृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयोऽसि ॥ इस धान्यपर निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर कलशकी स्थापना करे-

कलश-स्थापन –

ॐ आ जिघ्र कलशं मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः । पुनरूर्जा नि वर्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्मा विशताद्रयिः ॥

कलशमें जल –

ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनी स्थो वरुणस्य ऋतसदन्यसि वरुणस्य ऋतसदनमसि वरुणस्य ऋतसदनमा सीद ॥

कलशमें चन्दन –

ॐ त्वां गन्धर्वा अखनस्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः । त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान् यक्ष्मादमुच्यत ॥

कलशमें सर्वोषधि' –

ॐ या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा । मनै नु बभ्रूणामहः शतं धामानि सप्त च ॥ (सर्वोषधि छोड़ दे।)

कलशमें दूर्वा –

ॐ काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि। एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च॥

कलशपर पञ्चपल्लव –

ॐ अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता । गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥

कलशमें पवित्री –

ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः । तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम् ॥

कलशमें सप्तमृत्तिका –

ॐ स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म सप्रथाः ।

कलशमें सुपारी –

ॐ याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः। बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्व गुं हसः ॥

कलशमें पञ्चरत्न—

ॐ परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत्।
दधद्रत्नानि दाशुषे ।

कलशमें द्रव्य –

ॐ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकआसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर कलशको वस्त्रसे अलंकृत करे-

कलश पर वस्त्र धारण -

ॐ सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरूथमाऽसदत्त्वः । वासो अग्ने विश्वरूपः गुं सं व्ययस्व विभावसो॥

कलश पर पूर्णपात्र –

ॐ पूर्णा दर्वि परापत सुपूर्णा पुनरा पत। वस्नेव विक्रीणावहा इषमूर्ज शतक्रतो ॥

चावलसे भरे पूर्णपात्रको कलशपर स्थापित करे और उसपर लाल कपड़ा लपेटे हुए नारियलको निम्न मन्त्र पढ़कर रखे-

कलशपर नारियल –

ॐ याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वः हसः ॥

अब कलशमें देवी-देवताओंका आवाहन करना चाहिये। सबसे पहले हाथमें अक्षत और पुष्प लेकर निम्नलिखित मन्त्रसे वरुणका आवाहन करे-

कलशमें वरुणका ध्यान और आवाहन -

ॐ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशः स मा न आयुः प्रमोषीः ॥ अस्मिन् कलशे वरुणं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिकमावाहयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः भो वरुण। इहागच्छ, इह तिष्ठ, स्थापयामि, पूजयामि, मम पूजां गृहाण। 'ॐ अपां पतये वरुणाय नमः' कहकर अक्षत-पुष्प कलशपर छोड़ दे।

फिर हाथमें अक्षत-पुष्प लेकर चारों वेद एवं अन्य देवी-देवताओंका आवाहन करना चाहिए।

कलशमें देवी-देवताओंका आवाहन-

कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः ।
मूले त्वस्य स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः ॥
कुक्षौ तु सागराः सर्वे सप्तद्वीपा वसुन्धरा ।
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः ॥
अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः।
अत्र गायत्री सावित्री शान्तिः पुष्टिकरी तथा ॥
आयान्तु देवपूजार्थं दुरितक्षयकारकाः ।
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥
सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः।
आयान्तु मम शान्त्यर्थं दुरितक्षयकारकाः ॥

इस तरह जलाधिपति वरुणदेव तथा वेदों, तीर्थों, नदों, नदियों, सागरों, देवियों एवं देवताओंके आवाहनके बाद हाथमें अक्षत-पुष्प लेकर निम्नलिखित मन्त्रसे कलशकी प्रतिष्ठा करे-

प्रतिष्ठा –

ॐ मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳ समिमं दधातु विश्वे देवास इह मादयन्तामो ३ म्प्रतिष्ठ ॥

कलशे वरुणाद्यावाहितदेवताः सुप्रतिष्ठिता वरदो भव।

पाद्यं—

गङ्गोदकं निर्मलं च सर्वसौगन्ध्यसंयुतम् ।
पादप्रक्षालनार्थाय दत्तं मे प्रतिगृह्यताम् ॥
पादयोः पाद्यं समर्पयामि। (आचमन जल छोड़े।)

अर्घ्यं—

गङ्गोदकं निर्मलं च सर्वसौगन्ध्यसंयुतम् ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं प्रसन्नो वरदो भव ॥
हस्तयोरर्घ्यं समर्पयामि अर्घ्य का जल छोड़े

आचमनं—

कर्पूरेण सुगन्धेन वासितं स्वादु शीतलम् ।
तोयमाचमनीयार्थं गृहाण परमेश्वर ॥
मुखे आचमनीयं जलं समर्पयामी आचमनके लिये जल समर्पित करे ।)

स्नानीय जलं—

मन्दाकिन्यास्तु यद् वारि सर्वपापहरं शुभम् ।
तदिदं कल्पितं देव स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥
स्नानीयं जलं समर्पयामि

वस्त्र—

शीतवातोष्णसंत्राणं लज्जाया रक्षणं परम् ।
देहालङ्करणं वस्त्रमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।

आभूषणं—

वज्रमाणिक्यवैदूर्यमुक्ताविद्रुममण्डितम् ।
पुष्परागसमायुक्तं भूषणं प्रतिगृह्यताम् ॥
अलङ्करणार्थं आभूषणानि समर्पयामि

गन्धं—

श्रीखण्डं चन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम्।
विलेपनं सुरश्रेष्ठ! चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ॥

पुष्पं—

माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो।
मयाहतानि पुष्पाणि पूजार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

धूपं—

वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः।
आत्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

दीपं—

साज्यं च वर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया ।
दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापहम्॥

नैवेद्यं—

शर्कराखण्डखाद्यानि दधिक्षीरघृतानि च।
आहारं भक्ष्यभोज्यं च नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥

आचमनं—

कर्पूरेण सुगन्धेन वासितं स्वादु शीतलम् ।
तोयमाचमनीयार्थं गृहाण परमेश्वर ॥
मुखे आचमनीयं जलं समर्पयामी आचमनके लिये जल समर्पित करे ।

ताम्बूलं—

पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम्।
एलादिचूर्णसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥

प्रार्थना—

देवदानवसंवादे मथ्यमाने महोदधौ।
उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम्॥
त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः।
त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ॥
शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः ।
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः सपैतृकाः ॥
त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः ।
त्वत्प्रसादादिमां पूजां कर्तुमीहे जलोद्भव।
सांनिध्यं कुरु मे देव प्रसन्नो भव सर्वदा ॥
नमो नमस्ते स्फटिकप्रभाय सुश्वेतहाराय सुमङ्गलाय ।
सुपाशहस्ताय झषासनाय जलाधिनाथाय नमो नमस्ते ॥
'ॐ अपां पतये वरुणाय नमः।
सर्वेवरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः, प्रार्थनापूर्वकं नमस्कारान् समर्पयामि । (इसना इस मंत्र के द्वारा नमस्कारपूर्वक भगवान को पुष्प पुष्प समर्पित करे।
अब हाथमें जल लेकर निम्नलिखित वाक्यका उच्चारण कर जल उनके पास छोड़ते हुए समस्त पूजन-कर्म भगवान् वरुणदेवको अर्पित करे—
अनेन कृतेन पूजनेन कलशे वरुणाद्यावाहितदेवताः प्रीयन्तां न मम।

अभ्यास प्रश्न—

1.प्रातः जागरण के बाद सर्वप्रथम क्या करना चाहिए।
2.जागरण का शुभ समय क्या हैं
3.मीमांसकों ने कितने प्रकार के कर्म बतायें है।
4.अर्थ कर्म के कितने प्रकार हैं।
5.नित्य किये जाने वाले कितने कर्म होते हैं।

6. ब्रह्म मुहूर्त का शुभ समय कब होता है।
7.प्रातः कालीन किसका स्मरण करना चाहिए।
8.भगवत स्मरण करनें से क्या लाभ है।
9.स्नान के कितने प्रकार हैं।
10. सन्ध्या करने के लिए कितने पात्र होने चाहिए।
11. उषाकालीन किसे कहते हैं।
12.सर्व प्रथम कोन सा तर्पण किया जाता है।
13.कितने प्रकार के ऋण हैं।
14.नित्य कितने यज्ञ होते हैं।
15.संकल्प क्यो किया जाता हैं।
16.ब्रह्म यज्ञ क्यों किया जाता हैं।
17.कलश की किस उपचार के द्वारा पूजन करना चाहिए।
18.संध्या कितने प्रहर की जाती हैं।

1.10 सारांश

प्रस्तुत नित्य कर्म विधि नामक ईकाई में हमने नित्य होने वाले कर्म यानि मनुष्य की दिनचर्या कैसी हो सके प्रातः से लेकर रात्रि जागरण पर्यन्त क्या क्या नियम हो सकते हैं, जिससे की मनुष्य नित्य किये जाने वाले कार्य से सुखी हो सके इस विषय मैं कहां गया हैं। प्रातः जागरण करते समय पृथ्वी का ध्यान स्नान, संध्या वंदन, पंचांग पूजा सहित सभी पंचमहायज्ञ को करनें के बाद अपनी दिनचर्या प्रारंभ करना चाहिए इन सभी आध्यात्मिक विषयों को लेकर के एक शुभ दिन की शुरुआत होती हैं। जिससे की जीवन मैं आनी वाली बड़ी से बड़ी समस्या का निवारण हो जाता है। जो गृहस्थ मैं रहकर भी इन सभी नित्यकर्मों को अपने जीवन मैं उतारता हैं तथा पंचमहायज्ञों के द्वारा जीवन को शुद्ध रखता हैं, उसका यह शरीर दीर्घायु को प्राप्त होता हैं। संध्या करने सें अनेकानेक दोषों का शमन होता हैं। पंचमहायज्ञों के करने से व्यक्ति सभी तापों से, सभी पापों से मुक्त हो जाता हैं। इन यज्ञों को करने से कीट-पतंगों का नेगेटिव ऊर्जा को भी दूर किया जाता हैं। जिस प्रकार से शरीर के अंगों के बिना कोई भी कार्य संभव नहीं है ।उसी प्रकार से नित्यकर्म के बिना भी जीवन स्वस्थ नहीं रह सकता हैं। तो इस ईकाई के अध्ययन के पश्चात् आप समझ गये होंगे की जीवन मैं नित्य कर्म की कितनी विशेषता हैं ।

1.11 पारिभाषिक शब्दावली

नित्य	-	हमेशा
पंच	-	पांच
संध्याकाल	-	सायं सूर्य अस्त से पहले का समय
संध्या वंदन	-	ब्राह्मणों के द्वारा गायत्री की उपासना करने के लिए किया जाना वाला शुभ कर्म।
अतिथि	-	जिसकी कोई आने की तिथि न हो कभी भी आ जाय
त्रिकाल	-	तीन समय किया जाने वाला कार्य
कराग्रे	-	हाथ के आगे वाले भाग मैं
संकल्प	-	प्रतिज्ञा

ताम्बूल - सुपारी

1.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. भूमि का स्पर्श कर दोनों हाथों को आगे करके प्रार्थना करना
2. प्रातः काल ब्रह्ममुहुर्त
3. दो प्रकार के
4. तीन प्रकार
5. कर्म
6. सूर्योदय से चार घड़ी पूर्व लगभग डेढ़ घंटा
7. प्रातः काल भगवदस्मरण करना चाहिए।
8. शरीर की शुद्धि, मनकी शुद्धि, अर्थ की वृद्धि , स्वस्थ शरीर रहता हैं
9. प्रकार होते हैं।
10. आठ पात्र,
11. सूर्योदय से पूर्व का समय
12. देव तर्पण
13. तीन प्रकार के
14. पंच महायज्ञ होते हैं।
15. कार्य की सिद्धि के लिए
16. आत्म ज्ञान के लिए,
17. द्वात्रिंशोपचार से
18. मुख्य रुप से चार प्रहर ,

1.13 सन्दर्भ ग्रन्थ व सहायक ग्रन्थ सूची

1.नित्य कर्म पूजा प्रकाश - पं लाल विहारी मिश्र,
2. कर्मकांड प्रदीप
3. निर्णय सिन्धु
4. याग्यवल्क्य स्मृति मिताक्षरी टीका चौखम्बा प्रकाशन
5. श्रीमद भागवत पुराण
6. नित्यकर्म संध्या प्रकाश

1.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नित्यकर्म क्या है, ये कितने प्रकार के होते हैं विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।
2. संध्या किसे कहते हैं व कितने प्रकार की होती है विस्तार पूर्वक उल्लेख कीजिए।
3.पंच देव प्रात:स्मरणीय मन्त्र लिखिए।
4 . पंचोपचार पूजा से क्या तात्पर्य है। विस्तार पूर्वक लिखिए।
5. नित्यकर्म का हमारे जीवन में क्या महत्व है अपने शव्दों में लिखिए।

इकाई-2 षोडशोपचार पूजन विधि

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 षोडशोपचार परिचय
2.4 षोडशोपचार पूजन के प्रकार
2.5 सारांश
2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

वैदिक कर्मकाण्ड एवं अनुष्ठान (BASL (N) 121) नामक पाठ्यक्रम के प्रथम खण्ड की यह द्वितीय इकाई षोडशोपचार पूजन विधि नामक शीर्षक से सम्बंधित है। इस इकाई में षोडशोपचार पूजन विधि क्या है और इसे करने का क्या विधान है। इस इकाई में विस्तृत रूप से जानने व समझने का प्रयास करेंगे।

प्रस्तुत इकाई में षोडशोपचार विधि का क्रम व किन मंत्रों व पदार्थों के द्वारा पूजन किया जाता है। तथा इस विधि को किस प्रकार से किया जायेगा। उक्त विधान कि चर्चा को इस इकाई के माध्यम से करेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप–

- षोडशोपचार क्या है इसके बारे में आप जान सकेंगे।
- षोडशोपचार पूजन विधि को समझ सकेंगे।
- षोडशोपचार का क्या क्रम है उसे जानने में आप सफल हो सकेंगे।
- षोडशोपचार पूजन में कौन-कौन सी सामग्रियों का प्रयोग होता है उसे जान सकेंगे।

2.3 षोडशोपचार परिचय

षोडशोपचार का भारतीय वैदिक वांग्मय में बड़ा ही महत्त्व माना गया है। किसी भी देवी-देवताओं के पूजन में इसे विशेष रूप से महत्त्व प्रदान किया जाता है। पूजन कि अनेकानेक विधियों में से षोडशोपचार पूजन विधि भी एक है षोडश का अर्थ है सोलह अर्थात् वे सोलह तरीके, जिनसे देवी-देवताओं का पूजन-यजन किया जाता है। देव पूजन की प्रविधि सामान्यतया अतिथि सत्कार की पुरातन परंपरा के समान है। इसके अंतर्गत हम भगवान का आवाहन करते हुए विभिन्न सामग्री से उनकी सेवा सत्कार की भावना से पूजन करते हैं। पूजन विधि के लिए कोई एक समान प्रक्रिया निर्धारित नहीं की जा सकती, क्योंकि प्रत्येक अवसरों व देवी-देवतओं के अनुसार प्रक्रिया परिवर्तित होती रहती है। विद्वानों का मतैक्य भी संभव नहीं और भक्ति के भाव का जो विधान है। वह भी देश काल परिस्थिति व परम्पराओं के अनुसार भिन्न-भिन्न है। फिर भी जनसामान्य के पूजन-अर्चन विधि के लिए पूजा पद्धति की एक सामान्य रूपरेखा निर्धारित की जा सकती है। इसके साथ ही कुछ सामान्य दिशानिर्देश भी बनाए जा सकते हैं, जैसे—

किसी भी पूजा में शुभ मुहूर्त आदि का विचार किया जाना आवश्यक है। दैनिक पूजा को छोडकर। प्रत्येक पूजारंभ के पूर्व आत्मशुद्धि, आसन शुद्धि, पवित्री धारण, पृथ्वी पूजन, संकल्प, दीप पूजन, शंख पूजन, घंटा पूजन, स्वस्तिवाचन आदि अवश्य करने चाहिये।भूमि, वस्त्र आसन आदि स्वच्छ व शुद्ध हों। आवश्यकतानुसार चौक, रंगोली, मंडप बना लिया जाये। यजमान पूर्वाभिमुख होकर बैठे, और पुरोहित उत्तराभिमुख होकर बैठे।विवाहित यजमान की पत्नी पति के साथ ग्रंथिबन्धन कर पति (जहाँ-जहाँ यह लोक व्यवहार पद्यति हो) की वामंगिनी के रूप में बैठे। पूजन के समय आवश्यकतानुसार अंगन्यास, करन्यास, मुद्रा आदि को भी किया जा सकता है।

षोडशोपचार पूजन में निम्न सोलह तरीके से विधिपूर्वक पूजन किया जाता है । वह सोलह प्रकार कोन-कोन से हैं इसे जानने का प्रयाश करते हैं।–

१.आवाहन, २.आसन, ३.पाद्य, ४.अघ्र्य, ५.आचमन, ६.स्नान, ७.वस्त्र, ८.उपवस्त्र अथवा यज्ञोपवीत, ९.गंध (चंदन) लगाना, १०.पुष्प अर्पित, ११.धूप दिखाना, १२.दीप-आरती करना, १३.नैवेद्य निवेदित करना,१४.नमस्कार करना, १५.परिक्रमा करना, १६.मंत्रपुष्पांजलि

2.4 षोडशोपचार पूजन विधि

गणेशाम्बिका पूजन

आचमन— (आत्म शुद्धि के लिए)

ॐ केशवाय नमः, ॐ नारायणाय नमः, ॐ माधवाय नमः। उक्त मन्त्रों से तीन बार आचमन कर आगे दिये मन्त्र को पढ़कर हाथ धो लें। ॐ हृषीकेशाय नमः।। पुनः बायें हाथ में जल लेकर दाहिने हाथ से अपने ऊपर और पूजा सामग्री पर निम्न श्लोक पढ़ते हुए छिड़कें।

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।

यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।।

ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु, ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु।

आसन शुद्धि—

नीचे लिखा मंत्र पढ़कर आसन पर जल छिड़के—

ॐ पृथ्वि! त्वया धृता लोका देवि ! त्वं विष्णुना धृता। त्वं च धारय मां देवि ! पवित्रां कुरु चासनम्।।

शिखाबन्धन—

ॐ मानस्तोके तनये मानऽआयुषि मानो गोषु मानोऽअश्वेषुरीरिषः।

मानोव्वीरान् रुद्रभामिनो व्वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे।।

ॐ चिद्रूपिणि महामाये दिव्यतेजः समन्विते।

तिष्ठ देवि शिखाबद्धे तेजोवृद्धिं कुरुष्व मे।।

कुश धारण—

निम्न मंत्र से बायें हाथ में तीन कुश तथा दाहिने हाथ में दो कुश धारण करें।

ॐ पवित्रोस्थो वैष्णव्यौ सवितुर्व्वः प्रसवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रोण सूर्यस्य रश्मिभिः।

तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुनेतच्छकेयम्।

पुनः दायें हाथ को पृथ्वी पर उलटा रखकर "ॐ पृथिव्यै नमः" इससे भूमि की पञ्चोपचार पूजा का आसन शुद्धि करें।

यजमान तिलक—

पुनः ब्राह्मण यजमान के ललाट पर कुंकुम तिलक करें।

ॐ आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः।

तिलकान्ते प्रयच्छन्तु धर्मकामार्थसिद्धये।

स्वस्तिवाचन—

उसके बाद यजमान आचार्य एवं अन्य ऋत्विजों वैदिक ब्राह्मणों के साथ हाथ में पुष्पाक्षत लेकर स्वस्त्ययन (स्वस्तिवाचन) पढ़ें।

ॐ आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरितासउद्भिदः।

देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे॥
देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवाना ग्वँग् रातिरभि नो निवर्तताम्।
देवाना ग्वँग् सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तुजीवसे॥
तान् पूर्वया निविदाहूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम्।
अर्यमणं वरुण ग्वँग् सोममश्विना शृणुतंधिष्ण्या युवम्॥
तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमसे हूसहे वयम्।
पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥
पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभं यावानो विदथेषु जग्मयः।
अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसागमन्निह॥
भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं फश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरै रङ्गैस्तुष्टुवा ग्वँग् सस्तनू भिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥
शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः॥
अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः।
विश्वे देवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्॥
द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ग्वँग् शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व ग्वँग् शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥ यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु। शन्नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः॥ सुशान्तिर्भवतु॥ ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव यद् भद्रं तन्न आ सुव॥ ॐ गणानां त्वा गणपति ग्वँग् हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपति ग्वँग् हवामहे निधीनां त्वा निधीपति ग्वँग् हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्॥ ॐ अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन। ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्॥

हाथ में लिए पुष्प और अक्षत गणेश एवं गौरी पर चढ़ा दें। पुनः हाथ में पुष्प अक्षत आदि लेकर मंगल श्लोक पढ़े।

श्रीमन्महागणाधिपतये नमः। लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः। उमामहेश्वराभ्यां नमः। वाणीहिरण्यगर्भाभ्यां नमः। शचीपुरन्दराभ्यां नमः। मातापितृचरणकमलेभ्यो नमः। इष्टदेवताभ्यो नमः। कुलदेवताभ्योनमः। ग्रामदेवताभ्यो नमः। वास्तुदेवताभ्यो नमः। स्थानदेवताभ्यो नमः। सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नमः।

विश्वेशं माधवं ढुण्ढिं दण्डपाणिं च भैरवम् । वन्दे काशीं गुहां गङ्गां भवानीं मणिकर्णिकाम् ॥1॥
वक्रतुण्ड ! महाकाय ! कोटिसूर्यसमप्रभ ! । निर्विघ्नं कुरु मे देव ! सर्वकार्येषु सर्वदा ॥ 2॥
सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः । लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः ॥ 3॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः । द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि ॥ 4॥
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा । सङ्ग्रामे सङ्कटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ॥ 5॥
शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम् । प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ 6॥
अभीप्सितार्थ-सिद्धyर्थं पूजितो यः सुराऽसुरैः । सर्वविघ्नहरस्तस्मै गणाधिपतये नमः ॥ 7॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ! । शरण्ये त्रयम्बके गौरि नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥ 8॥

सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम्। येषां हृदिस्थो भगवान् मङ्गलायतनो हरिः ॥ 9॥
तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव ।विद्यावलं दैवबलं तदेव लक्ष्मीपते तेऽङ्घ्रियुगं स्मरामि॥ 10॥
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः। येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥ 11॥
यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः। तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥12॥
अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ 13॥
स्मृतेः सकलकल्याणं भाजनं यत्र जायते। पुरुषं तमजं नित्यं ब्रजामि शरणं हरिम् ॥ 14॥
सर्वेष्वारम्भकार्येषु त्रयस्त्रिभुवनेश्वराः। देवा दिशन्तु नः सिद्धिं ब्रह्मेशानजनार्दनाः ॥ 15॥
हाथ में लिये अक्षत-पुष्प को गणेशाम्बिका पर चढ़ा दें।

संकल्प—

दाहिने हाथ में जल, अक्षत, पुष्प और द्रव्य लेकर संकल्प करें।

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः ॐ स्वस्ति श्रीमन्मुकन्दसच्चिदानन्दस्याज्ञया प्रवर्तमानस्याद्य ब्रह्मणो द्वितीये परार्धे एकपञ्चाशत्तमे वर्षे प्रथममासे प्रथमपक्षे प्रथमदिवसे द्वात्रिंशत्कल्पानां मध्ये अष्टमे श्रीश्वेतबाराहकल्पे स्वायम्भुवादिमन्वतराणां मध्ये सप्तमे वैवस्वतमन्वन्तरे कृत-त्रोता-द्वापर-कलिसंज्ञानां चतुर्युगानां मध्ये वर्तमाने अष्टाविंशतितमे कलियुगे तत्प्रथमचरणे तथा पञ्चाशत्कोटियोजनविस्तीर्ण-भूमण्डलान्तर्गतसप्तद्वीपमध्यवर्तिनि जम्बूद्वीपे तत्रापि श्रीगङ्गादिसरिद्भिः पावित परम-पवित्रे भारतवर्षे आर्यावर्तान्तर्गतकाशी-कुरुक्षेत्र-पुष्कर-प्रयागादि-नाना-तीर्थयुक्त कर्मभूमौ मध्यरेखाया मध्ये अमुक दिग्भागे अमुकक्षेत्रे ब्रह्मावर्तादमुकदिग्भागा- वस्थितेऽमुकजनपदे तज्जनपदान्तर्गते अमुकग्रामे श्रीगङ्गायमुनयोरमुकदिग्भागे श्रीनर्मदाया अमुकप्रदेशे देवब्राह्माणानां सन्निधौ श्रीमन्नृपतिवीरविक्रमादित्य-समयतोऽमुक संख्यापरिमिते प्रवर्तमानवत्सरे प्रभवादिषष्ठिसम्वत्सराणां मध्ये अमुकनाम सम्वत्सरे, अमुकायने, अमुकगोले, अमुकऋतौ, अमुकमासे, अमुकपक्षे, अमुकतिथौ, अमुकवासरे, यथांशकलग्नमुहूर्तनक्षत्रायोगकरणान्वित.अमुकराशिस्थिते श्रीसूर्ये, अमुकराशिस्थिते चन्द्रे, अमुकराशिस्थे देवगुरौ, शेषेषु ग्रहेषु यथायथाराशिस्थानस्थितेषु, सत्सु एवं ग्रहगुणविशिष्टेऽस्मिन्शुभक्षणे अमुकगोत्रोऽमुकशर्म्मा वर्मा-गुप्त-दास सपत्नीकोऽहं श्रीअमुकदेवताप्रीत्यर्थम् अमुककामनया ब्राह्मणद्वारा कृतस्यामुकमन्त्रपुरश्चरणस्य सङ्गतासिद्धार्थ- ममुकसंख्यया परिमितजपदशांश-होम-तद्दशांशतर्पण-तद्दशांश-ब्राह्मण-भोजन रूपं कर्म करिष्ये।

अथवा –

ममात्मनः श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलप्राप्त्यर्थं सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य द्विपदचतुष्पदसहितस्य सर्वारिष्टनिरसनार्थं सर्वदा शुभफलप्राप्तिमनोभि- लषितसिद्धिपूर्वकम् अमुकदेवताप्रीत्यर्थं होमकर्माहं करिष्ये। अक्षत सहित जल भूमि पर छोड़ें।

पुनः जल आदि लेकर—

तदङ्गत्वेन निर्विध्नतासिद्धार्थं श्रीगणपत्यादिपूजनम् आचार्यादिवरणञ्च करिष्ये।
तत्रादौ दीपशंखघण्टाद्यर्चनं च करिष्ये।

जलपात्र (कर्मपात्र) का पूजन—

इसके बाद कर्मपात्र में थोड़ा गंगाजल छोड़कर गन्धाक्षत, पुष्प से पूजा कर प्रार्थना करें।

ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि! सरस्वति!।
नर्म्मदे! सिन्धु कावेरि! जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।।
अस्मिन् कलशे सर्वाणि तीर्थान्यावाहयामि नमस्करोमि।
कर्मपात्र का पूजन करके उसके जल से सभी पूजा वस्तुओं पर छिड़कें.

घृतदीप-(ज्योति) पूजन—

"वह्निदैवतायै दीपपात्राय नमः" से पात्र की पूजा कर ईशान दिशा में घी का दीपक जलाकर अक्षत के ऊपर रखकर

ॐ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा, सूर्यो र्ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा। अग्निर्व्वर्च्चो र्ज्योतिर्व्वर्च्चः स्वाहा, सूर्योव्वर्चोर्ज्योतिर्व्वर्च्चः स्वाहा ।। र्ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो र्ज्योतिः स्वाहा। भो दीप देवरूपस्त्वं कर्मसाक्षी ह्यविघ्नकृत्। यावत्पूजासमाप्तिः स्यात्तावदत्रा स्थिरो भव।।
ॐ भूर्भुवः स्वः दीपस्थदेवतायै नमः आवाहयामि सर्वोपचारार्थे गन्धाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि नमस्करोमि।

शंखपूजन—

शंख को चन्दन से लेपकर देवता के वायीं ओर पुष्प पर रखकर शंख मुद्रा करें।
ॐ शंखं चन्द्रार्कदैवत्यं वरुणं चाधिदैवतम्।
पृष्ठे प्रजापतिं विद्यादग्रे गङ्गासरस्वती।।
त्रौलोक्ये यानि तीर्थानि वासुदेवस्य चाज्ञया।
शंखे तिष्ठन्ति वै नित्यं तस्माच्छंखं प्रपूजयेत्।।
त्वं पुरा सागरोत्पन्नो विष्णुना विधृतः करे।
नमितः सर्वदेवैश्च पाञ्चजन्य! नमोऽस्तुते।।
पाञ्चजन्याय विद्महे पावमानाय धीमहि तन्नः शंखः प्रचोदयात्।
ॐ भूर्भवः स्वः शंखस्थदेवतायै नमः
शंखस्थदेवतामावाहयामि सर्वोपचारार्थे गन्धपुष्पाणि समर्पयामि नमस्करोमि।

घण्टा पूजन—

ॐ सर्ववाद्यमयीघण्टायै नमः,
आगमार्थन्तु देवानां गमनार्थन्तु रक्षसाम्।
कुरु घण्टे वरं नादं देवतास्थानसन्निधौ।।
ॐ भूर्भुवः स्वः घण्टास्थाय गरुडाय नमः गरुडमावाहयामि सर्वोपचारार्थे गन्धाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि।
गरुडमुद्रा दिखाकर घण्टा बजाएं। दीपक के दाहिनी ओर स्थापित कर दें।

धूपपात्र की पूजा—

ॐ गन्धर्वदैवत्याय धूपपात्राय नमः इस प्रकार धूपपात्र की पूजा कर स्थापना कर दें।

गणेश गौरी पूजन—

हाथ में अक्षत लेकर-भगवान् गणेश का ध्यान-
गजाननं भूतगणादिसेवितं कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम्।
उमासुतं शोकविनाशकारकं नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम्।।

गौरी का ध्यान—

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः। नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्।।

श्री गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, ध्यानं समर्पयामि।

गणेश का आवाहन—

देवता अपने अंग, परिवार, आयुध और शक्तिसहित पधारें तथा मूर्ति में प्रतिष्ठित होकर हमारी पूजा ग्रहण करें', इस हेतु संपूर्ण शरणागतभाव से देवता से प्रार्थना करना, अर्थात् उनका `आवाहन' करना । आवाहन के समय हाथ में चंदन, अक्षत एवं तुलसीदल अथवा पुष्प लें । आवाहन के उपरांत देवता का नाम लेकर अंत में 'नमः' बोलते हुए उन्हें चंदन, अक्षत, तुलसीrदल अथवा पुष्प अर्पित कर हाथ जोडें ।

ॐ गणानां त्वा गणपति ग्वँग् हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपति ग्वँग् हवामहे निधीनां त्वा निधीपति ग्वँग् हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्॥

एह्यो हिहेरम्ब महेशपुत्र ! समस्तविघ्नौघविनाशदक्ष ।

माङ्गल्यपूजाप्रथमप्रधान गृहाण पूजां भगवन् नमस्ते॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय गणपतये नमः, गणपतिमावाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि च।

"ॐ आगच्छागच्छ देवेश त्रैलोक्यतिमिरापहो।

क्रियमाणां मया पूजां गृहाण सुरसत्तम ।

आवाहयामि स्थापयामि पूजयामि ॥"

हाथ के अक्षत को गणेश जी पर चढ़ा दें।

पुनः अक्षत लेकर गणेशजी की दाहिनी ओर गौरी जी का आवाहन करें।

गौरी का आवाहन–

ॐ अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन। ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्॥

हेमाद्रितनयां देवीं वरदां शङ्करप्रियाम्। लम्बोदरस्य जननीं गौरीमावाहयाम्यहम्॥

ॐभूर्भुवः स्वः गौर्यै नमः, गौरीमावाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि च।

"ॐ आगच्छागच्छ देवेश त्रैलोक्यतिमिरापहो।

क्रियमाणां मया पूजां गृहाण सुरसत्तम ।

आवाहयामि स्थापयामि पूजयामि ॥"

प्रतिष्ठा—

ॐ मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञ ग्वँग् समिमं दधातु। विश्वे देवास इह मादयन्तामो-3 म्प्रतिष्ठ॥

अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु च। अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कश्चन॥

गणेशाम्बिके ! सुप्रतिष्ठिते वरदे भवेताम्।

प्रतिष्ठापूर्वकम् आसनार्थे अक्षतान् समर्पयामि गणेशाम्बिकाभ्यां नमः।

आसान के लिए पुष्प समर्पित करें।

"ॐ रम्यं सुशोभनं दिव्यं सर्वसौख्यकरं शुभम् । आसनञ्च मया दत्त गृहाण परमेश्वर ।

आसनं समर्पयामि ॥

आचमनी से चरणों को धोने के लिए जलं समर्पित करें।

ॐ उष्णोदकं निर्मलञ्च सर्व सौगन्ध्य संयुतम् ।

पादप्रक्षालनार्थाय दत्तं ते प्रतिगृह्यताम् ।

पाद्यं समर्पयामि ॥

गन्ध पुष्प अक्षत युतं जलं तीन बार समर्पित करें।

ॐ अर्घ्यं गृहाण देवेश गन्धपुष्पाक्षतैः सह।
करुणां कुरु मे देव गृहाणायं नमोऽस्तुते॥

आचमनीयम्—

आचमनी से आचमन के लिये जल समर्पित करें।

ॐ सर्वतीर्थसमायुक्तं सुगन्धिनिर्मलं जलम्।
आचम्यतां मया दत्तं गृहाण परमेश्वर।
आचमनीयं समर्पयामि॥

देवता के आगमन पर उन्हें विराजमान होने के लिए सुंदर आसन दिया है, ऐसी कल्पना कर विशिष्ट देवता को प्रिय पत्र-पुष्प आदि (उदा. श्रीगणेशजी को दूर्वा, शिवजी को बेल, श्रीविष्णु को तुलसी) अथवा अक्षत अर्पित करें। (आसन के लिए अक्षत समर्पित करे)। देवता को ताम्रपात्र में रखकर उनके चरणों पर आचमनी से जल चढाएं।

आचमनी में जल लेकर उसमें चंदन, अक्षत तथा पुष्प डालकर, उसे मूर्ति के हाथ पर चढाएं। आचमनी में कर्पूर-मिश्रित जल लेकर, उसे देवता को अर्पित करने के लिए ताम्रपात्र में छोडें। धातु की मूर्ति, यंत्र, शालग्राम इत्यादि हों, तो उन पर जल चढाएं।

पाद्य, अर्घ्य. आचमनीय, स्नानीय और पुनराचमनीय हेतु जल अर्पण करें—

ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्॥
एतानि पाद्यार्घ्याचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि समर्पयामि गणेशाम्बिकाभ्यां नमः।

दुग्धस्नान—

ॐ पय: पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः पयस्वतीः। प्रदिशः सन्तु मह्यम्॥
कामधेनुसमुद्भूतं सर्वेषां जीवनं परम्। पावनं यज्ञहेतुश्च पयः स्नानार्थमर्पितम्॥
ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, पयः स्नानं समर्पयामि।

दधिस्नान—

ॐ दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः।सुरभि नो मुखाकरत्प्रण आयू ग्वँग् षि तारिषत्॥
पयसस्तु समुद्भूतं मधुराम्लं शशिप्रभम्। दध्यानीतं मया देव! स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्॥
ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, दधिस्नानं समर्पयामि।
(पुनः जल स्नान करायें।)

घृत स्नान—

ॐ घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम। अनुष्वधमा वह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम्॥
नवनीतसमुत्पन्नं सर्वसंतोषकारकम्।
घृतं तुभ्यं प्रदास्यामि स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्॥
ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, घृतस्नानं समर्पयामि।
(पुनः जल स्नान करायें।)

मधुस्नान–

ॐ मधुव्वाताऽऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिव ग्वँग् रजः।
मधुद्यौरस्तु नः पिता मधुमान्नो व्वनस्पतिर्म्मधुमाँऽ अस्तु सूर्यः माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥

पुष्परेणुसमुद्भूतं सुस्वादु मधुरं मधु।
तेजः पुष्टिकरं दिव्यं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्।।
ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, मधुस्नानं समर्पयामि।
(पुनः जल स्नान करायें।)

शर्करास्नान—

ॐ अपा ग्वँग् रसमुद्वयस ग्वँग् सूर्ये सन्त ग्वँग् समाहितम्। अपा ग्वँग् रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तममुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्।।
इक्षुरससमुद्भूतां शर्करां पुष्टिदां शुभाम्।
मलापहारिकां दिव्यां स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्।।
ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, शर्करास्नानं समर्पयामि।
(पुनः जल स्नान करायें।)

पञ्चामृतस्नान —

ॐ पञ्चनद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सश्रोतसः।
सरस्वती तु पञ्चधा सोदेशेऽभवत्सरित्।।
पञ्चामृतं मयानीतं पयो दधि घृतं मधु।
शर्करया समायुक्तं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्।।
ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, पञ्चामृतस्नानं समर्पयामि।

शुद्धोदकस्नान—

ॐ शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्तऽआश्विनाः
श्येतः श्येताक्षोऽरुणस्ते रुद्राय पशुपतये कर्णा
यामा अवलिप्तारौद्रा नभोरूपाः पार्जन्याः।।
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धुकावेरि स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्।।
ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, शुद्धोकस्नानं समर्पयामि।

आचमन—

शुद्धोकदकस्नानान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि।
(आचमन के लिए जल दें।)

वस्त्र—

ॐ युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो 3 मनसा देवयन्तः।।
शीतवातोष्णसंत्राणं लज्जाया रक्षणं परम्।
देहालङ्करणं वस्त्रामतः शान्तिं प्रयच्छ मे।।
ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, वस्त्रां समर्पयामि।
ॐ सर्वभूषाधिके सौम्ये लोकलज्जानिवारणे ।
मयोपपादिते तुभ्यं वाससी प्रतिगृह्यताम् ।
वस्त्रोपवस्त्रं समर्पयामि ॥
वस्त्रान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि।
वस्त्र के बाद आचमन के लिए जल दे।

उपवस्त्र—

ॐ सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरूथमाऽसदत्स्वः।
वासो अग्ने विश्वरूप ग्वँग् सं व्ययस्व विभावसो।।
यस्याभावेन शास्त्रोक्तं कर्म किञ्चिन्न सिध्यति।
उपवस्त्रं प्रयच्छामि सर्वकर्मापकारकम्।।
ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, उपवस्त्रं समर्पयामि।
उपवस्त्र न हो तो रक्त सूत्र अर्पित करे।

आचमन—

उपवस्त्र के बाद आचमन के लिये जल दें।

यज्ञोपवीत—

ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रां प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः।।
यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीततेनोपनह्यामि।
नवभिस्तन्तुभिर्युक्तं त्रिगुणं देवतामयम्।
उपवीतं मया दत्तं गृहाण परमेश्वर !।।
ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, यज्ञोपवीतं समर्पयामि।
ॐ नवभिस्तन्तुभिर्युक्तं त्रिगुणं देवतामयम् ।
उपवीतं मया दत्तं गृहाण परमेश्वर ।
यज्ञोपवीतं समर्पयामि ॥

आचमन - यज्ञोपवीत के बाद आचमन के लिये जल दें।

चन्दन —

ॐ त्वां गन्धर्वा अखनँस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः।
त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान् यक्ष्मादमुच्यत।।
श्रीखण्डं चन्दनं दिव्यं गंधाढ्यं सुमनोहरम्।
विलेपनं सुरश्रेष्ठ ! चन्दनं प्रतिगृह्यताम्।।
ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, चन्दनानुलेपनं समर्पयामि।

अक्षत—

ॐ अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजान्विन्द्र ते हरी।।
अक्षताश्च सुरश्रेष्ठ कुङ्कुमाक्ताः सुशोभिताः।
मया निवेदिता भक्त्या गृहाण परमेश्वर।।
ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, अक्षतान् समर्पयामि।

पुष्पमाला—

ॐ ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः।
अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः।।
माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो।
मयाहृतानि पुष्पाणि पूजार्थं प्रतिगृह्यताम्।।
ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, पुष्पमालां समर्पयामि।

दूर्वा—

ॐ काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि।
एवा नो दूर्वे प्रतनुसहश्रेण शतेन च।।
दूर्वाङ्कुरान् सुहरितानमृतान् मङ्गलप्रदान्।
आनीतांस्तव पूजार्थं गृहाण गणनायक !।।
ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, दूर्वाङ्कुरान् समर्पयामि।

सिन्दूर-

ॐ सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः।
घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः।।
सिन्दूरं शोभनं रक्तं सौभाग्यं सुखवर्धनम्।
शुभदं कामदं चैव सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम्।।
ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, सिन्दूरं समर्पयामि।

अबीर गुलाल आदि नाना परिमल द्रव्य-

ॐ अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमा ग्वँग् सं परि पातु विश्वतः।।
अबीरं च गुलालं च हरिद्रादिसमन्वितम्।
नाना परिमलं द्रव्यं गृहाण परमेश्वर!।।
ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, नानापरिमलद्रव्याणि समर्पयामि।

सुगन्धिद्रव्य-

ॐ अहिरिव0 इस पूर्वोक्त मंत्र से चढ़ाये
ॐ अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमा ग्वँग् सं परि पातु विश्वतः।।
दिव्यगन्धसमायुक्तं महापरिमलाद्भुतम्।
गन्धद्रव्यमिदं भक्त्या दत्तं वै परिगृह्यताम्।।
ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, सुगन्धिद्रव्यं समर्पयामि।

धूप-

ॐ धूरसि धूर्व्व धूर्व्वन्तं धूर्व्वतं योऽस्मान् धूर्व्वति तं धूर्व्वयं वयं धूर्व्वामः।
देवानामसि वह्नितम ग्वँग् सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम्।।
वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।।
ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, धूपमाघ्रापयामि।

दीप-

ॐ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा।
अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्च स्वाहा।।
ज्योर्ति सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा।।
साज्यं च वर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया।
दीपं गृहाण देवेश त्रौलौक्यतिमिरापहम्।।
भक्त्या दीपं प्रयच्छामि देवाय परमात्मने।

त्राहि मां निरयाद् घोराद् दीपज्योतिर्नमोऽस्तु ते।।
ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, दीपं दर्शयामि।
हस्तप्रक्षालन— 'ॐ हृषीकेशाय नमः' कहकर हाथ धो ले।
नैवेद्य-
पुष्प चढ़ाकर बायीं हाथ से पूजित घण्टा बजाते हुए।
ॐ नाभ्या आसीदन्तरिक्ष ग्वँग् शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्राँत्तथा लोकाँ2 अकल्पयन्।।
ॐ प्राणाय स्वाहा। ॐ अपानाय स्वाहा। ॐ समानाय स्वाहा।
ॐ उदानाय स्वाहा। ॐ व्यानाय स्वाहा।
शर्कराखण्डखाद्यानि दधिक्षीरघृतानि च।
आहारं भक्ष्यभोज्यं च नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्।।
ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, नैवेद्यं निवेदयामि।
नैवेद्यान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि।
ऋतुफल— -
ॐ याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्व ग्वँग् हसः।।
इदं फलं मया देव स्थापितं पुरतस्तव।
तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि।।
ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, ऋतुफलानि समर्पयामि।
जल—
फलान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि। जल अर्पित करे।
ॐ मध्ये-मध्ये पानीयं समर्पयामि। उत्तरापोशनं समर्पयामि हस्तप्रक्षालनं समर्पयामि मुखप्रक्षालनं समर्पयामि।
करोद्वर्तन—
ॐ अ ग्वँग् शुना ते अ ग्वँग् शुः पृच्यतां परुषा परुः।
गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसो अच्युतः।।
चन्दनं मलयोद्भुतं कस्तूर्यादिसमन्वितम्।
करोद्वर्तनकं देव गृहाण परमेश्वर।।
ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, करोद्वर्तनकं चन्दनं समर्पयामि।
ताम्बूल— -
ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः।।
पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम्।
एलादिचूर्णसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम्।।
ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, मुखवासार्थम् एलालवंगपूगीफलसहितं ताम्बूलं समर्पयामि।
(इलायची, लौंग-सुपारी के साथ ताम्बूल अर्पित करे।)

दक्षिणा—

ॐ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥
हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः।
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥
ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, कृतायाः पूजायाः सादुण्यार्थे द्रव्यदक्षिणां समर्पयामि। (द्रव्य दक्षिणा समर्पित करे।)

विशेषार्घ्य—

ताम्रपात्र में जल, चन्दन, अक्षत, फल, फूल, दूर्वा और दक्षिणा रखकर अर्घ्यपात्र को हाथ में लेकर निम्नलिखित मन्त्र पढ़ें-

ॐ रक्ष रक्ष गणाध्यक्ष रक्ष त्रौलोक्यरक्षक।
भक्तानामभयं कर्ता त्राता भव भवार्णवात्॥
द्वैमातुर कृपासिन्धो षाण्मातुराग्रज प्रभो!।
वरदस्त्वं वरं देहि वाञ्छितं वाञ्छितार्थद॥
गृहाणाघ्र्यमिमं देव सर्वदेवनमस्कृतम्।
अनेन सफलाघ्र्येण फलदोऽस्तु सदा मम।

आरती—

ॐ इद ग्वँग् हविः प्रजननं मे अस्तु दशवीर ग्वँग् सर्वगण ग्वँग् स्वस्तये।
आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि।
अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतो अस्मासु धत्त॥
ॐ आ रात्रि पार्थिव ग्वँग् रजः पितुरप्रायि धामभिः।
दिवः सदा ग्वँग् सि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः॥
कदलीगर्भसम्भूतं कर्पूरं तु प्रदीपितम्।
आरार्तिकमहं कुर्वे पश्य मे वरदो भव॥
ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, अरार्तिकं समर्पयामि।
(कर्पूर की आरती करें, आरती के बाद जल गिरा दें।)

मन्त्र पुष्पांजलि—

अंजली में पुष्प लेकर खड़े हो जायें।
ॐ मालतीमल्लिकाजाती- शतपत्रादिसंयुताम्।
पुष्पांजलिं गृहाणेश तव पादयुगार्पितम्॥
ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्रा पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥
नानासुगन्धिपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च।
पुष्पाञ्जलिर्मया दत्तं गृहाण परमेश्वर॥
ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि। (पुष्पाञ्जलि अर्पित करे।)

प्रदक्षिणा—

ॐ ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः।
तेषा ग्वँग् सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि।

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणपदे पदे।।
ॐ भूर्भुवः स्वः गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, प्रदक्षिणां समर्पयामि।
(प्रदक्षिणा करे।)

प्रार्थना—

विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय।
नागाननाय श्रुतियज्ञविभूषिताय गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते।।
लम्बोदर नमस्तुभ्यं सततं मोदकप्रिय। निर्विविघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा।।
अनया पूजया सिद्धि-बुद्धि-सहितः श्रीमहागणपतिः साङ्गः परिवारः प्रीयताम्।।
श्रीविघ्नराजप्रसादात्कर्तव्यामुककर्मनिर्विघ्नसमाप्तिश्चास्तु।

बोध प्रश्न—

१. षोडश का अर्थ है ?

क. १२
ख. १४
ग. १६
घ. १८

२. प्रदक्षिणा कि जाती है।

क. आरती से पूर्व
ख. मन्त्र पुष्पांजली के बाद
ग. संकल्प के बाद
घ. विसर्जन के बाद

३. प्रतिष्ठा कि जाती है।

क. आवाहन के बाद
ख. आवाहन से पूर्व
ग. स्नान के बाद
घ. तिलक के बाद

४. पूजा में सर्वप्रथम होता है।

क.आचमन
ख.शिखाबंधन
ग. आसन शुद्धि
घ. आवाहन

2.5 सारांश

किसी भी मांगलिक कार्य में मुख्यतः इन्ही षोडश मन्त्रों के द्वारा पूजन किया जाता है। इस इकाई के माध्यम से हमने यह जानने का प्रयास किया कि षोडशोपचार पूजन विधि को किस प्रकार से किया जाता है। तथा इसके करने का क्या विधान है, और मंत्रों का क्रम किस प्रकार से रहता है। सांथ ही कौन-कौन सी सामग्री के द्वारा इन सोलह प्रकार से पूजन किया जा सकता है।

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

१. ग

२. ख

३. क

४. क

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. नित्यकर्म पूजाप्रकाश पं लालविहारी मिश्र गीताप्रेस गोरखपुर

२. कर्मठ गुरुः पं मुकुन्द बल्लभ मोतीलाल वनारसीदास , वाराणसी

३. सर्व देव पूजा पद्धति शिव दत्त मिश्र चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

१. षोडशोपचार पूजन विधि से आप क्या समझते है, उसका वर्णन करें

२. सम्पूर्ण संकल्प विधि को लिखें

इकाई-3 पंचांग परिचय एवं महत्त्व

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 पञ्चांग परिचय
3.4 पञ्चांग के अंग
    3.4.1 तिथि परिचय
    3.4.2 वार परिचय
    3.4.3 नक्षत्र परिचय
    3.4.4 योग परिचय
    3.4.5 करण परिच
3.5 सारांश
3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई पञ्चांग परिचय शीर्षक नाम से है, इस इकाई के माध्यम से हम यह जानने का प्रयास करेंगे की पञ्चांग क्या है ? यह किन –किन अवयवों से मिलकर बनता है। तथा इसका क्या महत्व है ।और यह किस तरह से सबके लिये उपयोगी होता है। वैदिक काल में ऋषियों ने समय का ध्यान रखने के लिये सूर्य ,चन्द्रमा और खगोलीय पिंडो की गतिविधियों की गणना करके एक समय निर्धारण पद्यति का निर्माण किया जो पञ्चांग के रूप में आदि काल से हमारे सामने प्रस्तुत है। भारतीय ज्योतिष के रहस्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए गणित ज्योतिष का ज्ञान अनिवार्य है, पर साधारण जनता के लिए अति आवश्यक नहीं। हर एक व्यक्ति के लिए यह जरूरी नहीं कि वह ज्योतिषी हो, किन्तु मानव मात्र को अपने जीवन को व्यवस्थित करने के नियमों को जानना भीअनिवार्य है। पञ्चांग ज्योतिष की सरलतम इकाई में से एक है ।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप–

- पञ्चांग के बारे में विस्तृत से जान सकेंगे
- तिथि के बारे में विस्तार से बता सकेंगे
- वारों के बारे में विस्तार से जान पाएंगे
- नक्षत्रों के बारे में विस्तारपूर्वक जान पाएंगे
- योगों की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर पाएंगे
- करण को समझ सकेंगे

3.3 पञ्चांग परिचय

भारतीय काल गणना की बात करी जाय तो बिना पञ्चांग के सम्भव हो ही नहीं सकता, बिना पञ्चांग के किसी भी कार्य के सही समय का आकलन नही किया जा सकता है। इसलिए पञ्चांग से जो हम गणना करते है, उनमे किन –किन चीजों की आवश्कता होती है ,उसे समझाने का या समझने का सरलतम माध्यम क्या है।इसे समझने का प्रयास करते है। पंचांग का शाब्दिक अर्थ है – पांच अंगों से जिसका निर्माण हुआ हो वह पञ्चांग कहलाता है । वह पांच अंग कौन-कौन से है, तिथि ,वार ,नक्षत्र ,योग,और करण इन पांचों के समूह को पञ्चांग की संज्ञा दि गयी है। पंचांग के द्वारा ही मानव जीवन के सभी प्रकार के मांगिलक कार्य हेतु शुभा-शुभ शुद्ध समय का जो निर्धारण किया जाता है वह बिना पञ्चांग के हो ही नहीं सकता,जहाँ ये पांच अंग हमें शुभाशुभ का ज्ञान कराते हैं,वहीं हमें गगन की गतिविधियों को दर्शाने में भी सहायक होते हैं। इन अंगों के निरूपण के साथ-साथ ग्रहों की गति उनके चार,स्थिति और उदय अस्त का भी ज्ञान हमें पञ्चांग के माद्यम से बहुत सरल तरीके से प्राप्त हो जाता है। पञ्चांग भारतीय काल गणना का मुख्य स्रोत है।

3.4 पञ्चांग के अंग

3.4.1 तिथि—

पञ्चांग का प्रथम अंग तिथि है,वैदिक लोग वेदांग ज्योतिषके आधार पर तिथिको अखण्ड मानते है। क्षीण चन्द्रकला जब बढने लगता है तब अहोरात्रात्मक तिथि मानते है। जिस

दिन चन्द्रकला क्षीण होता उस दिन अमावास्या माना जाता है। उसके दूसरे दिन शुक्लप्रतिपदा होती है। एक सूर्योदय से अपर सूर्योदय तक का समय अहोरात्र कहा गया है उसी को एक तिथि माना जाता है।चन्द्रमा की एक कला को तिथि माना गया है। इसका चन्द्र और सूर्य के अन्तश पर से मान निकाला जाता है। प्रतिदिन १२ अंशों का अन्तर सूर्य और चन्द्रमा में होता है, यही अन्तराश का मध्यम मान है। अमावस्या के बाद प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक की तिथियों शुक्लपक्ष की और पूर्णिमा के बाद प्रतिपदा से लेकर अमावस्या तक की तिथियाँ कृष्णपक्ष की होती हैं ज्योतिषशास्त्र में तिथियों की गणना शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से आरम्भ होती है।तिथि को हम इस प्रकार से समझ सकते है कि चन्द्र रेखा को सूर्य रेखा से १२ अंश ऊपर जाने में लगने वाले समय को तिथि कहते है। इसलिये प्रत्येक अमावस्या और पूर्णिमा के बीच कुल चौदह तिथियां होती है। शून्य को अमावस्या और पंद्रहवी तिथि को पूर्णिमा कहा जाता है।

तिथियों के स्वामी—

तिथिशा वह्निका गौरी गणेशोऽ हिर्गुहो रविः ।
शिवो दुर्गान्तको विश्वे हरिः कामः शिवः शशी ॥

तिथि	स्वामी	तिथि	स्वामी
प्रतिपदा	अग्नि	नवमी	दुर्गा
द्वितीया	ब्रह्मा	दशमी	यम
तृतीया	गौरी	एकादशी	विश्वेदेव
चतुर्थी	गणेश	द्वादशी	विष्णु
पंचमी	सर्प	त्रियोदशी	कामदेव
षष्ठी	स्कन्द	चतुर्दशी	शिव
सप्तमी	सूर्य	पूर्णिमा चन्द्रमा	(शुक्ल पक्ष)
अष्टमी	शिव	अमावस्या पितर (कृष्ण पक्ष)	

इसी प्रकार से अमावस्या के तीन भेद हैं- सिनीवाली, दर्श और कुहू । प्रातः काल से लेकर रात्रि तक रहनेवाली अमावस्या को सिनीवाली, चतुर्दशी से विद्ध को दर्श एवं प्रतिपदा से युक्त अमावस्या को कुहु कहते हैं

नन्दादितिथिसंज्ञाचक्र—

नन्दा च भद्रा च जया च रिक्ता पूर्णेति तिथ्योऽशुभ मध्यशस्ताः ।
सितेऽसिते शस्तसमाधमाः स्युः सितज्ञभौमार्किगुरौ च सिद्धाः ॥

नन्दा	प्रतिपदा, षष्ठी, एकादशी
भद्रा	द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी
जया	तृतीया, अष्टमी, त्रियोदशी
रिक्ता	चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी
पूर्णा	पञ्चमी, दशमी, पूर्णिमा , अमावस्या

सिद्धादि तिथियाँ

वार	तिथि
मंगलवार	तृतीया, अष्टमी, त्रियोदशी
बुधवार	द्वितीया,सप्तमी, द्वादशी

गुरुवार	पञ्चमी, दशमी, पूर्णिमा
शुक्रवार	प्रतिपदा,षष्ठी, एकादशी
शनिवार	चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी

ये तिथियाँ सिद्धि को देने वाली होती है। इन तिथियों में किया गया कार्य सिद्धिदायक होता है।
दग्ध, विष, हुताशन तिथियों का परिचय—

वार	दग्ध तिथियाँ	वार	विषतिथियाँ	वार	हुताशन तिथियाँ
रविवार	द्वादशी	रविवार	चतुर्थी	रविवार	द्वादशी
सोमवार	एकादशी	सोमवार	षष्ठी	सोमवार	षष्ठी
मंगलवार	पञ्चमी	मंगलवार	सप्तमी	मंगलवार	सप्तमी
बुधवार	तृतीया	बुधवार	द्वितीया	बुधवार	अष्टमी
गुरुवार	षष्ठी	गुरुवार	अष्टमी	गुरुवार	नवमी
शुक्रवार	अष्टमी	शुक्रवार	नवमी	शुक्रवार	दशमी
शनिवार	नवमी	शनिवार	सप्तमी	शनिवार	एकादशी

इनके नाम के अनुसार ही ये तिथियाँ बाधा कारक मानी गयी है। इन तिथियों में शुभ कार्य करने से विघ्न –बाधाओं का सामना करना पड़ता है, इसलिये ये तिथियाँ शुभ कार्य में वर्जित हैं।

3.4.2 वार विचार

यह पञ्चांग का दूसरा अंग वार है,पञ्चांग में तिथि के पास वार दिया रहता है। भारतीय ज्योतिष परम्परा में वार को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। भारतीय वैदिक परम्परा में सूर्योदय से लेकर अगले दिन के सूर्योदय तक का समय एक दिन कहलाता है ।जिस दिन की प्रथम होरा का जो ग्रह स्वामी होता है, उस दिन उसी ग्रह के नाम का वार रहता है। अभिप्राय यह है कि ग्रहों कि कक्षा क्रम के आधार पर ज्योतिषशास्त्र में शनि, बृहस्पति, मंगल, रवि, शुरू बुध और चन्द्रमा-ये ग्रह एक-दूसरे से नीचे-नीचे माने गये हैं। अर्थात् सबसे ऊपर शनि, उससे नीचे बृहस्पति उससे नीचे मंगल, मंगल के नीचे रवि इत्यादि क्रम से ग्रहों की कक्षा हैं। एक दिन में २४ होराएँ होती हैं एक-एक घण्टे की एक-एक होरा होती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि घण्टे का दूसरा नाम होरा है। वारों के गणना क्रम को समझने के लिये चक्र से सुगमता से समझा जा सकता है ।

आदित्यश्चंद्रमा भौमो बुधाश्चाथ बृहस्पतिः।
शुक्रः शनैश्चरश्चैते वासराः परिकीर्तिताः ।।

रवि,सोम,मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि ये सात वार हैं ।

वार होरा चक्र

होरा	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
१	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
२	शुक्र	शनि	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु
३	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	सूर्य	चन्द्र	मंगल
४	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	सूर्य
५	शनि	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र

६	गुरु	शुक्र	शनि	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध
७	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	सूर्य	चन्द्र
८	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
९	शुक्र	शनि	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु
१०	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	सूर्य	चन्द्र	मंगल
११	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	सूर्य
१२	शनि	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र
१३	गुरु	शुक्र	शनि	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध
१४	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	सूर्य	चन्द्र
१५	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
१६	शुक्र	शनि	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु
१७	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	सूर्य	चन्द्र	मंगल
१८	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	सूर्य
१९	शनि	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र
२०	गुरु	शुक्र	शनि	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध
२१	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	सूर्य	चन्द्र
२२	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
२३	शुक्र	शनि	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु
२४	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	सूर्य	चन्द्र	मंगल

शुभाशुभवार—

गुरुश्चन्द्रो बुधः शुक्रः शुभा वाराः शुभे स्मृताः । क्रूरास्तु क्रूरकृत्येषु ग्राह्या भौमार्कसूर्यजाः ॥ २ ॥
बुध, गुरु, शुक्र, और (शुक्ल पक्ष में) चन्द्र ये शुभ दिन हैं। इनमें शुभ कार्य सिद्ध होता है । रवि, मंगल, शनि ये क्रूर एवं पाप हैं। इन दिनों में क्रूर कर्म सिद्ध होता है ॥ २ ॥

आवश्यक वारदोषपरिहार—

न वारदोषाः प्रभवन्ति रात्रौ देवेज्यदैत्येज्यदिवाकराणाम् ।
दिवा शशांकार्कजभूतानां सर्वत्र निन्द्यो बुधवारदोषः ॥ ३ ॥
आवश्यक कार्य में सूर्य, गुरु, शुक्र के दिन का दोष रात्रि में नहीं होता है अर्थात् इनमें दिन में जो कार्य निषिद्ध हैं उसे रात्रि में किया जा सकता है। इसी प्रकार सोम, शनि, मंगल को रात्रि का निषिद्ध कार्य दिन किया जा सकता है, इनमें रात्रि का दोष दिन में नहीं होता है। बुधवार का दोष रात्रि और दिन समान रूप से निन्द्य है ॥ ३ ॥

3.4.3 नक्षत्र परिचय

यह पञ्चांग का तीसरा महत्वपूर्ण अंग नक्षत्र है। वैदिक ज्योतिष में नक्षत्रों का अत्यधिक महत्व है। जन्म नक्षत्र ऐसा नक्षत्र है जो किसी व्यक्ति के जन्म के दौरान अस्तित्व में आता है। जन्म नक्षत्र किसी व्यक्ति की विशेषताओं, लक्षणों, विचार स्वरूप में एक अंतर्दृष्टि प्रदान करता है और दशा अवधि की गणना में मदद करता है। कई ताराओं के समुदाय का नक्षत्र कहते हैं। आकाश-मण्डल में जो चारिकाओं से कहीं अश्व, शकट, सर्प, हाथ आदि के आकार बन जाते हैं।जिस प्रकार लोक व्यवहार में एक स्थान से दूसरे स्थान की दूरी मीलों या कोसों में

नापी जाती है, उसी प्रकार आकाश मण्डल की दूरी नक्षत्रों से ज्ञात की जाती है। समस्त आकाश-मण्ड को ज्योतिषशास्त्र ने २७ भागों में विभक्त कर प्रत्येक भाग का नाम एक-एक नक्षत्र है।

अश्विनी भरणी चैव कृतिका रोगी मृगः। आर्द्रा पुनर्वसू पुष्यस्तथाश्लेषा मघा ततः॥
पूर्वाफाल्गुनिका चैव उत्तराफाल्गुनी ततः । हस्तचित्रा तथा स्वाती विशाखा तदनन्तरम् ॥
अनुराधा ततो ज्येष्ठा ततो मूलं निगद्यते । पूर्वाषादीत्तराषाढा त्वभिच्छ्रिवणा ततः ॥
धनिष्ठा शततताराख्यं पर्वाभाद्रपदा ततः । उत्तराभाद्रपदा चैव रेवत्येतानि भानि च ॥

अश्विनी	मघा	मूल
भरणी	पूर्वाफाल्गुनी	पूर्वाषाढा
कृतिका	उत्तराफाल्गुनी	उत्तराषाढा
रोहिणी	हस्त	श्रवण
मृगशिरा	चित्रा	धनिष्ठा
आर्द्रा	स्वाती	शतभिषा
पुनर्वसु	विशाखा	पूर्वाभाद्रपदा
पुष्य	अनुराधा	उत्तराभाद्रपदा
आश्लेषा	ज्येष्ठा	रेवती

अभिजित् को २८ वां नक्षत्र माना गया है। उत्तराषाढा की अंतिम की १५ घटी व श्रवण की प्रथम ४ घटी कुल मिलाकर १९ घटी का मान अभिजित् का माना गया है। यह समस्त शुभ कार्यों में अच्छा माना जाता है।

नक्षत्र मुखादि संज्ञा चक्र

मुखादि संज्ञा	नक्षत्र
ऊर्ध्वमुख	रो, आ, पुष्य, उफा, उषा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, उभा,
अधोमुख	भरणी, कृतिका, अश्लेषा, मघा, पूफा, विशाखा, पूषा, पूर्वाभा,
पार्श्वमुख	अश्विनी, मृग, पुन, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनु, ज्येष्ठा, रेवती,

१. ऊर्ध्वमुख नक्षत्रों में देवालय व गृह निर्माण कार्य, ध्वजारोहण, मंडप-बाग-बगीचा निर्माण कार्य,विवाहादि मांगलिक कार्य, राज्याभिषेक, जैसे कार्यों को करना अभीष्ट फलदायक होता है।
२. अधोमुख नक्षत्रों में कुआं-बावडी-तलब-हौज तथा खान का खनन कार्य आरम्भ करना, गड़े हुये द्रव्य का निकलना, गणित व ज्योतिष विद्या का अध्ययन, शिल्प-कला-लेखन आदि को प्रारम्भ करना,तृणआदि का संचय करना विशेष उत्तम माना गया है।
३. पार्श्वमुख नक्षत्रों में चोपाये वस्तुओं को खरीदना और उनका प्रशिक्षण करवाना, हल चलाना, पत्र व्यवहार करना तथा जल-थल-नभ की यात्राओं को करने में लाभकारी रहते है।

नक्षत्र स्वामी बोधक चक्र

नक्षत्र	देवता	नक्षत्र	देवता	नक्षत्र	देवता
अश्विनी	अ.कु.	मघा	पितर	मूल	राक्षस
भरणी	यम	पूर्वाफाल्गुनी	भग	पूर्वाषाढा	जल
कृतिका	अग्नि	उत्तराफाल्गुनी	अर्यमा	उत्तराषाढा	विश्वे
रोहिणी	ब्रह्मा	हस्त	रवि	श्रवण	विष्णु
मृगशिरा	चन्द्रमा	चित्रा	विश्वेदेव	धनिष्ठा	वसु

आर्द्रा	शिव	स्वाती	वायु	शतभिषा	वरुण
पुनर्वसु	अदिति	विशाखा	इन्द्राग्नी	पूर्वाभाद्रपदा	अजपाद
पुष्य	बृह.	अनुराधा	मित्र	उत्तराभाद्रपदा	अहिर्बुध्न्य
आश्लेषा	सर्प	ज्येष्ठा	इन्द्र	रेवती	पूषा

अन्धाक्ष नक्षत्र संज्ञा चक्र

संज्ञा	नक्षत्र
अन्धाक्ष	रोहिणी, पुष्य, उफा, विशाखा, पूषा, धनि, रेवती
मध्याक्ष	भरणी, आर्द्रा, मघा, चित्रा, ज्येष्ठा, अभि, पूर्वाभाद्रपदा
मंदाक्ष	अश्विनी, मृगशिरा, आश्लेषा, हस्त, अनुराधा, उत्तराषाढा, शतभिषा
सुलोचन	कृतिका, पुनर्वसु, पूर्वाफाल्गुनी, स्वाती, मूल, श्रवण, उत्तराभाद्रपदा

यह नक्षत्र चक्र विशेषकर खोई हुई वस्तुओं के बारे में व लाभालाभ के बारे में ज्ञान कराने में विशेष सहयोगकर होता हैं।

अन्धाक्ष नक्षत्रों में खोई हुई वस्तु पूर्वदिशा की और जाती है, और उसकी पुनः प्राप्ति शीघ्र हो जाती है।

मध्याक्ष नक्षत्रों में चोरी हुई वस्तु पश्चिम दिशा की और दूर चली जाती है, वस्तु का पता भी चल जाता है, पर हाथ में नही मिल पाती।

मंदाक्ष नक्षत्रों में कोई वस्तु चोरी हो गयी हो तो वह दक्षिण दिशा की और जाती है, तथा खोजने पर वह प्राप्त हो जाती है।

सुलोचन नक्षत्रों में कोई वस्तु चोरी हो गयी हो तो वह उत्तर दिशा की और गयी हुई होती है है, परन्तु न तो उसका पता ही चलता है न तो वह मिल पाती है।

पंचक संज्ञक नक्षत्र—

धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती-इन पांच नक्षत्रों का समूह ज्योतिष संसार में पंचक नाम से प्रसिद्ध है। इस नक्षत्र पंचक का भाभोग कुम्भ और मीन राशि गत चन्द्रमा के भोग्य काल के बराबर भी माना जाता है, यह पंचक नक्षत्र कई कार्यों में त्याज्य माना जाता है। पंचक के प्रति ऐसा भी कथन है किइसमें किये गये सभी कार्यों कि पांच बार पुनरावृति होती है। अर्थात् इन नक्षत्रों में किसी के पुत्रोत्पत्ति हो तो और पांच पुत्र होते है,और यदि किसी के घर में मृत्यु हो जाती है तो पांच मृत्यु होने कि पूर्ण सम्भावना रहती है। इसलिये मृत्यु के समय पंचक दोष हो तो उसकी शान्ति करवानी अति आवश्यक है।

गंडमूल संज्ञक नक्षत्र—

अश्विनी आदि २७ नक्षत्रों में से ६ नक्षत्र ज्येष्ठा, आश्लेषा, रेवती, मूल, मघा और अश्विनी ये नक्षत्र गंडमूल संज्ञक हैं। इन नक्षत्रों में उत्पन्न जातक-जातिका स्वयं व कुटुम्बी जनों के लिये कष्टकारी माने गये है।

जातो न जीवति नरो मातुरपथ्यो भवेत्स्वकुलहन्ता।
यदि जीवति गण्डान्ते बहुगज तुरगो भवेदभूतः ।।

गण्डमूल नक्षत्र व फल

नक्षत्र	अश्विनी	आश्लेषा	मघा	ज्येष्ठा	मूल	रेवती
प्रथम चरण	पिता को भय	शान्ति से शुभ	माता को कष्ट	बड़े भाई को कष्ट	पिता को कष्ट	राज्य सम्मान
द्वितीय चरण	सुख-सम्पत्ति	धनहानि	पिता को भय	छोटे भाई को कष्ट	माता को कष्ट	मंत्रित्व पद प्राप्ति
तृतीय चरण	मंत्रित्व पद प्राप्ति	माता को कष्ट	सुख	माता को कष्ट	धनहानि	धन-सुख प्राप्त
चतुर्थ चरण	राज्य सम्मान	पिता को कष्ट	धन-विद्या प्राप्ति	सुख में कमी	शान्ति से शुभ	अनेक कष्ट

3.4.4 योग विचार

पञ्चांग का यह चौथा अंग योग है। चन्द्र सूर्य कि गति में जब १३ अंश २० कला अन्तर आ जाता है तब एक योग बनता है। अर्थात् जब सूर्य और चन्द्रमा दोनों अश्विनी नक्षत्र से ८०० कलाएं चल लेते है,तब एक योग होता है। योग का अर्थ है जोड़ अर्थात् सूर्य व चन्द्रमा कि यात्रा का जोड़। योग नक्षत्रों कि तरह कोई तारा पिंड नहीं है अपितु वह सूर्य-चन्द्र के अन्तर कि माप है। सूर्य और चन्द्रमा के स्पष्ट स्थानों को जोड़कर तथा कलाएँ बनाकर ८०० का भाग देने पर गत योगों की संख्या निकल आती है। शेष से यह अवगत किया जाता है कि वर्तमान योग की कितनी कलाएँ बीत गयी हैं। शेष को ८०० में से घटाने पर वर्तमान योग की गम्य कलाएँ आती हैं। इन गत या गम्य कलाओं को ६० से गुणा कर सूर्य और चन्द्रमा की स्पष्ट दैनिक गति के योग से भाग देने पर वर्तमान योग की गत और गम्य घटिकाएँ आती हैं। अभिप्राय यह है कि जब अश्विनी नक्षत्र के आरम्भ से सूर्य और चन्द्रमा दोनों मिलकर ८०० कलाएँ आगे चल चुकते हैं तब एक योग बीतता है, जब १६०० कलाएँ आगे चलते हैं तब दो, इसी प्रकार जब दोनों १२ राशियाँ-२१६०० कलाएँ अश्विनी से आगे चल चुकते हैं तब २७ योग बीतते हैं।

योगों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। नैसर्गिक व तात्कालिक। नैसर्गिक योगों का सदैव एक ही क्रम रहता हैऔर एक के बाद एक आते रहते है। विष्कुम्भादि योग नैसर्गिक श्रेणी में आते है। परन्तु तात्कालिक योग तिथि-वार-नक्षत्रादि के विशेष संगम से बनते है।

विष्कुम्भः प्रीतिरायुष्मान् सौभाग्यः शोभनस्तथा।
अतिगण्डः सुकर्मा च धृतिः शूलस्तथैव च॥
गण्डो वृद्धिर्ध्रुवश्चैव व्याघातो हर्षणस्तथा।
कज्रः सिद्धिर्व्यतीपातो वरीयान् परिघः शिवः॥
साध्यः सिद्धः शुभः शुक्लो ब्रह्मेन्द्रौ वैधृतिस्तथा॥

योग	स्वामी	फल
१. विष्कुम्भ	यम	अशुभ
२. प्रीति	विष्णु	शुभ
३. आयुष्मान	चन्द्र	शुभ
४. सौभाग्य	ब्रह्मा	शुभ
५. शोभन	बृहस्पति	शुभ
६. अतिगण्ड	चन्द्र	अशुभ

७. सुकर्मा	इन्द्र	शुभ
८. धृति	जल	शुभ
९. शूल	सर्प	अशुभ
१०. गण्ड	अग्नि	अशुभ
११. वृद्धि	सूर्य	शुभ
१२. ध्रुव	भूमि	शुभ
१३. व्याघात	वायु	अशुभ
१४. हर्षण	भग	शुभ
१५ .वज्र	वरुण	अशुभ
१६. सिद्धि	गणेश	शुभ
१७. व्यतिपात	रूद्र	अशुभ
१८. वरीयान्	कुबेर	शुभ
१९. परिध	विश्वकर्मा	अशुभ
२०. शिव	मित्र	शुभ
२१. सिद्ध	कार्तिकेय	शुभ
२२ .साध्य	सावित्री	शुभ
२३. शुभ	लक्ष्मी	शुभ
२४. शुक्ल	पार्वती	शुभ
२५. ब्रह्म	अश्विनीकुमार	शुभ
२६. ऐन्द्र	पितर	अशुभ
२७. वैधृति	दिति	अशुभ

योगों का त्याज्यकाल—

परिवस्य त्यजेदर्द्ध शुभकर्म ततः परम्। त्यजादी पक्ष विष्कम्भे सप्त शूले च नाडिकाः ॥
गण्डव्याघातयोः षट्कं नव हर्षणवज्रयोः। वैधृतिं च व्यतीपातं समस्तं परिवर्जयेत्॥
विष्कम्भे घटिकास्तिस्रः शूले पञ्च तथैव च। गण्डातिगण्डयोः सप्त नव व्याघातवज्रयोः ॥

परिघयोग का आधा भाग त्याज्य है, उत्तरार्ध शुभ है, विष्कुम्भयोग की प्रथम पाँच घटिकाएँ, शूलयोग की प्रथम सात घटिकाएँ, गण्ड और व्याघात योग की प्रथम छह घटिकाएँ; हर्षण और वज्र योग की नौ घटिकाएँ एवं वैधृति और व्यतीपात योग समस्त परित्याज्य हैं। मतान्तर से विष्कुम्भ के तीन दण्ड, शूल के पाँच डण्ड, गण्ड और-अतिगण्ड के सात दण्ड एवं व्याघात और बज्र योग के नौ दण्ड शुभ कार्य करने में त्याज्य हैं। कृत्यचिन्तामणि के अनुसार शुभ कार्यों में साध्य योग का एक दण्ड, व्याघात योग के दोदण्ड, शूलयोग के सात दण्ड, घज्रयोग के छह दण्ड एवं गण्ड और अतिगण्ड के नौ दण्ड त्याज्य हैं।

आन्नदादि योग—

वार और नक्षत्र के समायोजन से तात्कालिक आन्नदादि २८ योगों का प्रादुर्भाव होता है। इन योगों को ज्ञात करने के हेतु वार विशेष के जो नक्षत्र है उनसे जिस दिन का योग जानना हो उस तक गणना कि जाती है जैसे – रविवार कि अश्विनी से , सोमवार को मृगशिरा से, मंगलवार को आश्लेषा से, बुध को हस्त से, गुरुवार को अनुराधा से, शुक्रवार को उत्तराषाढ़ा से, शनिवार

को शतभिषा से तद्दिन के चन्द्रर्क्ष तक गिनने पर प्राप्त संख्या को ही उस दिन का वर्तमान आन्नदादि योग होता है।

योग	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	फल
आन्नद	आश्वि	मृग	आश्ले	हस्त	अनु	उषा	शत	अर्थसिद्धि
कालदंड	भर	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्येष	अभि	पुभा	मृत्युभय
धूम्र	कृति	पुन	पूफा	स्वाती	मूल	श्रवण	उभा	दुःख
प्रजापति	रो	पुष्य	उफा	विशा	पूषा	धनि	रेव	सौभाग्य
सौम्य	मृग	आश्ले	हस्त	अनु	उषा	शत	आश्वि	बहुसुख
ध्वान्क्ष	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्येष	अभि	पुभा	भर	अर्थनाश
केतु	पुन	पूफा	स्वाती	मूल	श्रवण	उभा	कृति	सौभाग्य
श्रीवत्स	पुष्य	उफा	विशा	पूषा	धनि	रेव	रो	ऐश्वर्य
वज्र	आश्ले	हस्त	अनु	उषा	शत	आश्वि	मृग	धनक्षय
मुद्गर	मघा	चित्रा	ज्येष	अभि	पुभा	भर	आर्द्रा	धननाश
छत्र	पूफा	स्वाती	मूल	श्रवण	उभा	कृति	पुन	राजसम्मान
मित्र	उफा	विशा	पूषा	धनि	रेव	रो	पुष्य	सौख्य
मानस	हस्त	अनु	उषा	शत	आश्वि	मृग	आश्ले	सौभाग्य
पद्म	चित्रा	ज्येष	अभि	पुभा	भर	आर्द्रा	मघा	धनागम
लुम्ब	स्वाती	मूल	श्रवण	उभा	कृति	पुन	पूफा	लक्ष्मीनाश
उत्पात	विशा	पूषा	धनि	रेव	रो	पुष्य	उफा	प्राणनाश
मृत्यु	अनु	उषा	शत	आश्वि	मृग	आश्ले	हस्त	मरणभय
काण	ज्येष	अभि	पुभा	भर	आर्द्रा	मघा	चित्रा	क्लेशवृद्धि
सिद्धि	मूल	श्रवण	उभा	कृति	पुन	पूफा	स्वाती	अभीष्टसिद्धि
शुभ	पूषा	धनि	रेव	रो	पुष्य	उफा	विशा	कल्याण
अमृत	उषा	शत	आश्वि	मृग	आश्ले	हस्त	अनु	राजसम्मान
मुसल	अभि	पुभा	भर	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्येष	अर्थक्षय
गद	श्रवण	उभा	कृति	पुन	पूफा	स्वाती	मूल	रोग
मातंग	धनि	रेव	रो	पुष्य	उफा	विशा	पूषा	कुलवृद्धि
राक्षश	शत	आश्वि	मृग	आश्ले	हस्त	अनु	उषा	बहुपीडा
चर	पुभा	भर	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्येष	अभि	कार्यलाभ
सुस्थिर	उभा	कृति	पुन	पूफा	स्वाती	मूल	श्रवण	गृहप्राप्ति
वर्धमान	रेव	रो	पुष्य	उफा	विशा	पूषा	धनि	सुमंगल

3.4.5 करण परिचय—

तिथि के आधे भाग को करण कहते हैं अर्थात् एक तिथि में दो करण होते हैं। कुल इग्यारह करण होते है, इनमे से ७ चर और ४ स्थिर करण होते है।

बवबालवकौलवतैतिलगरवाणिजविष्टयः सप्त ।

शकुनिचतुष्पदनागकिस्तुघ्नानि ध्रुवाणि करणानि ।।

बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज, विष्टि, ये सात चर करण हैं, तथा शकुनि, चतुष्पद, नाग, किस्तुघ्न ये स्थिर करण हैं।

पतयः स्युरिन्द्रकमलजमित्रार्यमभूश्रियः सयमाः ।

चर करणों के स्वामी क्रमशः इन्द्र, ब्रह्मा, मित्र, अर्यमा, पृथ्वी, लक्ष्मी, और यम, हैं।

कलिवृषफणिमारुताः पतयः ।

स्थिर करणों के स्वामी क्रमशः कलि, वृष, फणी, मारुत हैं ॥

तिथियों में करणों को जानने का प्रकार

कृष्णपक्षे तिथिर्द्विघ्नी मुनिभिर्भागमाहरेत ।

शेषाङ्केन बवाद्यं च तिथ्यादी करणं विदुः ॥

कृष्ण पक्ष की तिथि संख्या को २ से गुणा कर, ७ से भाग देने से १ आदि शेष बचने से तिथि के पूर्वार्ध में बवादि चर करण समझना तथा अभिम करण उत्तरार्ध में समझना चाहिये ॥ १॥

तिथिर्द्विघ्नी द्विकोना च शुक्लपक्षे सदा बुधैः ।

शेषाङ्के सप्तभिभांगस्तिथ्यादी करणं मतम् ॥

शुक्ल पक्ष की तिथि संख्या को २ से गुणा कर, उसमें २ घटा कर ७ का भाग देने से शेषाङ्क से तिथि के पूर्वार्ध में बवादि करण समझना और उसका अग्रिम तिथि के उत्तरार्ध में समझना चाहिये ॥२॥

शुक्ल पक्ष के करण **कृष्ण पक्ष के करण**

तिथि	पूर्वार्ध	उत्तरार्ध	तिथि	पूर्वार्ध	उत्तरार्ध
१.	किस्तुघ्न	बव	१	बालव	कौलव
२.	बालव	कौलव	२	तैतिल	गर
३.	तैतिल	गर	३	वणिज	विष्टि
४.	वणिज	विष्टि	४	बव	बालव
५.	बव	बालव	५	कौलव	तैतिल
६.	कौलव	तैतिल	६	गर	वणिज
७.	गर	वणिज	७	विष्टि	बव
८.	विष्टि	बव	८	बालव	कौलव
९.	बालव	कौलव	९	तैतिल	गर
१०	तैतिल	गर	१०	वणिज	विष्टि
११.	वणिज	विष्टि	११	बव	बालव
१२.	बव	बालव	१२	कौलव	तैतिल
१३.	कौलव	तैतिल	१३	गर	वणिज
१४.	गर	वणिज	१४	विष्टि	शकुनि
१५.	विष्टि	बव	३०	चतुष्पद	नाग

करणों में शुभाशुभ कार्य—

बव करण में पौष्टिक कार्य, बालव करण में ब्राह्मणों के षट्कर्म, कौलव करण में स्त्रीकर्म, मैत्री कार्य, तैतिल करण में सौभाग्यवती स्त्री के कार्य, गर करण में बीजारोपण, हल चलाना, वणिज करण में व्यापार कार्य, विष्टि कर्ण में अग्नि से सम्बंधित कार्य, विष देना,

युद्धारम्भ, दण्ड देना आदि कार्य, शकुनी करण में ओषधि निर्माण कार्य, मन्त्र साधना, पौष्टिककर्म का कार्य, चतुष्पद करण में राज्य कार्य, नाग करण में गौ-ब्राह्मणादि कार्य,किस्तुघ्न करण में मांगलिक कार्यों को करना शास्त्र सम्मत माना गया है।

बोध प्रश्न—

पञ्चांग का चौथा अंग कौन सा है ?

योगों कि संख्या है ?

नन्दा तिथि कौन-कौन सी है ?

चतुर्थी तिथि का स्वामी होता है ?

चर करण कितने है ?

3.5 सारांश

इस इकाई के माध्यम से आप यह जान पाए होंगे कि पञ्चांग क्या है। किन-किन अवयवों से मिलकर पञ्चांग का निर्माण होता है,पञ्चांग कि दैनिक जीवन में क्या आवश्यकता होती है, तिथियों कि जानकारी से क्या-क्या कार्य हम सही समय पर कर सकते है,वारों का हमारे जीवन में क्या महत्त्व है,नक्षत्रों से किन किन बातों का विचार करना आवश्यक है। और किस नक्षत्र में किस कार्य को करने से शुभाशुभ कि प्राप्ति होती है। योगो के विषय में सही जानकारी आपको प्राप्त करने में सहायता होगी।

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

१. योग

२. २७

३. प्रतिपदा, षष्ठी, एकादशी

४. गणेश

५. सात

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. मुहूर्तचिंतामणी

२. फलदीपिका

३. मानसागरी

४. सारावली

५. मुहूर्तकल्पद्रुम

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

१. पञ्चांग परिचय से आप क्या समझते है ग्रन्थानुसार वर्णन कीजिये

२. नक्षत्र प्रकरण का विस्तारपूर्वक वर्णन करें

इकाई. 4 मुहूर्त विचार

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 मुहूर्त का महत्त्व
4.3.1 षोडश संस्कार में मुहूर्त की भूमिका
4.3.2 मुहूर्त और संस्कार का मानव जीवन में प्रभाव
4.4 संस्कार मुहूर्त विचार
4.4.1 गर्भाधान मुहूर्त
4.4.2 पुंसवन संस्कार मुहूर्त
4.4.3 सीमन्तोनयन संस्कार मुहूर्त
4.4.4 नामकरण संस्कार मुहूर्त
4.4.5 निष्क्रमण संस्कार मुहूर्त
4.4.6 जातकर्म संस्कार मुहूर्त
4.4.7 अन्नप्राशन संस्कार मुहूर्त
4.4.8 कर्ण भेद संस्कार मुहूर्त
4.4.9 विद्यारंभ संस्कार मुहूर्त
4.4.10 चूडाकर्म संस्कार मुहूर्त
4.4.11 उपनयन संस्कार मुहूर्त
4.4.12 वेदारंभ संस्कार मुहूर्त
4.4.13 केशांत संस्कार मुहूर्त
4.4.14 समावर्तन संस्कार मुहूर्त
4.4.15 विवाह संस्कार मुहूर्त
4.5 गृह निर्माण मुहूर्त विचार
4.6 नवीन गृह प्रवेश मुहूर्त विचार
4.7 सारांश
4.8 पारिभाषिक शब्दावली
4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.11 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में हम सभी षोडश संस्कार मुहूर्त के विषय में जानकारी प्राप्त करते है। गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि संस्कार पर्यंत संस्कारों को मुहुर्त के नियमानुसार किया जाता है। भारतीय संस्कृति में 16 सोलह संस्कारों का विशिष्ट स्थान है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत इन संस्कारों की आवश्यकता होती है। जब हिरण्यगर्भ प्रभु ने इस जगत की रचना की उस समय संस्कारों को करने का आदेश दिया। प्रत्येक संस्कार में कोन-कोन सा कर्म करना चाहिए तथा संस्कारों का क्या विधान है।

जन्मोत्तर संस्कारों में प्रथम संस्कार गर्भाधान संस्कार होता है। यह संस्कार जातक के उत्पन्न होने के बाद विधि विधान से संपन किया जाता है । उसके बाद के संस्कारों में से नामकरण, अन्नप्राशनादि आदि संस्कार क्रमशः होते हैं। इस इकाई में आप सभी षोडश संस्कारों के मुहूर्त, गृहनिर्माण मुहूर्त, गृह प्रवेश मुहूर्तों के विषय में ज्ञान प्राप्त करेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस ईकाई का अध्ययन करनेके पश्चात् आप—

- संस्कार किसे कहते हैं, यह जान सकेंगे।
- संस्कारों का मानव जीवन में प्रभाव को जान सकेंगे।
- षोडश संस्कार मुहूर्त को जान पायेंगे।
- ज्योतिषशास्त्र के अनुसार संस्कारों में मुहूर्त की आवश्यकता क्या है,जान पायेंगे।
- गृह निर्माण तथा गृह प्रवेश के बारे में समझ सकेंगे।

4.3 मुहूर्त का महत्व

भारतीय संस्कृति में किसी भी शुभ कार्य को करने के लिए मुहूर्त की आवश्यकता होती है। विना मुहूर्त के किसी भी शुभ कार्य को नही किया जा सकता है। कार्य के लिए निश्चित किया गया विशेष समय कालगणना के लिय निश्चितकिया गया समय ही मुहूर्त कहलाता है। काल का नाम रात और दिन का 30 वा भाग भी कहलाता है।

प्रचीन काल में मुहूर्त का ज्ञान कुछ समय यानि(48 मिनट के लिए होता था) एक दिन में 30 मुहूर्त होते है। हमारे शास्त्रों में अनेक प्रकार के मुहुर्तों का वर्णन प्राप्त होता है। जिनका विशद वर्णन इस इकाई में किया गया है।

4.3.1 षोडश संस्कार में मुहूर्त की भूमिका

प्रायः जब किसी जातक का जन्म होता है तो जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त षोडश संस्कार के द्वारा ही जन्म और मृत्यु का यह विधान सम्पन्न होता हैं जिससे की वह जातक संस्कारों के माध्यम से कर्तव्य निष्ठ बन सके संस्कारों का हमारे जीवन मैं बहुत ही प्रभाव पडता है जैसा हमारा परिवेष होगा वैसे हमारे संस्कार होते हैं संस्कार के द्वारा ही जीवन का मार्ग एक सही तरह आगे बढ़ सकता हैं संस्कार हमारे पूर्वजों से लेकर चले आते हैं जिससे की हमारी कोई भी समस्या हो वह एक सही संस्कारों से ही दूर हो सकती हैं। अब हम जानेंगे की षोडश संस्कार के लिए मुहूर्त की आवश्यकता क्यों होती हैं। वस्तुत: मुहुर्त शास्त्र काल पर ही आधारित हैं बिना कालशास्त्र के मुहूर्त की गणना भी नहीं जा सकती है मुहुर्त का सामान्य अर्थ हैं शुभ समय को

निश्चित करना , किस शुभ क्षण को मुहूर्त कहते है षोडश संस्कार मैं मुहूर्त की बहुत ही भूमिका रहती हैं।, गर्भाधान संस्कार से लेकर अन्त्येष्टि संस्कार पर्यन्त मुहूर्त की आवश्यकता होती हैं, जैसे गर्भाधान संस्कार के समय कैसा मुहूर्त था क्या शुभ समय मैं यह संस्कार हो पाया या नहीं यदि शुभ मुहूर्त मैं यह संस्कार हो जाता है तो उस संस्कार की पूर्णता हो जाती है यदि मुहूर्त के अनुसार नहीं हो पाया तो वह अशुभता प्रतीक माना जाता हैं। इसलिए षोडश संस्कारों मैं प्रत्येक संस्कार को पूर्ण करने के लिए मुहूर्त की आवश्यकता होती हैं।बिना मुहूर्त के संस्कारों की शुभता नही होती हैं। संस्कार और मुहूर्त का हमेशा से अन्तर्सम्बन्ध रहा हैं,ये एक दूसरे के पूरक कहे जाते हैं इन दोनों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

4.3.2 मुहूर्त और संस्कार का मानव जीवन में प्रभाव

मानव जीवन की सफलता किसी न किसी पर आधारित हैं मानव जीवन को पूर्णता की ओर ले जाने के लिए मुहूर्त ओर संस्कार की आवश्यकता होती हैं। मनुष्य किसी भी धर्म से हों उसका जन्म भी षोडश संस्कारों के अन्तर्गत होता हैं। जन्म से लेकर जो भी संस्कार प्रारंभ होते हैं, उस समय सही मुहूर्त के अनुसार ही उस संस्कार को विधि विधान के द्वारा पूरा किया जाता है जिसका प्रभाव उस मनुष्य पर शत प्रतिशत पड़ता हैं। और उसी के अनुसार उसका जीवन आगे बढता रहता हैं सही दिशा की ओर बढ़ने के लिए जीवन को सफल करनें के लिए इन सभी संस्कारों तथा मुहूर्तों का मानव जीवन पर प्रभाव पड़ता रहता हैं जिससे की उस मनुष्य का मार्ग सही दिशा की ओर बढ़ सके तथा वह अपने जीवन मैं प्रसन्न रह सके यही संस्कार तथा मुहूर्त का प्रभाव होता है।

4.4 संस्कार मुहूर्त विचार

भारतीय परम्परा में षोडश संस्कार के द्वारा जातकों का विधि विधान से पूजन अर्चन किया जाता है। जिससे की जातक बड़ी से बड़ी समस्या को से मुक्ति पा सके।

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च
नामक्रियानिष्क्रमणेऽन्नाशनं वपन-क्रिया॥
कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारंभक्रियाविधिः
केशांतः स्नानमुपद्रोहो विवाहान्निपरिग्रहः।।
त्रेताग्निसंग्रहश्चेति संस्काराः षोडश स्मृताः।
नवैताः कर्णवेधांता मंत्रवर्ज क्रियाः स्त्रियाः ॥
विवाहो मंत्रतस्तस्याः शूद्रस्यामंऽत्रतो दृश ॥

१. गर्भाधान संस्कार	२. पुंसवन संस्कार
३. सीमन्तोनयन संस्कार	४. जातकर्म संस्कार
५. नामकरण संस्कार	६. निष्क्रमण संस्कार
७. अन्नप्राशन संस्कार	८. कर्णविध संस्कार
९. विद्यारम्भ संस्कार	१०. चूड़ाकरण संस्कार
११. यज्ञोपवीत संस्कार	१२. वेदारम्भ संस्कार
१३. केशान्त संस्कार	१४. समावर्तन संस्कार
१५. विवाह संस्कार	१६. अन्त्येष्टि संस्कार

4.4.1 गर्भाधान मुहूर्त—

भारतीय परम्परा में गर्भाधान संस्कार को प्रथम संस्कार के रूप में स्वीकार किया गया है। जातक के जन्म से पहले के तीन संस्कार हैं- गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोन्नयन। इन तीनों संस्कारो को शुभ मुहूर्त में ही किया जाता है। तीनों संस्कारों को सम्पन्न करने का दायित्व पिता का ही होता है।

रजोदर्शन के प्रारम्भ की सोलह रात्रियों में गर्भाधान करना चाहिये। (चार रात्रि को गर्भाधान से सम रात्रियों के विषम रात्रियों में गर्भाधान से कन्या का जन्म होता है। चौथी रात्रि में निषेध हो तो दुःखी पुत्र का जन्म होता है। पाँचवीं रात्रि से सामान्य फल की प्राप्ति होती है,पुत्र या पुत्री कुछ भी प्राप्त हो सकती है। सातवीं रात्रि के गर्भाधान से अल्पायु कन्या होती है। आठवी रात्रि में सुन्दर कन्या उत्पन्न होती है। 10 वी रात्री में उत्कृष्ट पुत्र उत्पन्न होता है। नवमी में दीर्घायु पुत्र तथा ग्यारहवीं रात्रि में श्रेष्ठ कन्या की प्राप्ति होती है। बारहवीं रात्रि में धर्म के साथ चलने वाला पुत्र होता है तथा तेरहवीं रात्रि में सती कन्या उत्पन्न होती है। चौदहवीं रात्रि में सात्त्विक तथा शुभ पुत्र उत्पन्न होता है। पन्द्रहीं रात्रि में लक्ष्मी एवं सौभाग्य से कन्या का जन्म होता है। सोलहवीं रात्रि में दीर्घायु तथा राजा के समान पुत्र होता है ॥

तिथ्यर्क्षवारनिन्द्याश्चेत् सेककर्म न कारयेत्।
दोषाधिक्ये गुणाल्पत्वे तथापि न च कारयेत् ॥
ओजराश्यंशगे चन्द्रे लग्ने पुंग्रहवीक्षिते ।
उपवीती युग्मतिथौ सुस्नातां कामयेत् स्त्रियम् ॥
पुत्रार्थी पुरुषं त्यक्त्वा पौष्णमूलाहिपैतृभमम्।
युग्मेषु शशाङ्के च लग्ने स्त्रीग्रहवीक्षिते ॥
अयुग्मे दिवसे भार्या कन्यार्थी कामयेत् पतिः।
निर्बीजानामिमे योगाः सर्वदानिष्फलप्रदाः ॥ नारद. ज्यो. संहिता अ.15, श्लोक 7-10

रजोदर्शन प्रारम्भ से 4 रात्रि उपरान्त सम रात्रियों में रोहिणी, हस्त, मृगशिरा, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा तीनों उत्तरा इन नक्षत्रों में मेष, कर्क, सिंह, धनु, मकर इन लग्नों मे तथा लग्न से 3-6-11वें स्थान पर पाप ग्रह हो रवि, मंगल, और गुरु की लग्न पर दृष्टि, नवांश विषम राशि का हो (स्त्री का विशेष रूप से चन्द्र श्रेष्ठ हो) ऐसे समय का विचार कर गर्भाधान संस्कार करें। पुनर्वसु, अश्विनी, पुष्य, चित्रा नक्षत्रों में गर्भाधान मध्यम होता है।

शुभ नक्षत्र तीनों	–	उत्तरा रोहणी, हस्त, मृगशिरा, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा
मध्यम नक्षत्र	–	पुनर्वसु, अश्विनी, पुष्य, चित्रा
शुभ लग्न	–	मेष, कर्क, सिंह, धनु, मकर व लग्न से 3,6,11 वें पापग्रह
शुभ नवांश	–	1,3,5,7,9, 11
शुभ वार	–	सोमवार,गुरुवार ,बुधवार , शुक्रवार ,

4.4.2 पुंसवन संस्कार मुहूर्त—

जिस संस्कार को करने से पुत्र की प्राप्ति हो उसे पुंसवन संस्कार कहते हैं।पुमान् प्रसूयते येन कर्मणा तत् पुंसवनमीरितम् ॥ (नारद. ज्यो. संहिता अ.17)शास्त्रों मैं पुत्र प्राप्ति के लिए अनेक व्रतों के बारे मैं कहां गया हैं श्रीमद्भागवत पुराण मैं पयोव्रत का उल्लेख मिलता है यहां षोडश संस्कारों के अन्तर्गत गत पुंसवन संस्कार को करने का यही मुख्य उद्देश्य था कि जिसके पास पुत्र न हो वह इस संस्कार का विधि विधान द्वारा पूजन कर उसे पुत्र रत्न की प्राप्ति होती थी।पुंसवन शब्द का

वर्णन अथर्ववेद मैं प्राप्त होता हैं। अथर्ववेद के 6/11/11/ में पुंसवन शब्द का वर्णन प्राप्त होता है। जिसका अर्थ हैं पुत्र को जन्म देना है। ऋषि वृहस्पति के अनुसार भी इस संस्कार को करने से पुत्र कीप्राप्ति होती हैं।

गर्भ: सुस्थापिते चास्य वक्ष्ये पुंसवनस्य च
काले यस्मिन् कृतो गर्भ: पुमान्भवति निश्चितम्।। वृहद्देवज्ञरंजन

पुत्र की प्राप्ति के लिए पुंसवन संस्कार को किया जाता है। जिस भी व्यक्ति को पुत्र का अभाव हो उसे इस संस्कार के साथ साथ प्रजापत्य यज्ञ करना चाहिए।गर्भ के अभिव्यक्त होने पर यह संस्कार करना चाहिए। गर्भधारण के द्वितीय या तृतीय मास में इस संस्कार को करने का विधान है। कतिपय ग्रन्थों में इसे षष्ठ या अष्टम मास में भी करने को कहा गया है।

पूर्वोदितै: पुंसवनं विधेयं मासे तृतीये त्वथ विष्णुपूजा।
मासेऽष्टमे विष्णुविधातृजीवैर्लग्ने शुभे मृत्युगृहे च शुद्धे।।मु.चि.सं.प्र श्लोक 10

गुरु, रवि और भौमवासरों, मृगशिरा, पुष्य, मूल, श्रवण, पुनर्वसु तथा हस्त नक्षत्रों में रिक्ता ४,९,१४ अमावस्या, द्वादशी, षष्ठी और अष्टमी तिथियों को छोड़कर शेष तिथियों में गर्भमासपति के बलवान रहने पर आठवें अथवा छठें मास में शुभग्रहों के केन्द्र १,४,७,१० एवं त्रिकोण ५,९ भावों में स्थित रहने पर तथा पापग्रहों के ३,६,११ भावों में जाने पर पुंसवन संस्कार तीसरे मास में करना चाहिये। इसके अनन्तर आठवें मास में श्रवण, रोहिणी और पुष्य नक्षत्रों में शुभलग्न में अष्टम भाव के शुद्ध रहने पर गर्भिणी को भगवान विष्णु का पूजन करना चाहिये। गोभिल ऋषि के अनुसार पुंसवन संस्कार को तृतीय मास के तृतीय भाग में करना शुभ कारक होता है। पुत्र की कामना होने पर इस संस्कार को अवश्य करना चाहिए।

4.4.3 सीमन्तोनयन संस्कार—

भारतीय परम्परा में 16 संस्कारो को करना आवश्यक होता है इन संस्कारो में से एक सीमन्तोन्नयन संस्कार भी होता है जिसके करने से पत्नी की समस्यों को निवारण किया जाता है जिससे की यश की वृद्धि होती है। इस संस्कार को करने से गर्भ का अष्टम मांस का अधिपति बली हो तथा पत्ती पत्नी दोनों का चन्द्रमा बली हो तो **उस समय सीमन्तोनयन संस्कार किया जाता हैं।**

स्त्रीणां तु प्रथमे गर्भे सीमन्तोन्नयनं शुभम् ॥
पापेषु सत्सु चन्द्रेन्त्य निधनाद्यारिवर्जिते
क्रूरग्रहाणामेकोऽपि लग्ना दन्त्यात्मजाष्टगा: ।
सीमन्तिनीनां सद्गर्भ बली हन्ति न संशय:।। नारद. ज्यो. संहिता अ.18, श्लोक 4-6 ,

गर्भ के तृतीय मास में रवि, मंगल, गुरुवार को दम्पति के श्रेष्ठ चन्द्र मे. तारा शुद्धि मे रोहिणी, मृगशिरा, पुष्य, पुनर्वसु, हस्त, मूल. श्रवण, 3 उत्तरा नक्षत्रों में जन्म नक्षत्र को त्याग कर के , शुक्लपक्ष की 1, 2, 3, 4, 5, 7, 10, 11, 13 तथा कृष्ण पक्ष में दशमी तिथि पर्यन्त दिन के पूर्व भाग में पुरुष संज्ञक नवांश लग्न में होने पर तथा लग्न से 1, 4, 5, 7, 9, 10 स्थानों पर शुभ ग्रह तथा 3, 6, 11 वें स्थानों पर पापग्रहों की स्थिति में एवं चन्द्र की 1,6,8,12वें स्थिति न होने पर पुंसवन व सीमन्तनयन संस्कार उत्तम माना जाता है। इस संस्कार में गुरु शुक्रास्त का विचार नही करना चाहिए।

शुभ मास - गर्भ से 6, 8 मासों में मासाधिपति बली होने पर शुभ माना जाता है।
शुभ तिथि - शुक्लपक्ष की 1,2,3,4,5,7,10,11,13 तथा कृष्ण पक्ष में दशमी पर्यन्त

शुभ नक्षत्र - रोहिणी, मृगशिरा, पुष्य, पुनर्वसु, हस्त, मूल. श्रवण, 3 उत्तरा नक्षत्रों जन्म नक्षत्र को त्याग कर

शुभ लग्न - 13,5,7,11

शुभ वार - रवि, मंगल, बुध, गुरु, मतान्तर से सोम, बुध, शुक्

4.4.4 नामकरण संस्कार मुहूर्त—

षोडश संस्कारों मैं नामकरण संस्कार को बहुत ही महत्वपूर्ण संस्कार माना जाता है जातकर्म संस्कार के बाद ही नामकरण संस्कार किया जाता है इसका विधान क्या हैं शास्त्रों मैं इसका सम्पूर्ण वर्णन प्राप्त होता हैं मुहूर्त चिंतामणिमणि ग्रंथ मैं आचार्य रामदैवज्ञ जी कहते हैं नामकरण संस्कार वर्णों के अनुसार की जाती है ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन सभी वर्णों के लिए अलग अलग दिनों मैं ही करना चाहिए जन्म से 11दिन मैं नामकरण संस्कार करना शुभ माना जाता हैं इस संस्कार को 10दिंन के सूत की समाप्ति पर ग्यारह दिन सूतक को दूर करने तथा बालक का नवीन नाम रखकर विधि विधानपूर्वक षोडशोपचार से पूजन कर नामकरण संस्कार करना शास्त्र सम्मत कहा गया हैं।

नामाखिलस्य व्यवहारहेतुः शुभावहं कर्मसु भाग्यहेतुः।
नाम्नैव कीर्तिं लभते मनुष्यः ततः प्रशस्तं खलु नाम कर्म।

नाम अखिल व्यवहार का हेतु माना गया है। वह शुभावह कर्मों में भाग्य का कारण भी होता है। नाम का बहुत ही महत्व होता रहा है नाम से ही मनुष्य ख्याति प्राप्त करता है। अतः नामकरण संस्कार को प्रशस्त संस्कार माना जाता है। नामकरण सूतक निवृत्ति के उपरान्त ब्राह्मण का 11वें दिन, क्षत्रिय का 13वें दिन, शूद्र का 21वें दिन, कुल की परम्परा के अनुसार करना चाहिए। दस दिन से पूर्व कदापि शुद्धि के अभाव के करण नामकरण संस्कार न करें। सूतक समाप्ति होने पर 11वें या 12वें दिन नामकरण संस्कार करने का विधान है। 12 दिन के बाद भद्रा, व्यतिपात, वैधृति, संक्रान्ति रहित दिनों में रिक्ता 1,2,3,5,6,7,10,11,12,13 इन तिथियों में शुभवार, अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, ल अनुराधा, तीनों उत्तरा, अभिजित, स्वाति, मूल श्रवणा, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवती नक्षत्रों में लग्न नवांश के बल का विचार कर नामकरण संस्कार करना शुभ होता है।

नामपूर्वं प्रशस्तं स्यान्मङ्गलैश्च शुभाक्षरैः
सूतकान्ते नामकर्म विधेयं स्वकुलोचितम्।

शुभ तिथि - 1,2,3,5,6,7,8,10,11,12,13

शुभ वार - सोम, बुध, गुरु, शुक्र -

शुभ नक्षत्र - अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुर्नर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, अनुराधा, तीनों उत्तरा, अभिजित, स्वाति, मूल श्रवणा, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवती

अशुभ मुहुर्त - जन्म से 10 दिन, भद्रा, व्यतिपान, वैधृति, संक्रान्ति रहित दिन में नही करना चाहिए।

4.4.5 निष्क्रमण संस्कार मुहूर्त—

जातक के जन्म के बाद नामकरणादि होने के पश्चात् जब प्रथम बार बालक को घर से बाहर निकाला जाता है उसे निष्क्रमण संस्कार कहते हैं। सही मुहुर्त अनुसार बालक को घर से बाहर ले जाना ही निष्क्रमण संस्कार कहलाता है। जन्म से बारहवें दिन बिना मुहूर्त विचार के बालक का निष्क्रमण कर, सूर्य नक्षत्र का पूजन कर सूर्य नक्षत्र व देवताओं का दर्शन करावें। यदि

बारहवें दिन यह न हो पाये तब 3 मास में मंगल शनि वर्जित वारों व रिक्ता, विष्टि, अमावस्य आदि अशुभ योग से भिन्न शुभ दिन में, अश्विनी, रोहिणी, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, अनुराधा, स्वाति, मूल श्रवणा, धनिष्ठा नक्षत्रों में प्रथम निष्क्रमण शुभ है।

शुभ तिथि - 1,2,3,5,6,7,8,10,11,12,13,15

शुभ वार - सोम-बुध-गुरु-शुक्र

शुभ नक्षत्र - अश्विनी, रोहिणी, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, अनुराधा, स्वाति, मूल श्रवण,धनिष्ठा

4.4. 6 जातकर्म संस्कार मुहूर्त—

जातक के जन्म लेने पर किया जाने वाला संस्कार जातकर्म संस्कार कहलाता हैं। इसे नाभि वर्धन भी कहते हैं।नाभि को काटने से पूर्व इस संस्कार का विधि विधान के द्वारा पित्रों को साक्षी कर नांन्दी श्राद्ध के द्वारा पित्रों का पूजन करना चाहिए। जब किसी जातक का जन्म होते ही उसी समय उस जातक का नालछेदन से पूर्व इस संस्कार को करना चाहिये उसके बाद जातक का पूर्वक करना चाहिए अर्थात जातकर्म पितृक ।

तस्मिञ्जन्ममुहूर्तेऽपि सूतकान्तेऽपि वा शिशुः।

जातकर्म प्रकर्त्तव्यं पितृपूजनपूर्वकम्। नारद. ज्यो. संहिता अ.19 ,श्लोक 1

शुभ तिथि - 1,2,3,5,6,7,8,10,11,12,13

शुभ वार - सोम, बुध, गुरु, शुक्र -

शुभ नक्षत्र - अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुर्नर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, अनुराधा, तीनों उत्तरा, अभिजित, स्वाति, मूल श्रवणा, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवती

4.4. 7 अन्नप्राशन संस्कार मुहूर्त—

जातक के जन्म के 6वें या आठवें महीने मैं अन्नप्राशन संस्कार किया जाता है इस संस्कार मैं जातक को अन्नके द्वारा जातक का मुंह जूठा किया जाता है उस दिन से उसका अन्न लेना प्रारंभ हो जाता हैं इसी संस्कार को अन्नप्राशन संस्कार कहते हैं। बालक के नामकरण, निष्क्रमण, भूमि उपवेशन के बाद 6,8,10,12वें महीने में पुत्र को और 5,7,9 वें मास में कन्या को अन्नप्राशन कराने का विधान है।

विशेष— उक्त मासों में भद्रा व्यतिपात दोष रहित 1,3,5,7,10,13,15 तिथियों में शुभवार अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त चित्रां स्वाति. अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, तीनों उत्तरा, रेवती नक्षत्रों में 1,3,4,5,7,9 स्थानों में शुभ ग्रह हो जन्म लग्न या जन्मराशि से अष्टम लग्न या नवांश तथा 12,1,8 लग्न को त्यागकर पाप-शुद्ध दशम भाव इन सभी बातों का विचार कर अन्नप्राशन संस्कार कराना उत्तम माना जाता है।

शुभ मास -6,8,10,12वें मास में पुत्र 5,7,9 वें मास मे कन्या

शुभ तिथि -13,5,7,10,13,15

शुभ वार -सोम, बुध, गुरु, शुक्र

शुभ नक्षत्र - अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाति, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा तीनों उत्तरा, रेवती

शुभ लग्न -1345679,10,11

4.4.8 कर्ण भेद संस्कार मुहूर्त—

भारतीय परम्परा मैं षोडश संस्कारों मै कर्णभेद संस्कार को भी महत्वपूर्ण माना जाता है। कर्ण -कान, वेध-छेदन,कान का छेदन ही कर्णवेध कहलाता हैं जिससे की इस संस्कार का विधान पूर्ण हो सके। कर्ण वेध के महत्व के सन्दर्भ मे आचार्य सुश्रुत ने कहा है कि कर्णवेध संस्कार करने से पान से अन्त्रवृद्धि, अण्डकोष वृद्धि आदि का निरोध होता है।

शंखोपरि च कर्णान्ते त्यक्त्वा यत्नेन् सेवनीयम्।
व्यत्यासाद्वा शिरां विध्येद् अन्त्रवृद्धि निवृत्तये ।।

समवर्ष, चैत्र, पौष, जन्ममास, देवशयन, जन्म नक्षत्र व तिथि, क्षयतिथि व रिक्ता को छोड़कर जन्म से 12वें या 16वें दिन अथवा 6, 7, 8वें मास में या विषम वर्षों में शुभवार, अश्विनि, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, रेवती नक्षत्रों में लग्न से अष्टम शुद्ध समय में वृष, तुला, धनु, मीन लग्न में तथा गुरु की लग्न में स्थिति होने पर कर्ण-वेध संस्कार शुभ होता है।

हित्वैतांश्चैत्रपीषावमहरिशयनं जन्ममासं च रिक्तां
युग्माब्दं जन्मतारामृतमुनिवसुभिः सम्मिते मास्यथो वा।|

शुभ वर्षादि - विषम वर्ष, 6,7,8 वें मास, जन्म से 12वें या 16वें दिन
शुभ तिथि - 12,3,5,6,7,8,10,11,12,13,15
शुभ वार - सोम, बुध, गुरु, शुक्र
शुभ नक्षत्र - अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा,
शुभ लग्न - 2,7,9,12
अशुभ मुहुर्त - समवर्ष, चैत्र, पौष, जन्ममास, देवशयन, जन्म नक्षत्र व जन्म तिथि, क्षयतिथि व रिक्ता।

4.4.9 विद्यारंभ संस्कार मुहूर्त—

इस विद्यारंभ संस्कार के द्वारा बालक को विद्वान बनानें के लिए गुरुके द्वारा ज्ञान दिया जाता है इस दिन से शिक्षा प्रारंभ करते हैं लेखनी पुस्तिका इन सब का पूजन कर यह संस्कार कशुभ दिनों मैं प्रारम्भ किया जाता हैं। शब्दों का ज्ञान अक्षरों के ज्ञान को करनें के लिए विद्यारंभ संस्कार किया जाता हैं।अक्षरारम्भ के उपरान्त विशेष ज्ञान को बढाने वाली किसी भी भाषास्थ विद्या (विशेषतः संस्कृत भाषस्थ विद्या) का प्रारम्भ फाल्गुन मास छोड़कर उत्तरायण 23,5,6,10,11,12 तिथियों में, रवि, बुध, गुरु शुक्र वारों में और अश्विनी आश्लेषा, अ मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, हस्त, चित्रा, स्वाति, अनुराधा, मूल, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, तीनों पूर्वा, रेवती इन नक्षत्रों में श्रेष्ठ हैं। अंग्रेजी, फारसी, उर्दू के हो विद्यारम्भ के लिये रवि, मंगल, शनिवार, रिक्ता तिथि, ज्येष्ठा. आश्लेषा, मघा, अपूर्वा, भरणी, कृतिका., विशाखा, आर्द्रा, उत्तराषाढ़ा, शतभिषा, इन नक्षत्रों में शुभ है। पर

शुभ तिथि -233,6,10,11,12 तिथियों में
विद्यारम्भ त्याज्य - फाल्गुन मास रिक्ता, अमावस्या तिथियां
शुभ वार -रवि, बुध, गुरु, शुक्र
शुभ नक्षत्र - अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, आश्लेषा, आर्द्रा, पुनर्वसु, हस्त, चित्रा, स्वाति, अनुराधा, मूल, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, तीनों पूर्वा, रेवती

4.4.10 चूडाकर्म संस्कार मुहूर्त—

किसी जातक के जन्म के बाद 5,3,7 वर्षों मैं चूडाकर्म संस्कार करना शुभ माना जाता है शुभ दिन मुहूर्त के अनुसारषोडशोपचार पूजन विधि के द्वारा यह संस्कार सम्पन्न किया जाता हैं।चित्रा, स्वाति, ज्येष्ठा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवती नक्षत्रों में करना श्रेष्ठ है। अष्टम भाव शुद्ध होना चाहिये। ज्येष्ठ, चैत्र मास मे न करें। बालक की माता को रने पांच मास की गर्भ स्थिति होने पर 5 वर्ष से न्यून अवस्था के शिशु का मुण्डन करना अशुभ माना जाता है।

सूनोर्मातरि गर्भिण्यां चूडाकर्म न कारयेत्।

पञ्चाब्दात्प्रागथेर्ध्व तु गर्भिण्यामपि कारयेत्॥ ज्यो.संहिता अ.२२ ,श्लोक 3

शुभ वर्षादि - विषमवर्ष या उत्तरायण

शुभ तिथि - 2,3,5,7,10,11,13

शुभ वार - सोम, बुध, गुरु, शुक्र

शुभ नक्षत्र -अश्विनी, मृगशिरा, पुनवर्स, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाति, ज्येष्ठा, श्रवण, शतभिषा, रेवती।

अशुभ समय - लग्न से अष्टम ग्रह, ज्येष्ठ, चैत्र मास, समवर्ष, दक्षिणायन।

4.4.11 उपनयन संस्कार मुहूर्त—

उपनयन संस्कार मैं बालक को यज्ञोपवीत धारण किया जाता है कुलपुरोहित के द्वारा विधिवत वैदिक मंत्रोंके द्वारा इस विधान को किया जाता है। इस संस्कार मैं कुलपुरोहित बालक को मंत्र देकर यह संस्कार पूर्णकराते हैं। जन्म से 5,8,16, वर्षों मैं वर्णानुसार इस संस्कार को कराया जाता है। उपनयन का अर्थ है समीप यानि गुरु के समीप जाकर के यह संस्कार किया जाता है।उपनयनसंस्कार बालक के जन्म से या गर्भ से ब्राह्मण का 8 वें, क्षत्रिय का 11 वें, वैश्य का 12 वें वर्ष में करना श्रेयस्करमाना जाता है। इस समय के व्यतीत हो जाने पर ब्राह्मण 16 वें वर्ष, क्षत्रिय 22 वें वर्ष वैश्य 24 वें वर्ष तक उपनयन संस्कार कर सकते हैं।

विप्राणां व्रतबन्धनं निगदितं गर्भाज्जनेर्वाष्टमे।

वर्षे वाप्यथ पञ्चमे क्षितिभुजां षष्ठे तथैकादशे।

वैश्यानां पुनरष्टमेऽप्यथ पुनः स्याद् द्वादशे वत्सरे।

कालेऽथ द्विगुणे गते निगदिते गौणं तदाहुर्बुधाः ॥

जिस बालक उपनयन संस्कार होना है उस बालक का गुरुबल तथा चन्द्रबल का विचार करें। देवशयन से पूर्व उत्तरायण सूर्य मे, रवि, चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्रवारों में शुक्लपक्ष की 3,5,10,11,12 तथा कृष्णपक्ष की 2,35 तिथियों में अश्विनी, राहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, तीनों पूर्वा, तीनों उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाति, अनुराधा, मूल, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवती इन नक्षत्रों के क्रूर तथा वेधरहित होने पर, पूर्वाह्न में, अभिजित मुहूर्त में, यज्ञोपवीत संस्कार अतिउत्तम माना जाता है।चैत्र व मीन के सूर्य में, वृष या कर्क के पूर्ण चन्द्रमा के लग्न में रहनेपर विशेष श्रेष्ठतम होता है।

4.4.12 वेदारंभ संस्कार मुहूर्त—

वेदारभ के अंतर्गत बालक को वेदों का ज्ञान कराया जाता है।जिससे की वह बालक वेदों को समझ सके प्राय देखा जाय तो वेदारंभ संस्कार को विद्यारंभ संस्कार ही कहा जाता है। क्योंकि विद्या प्राप्ति के पश्चात ही व्यक्ति वेदों तथा अन्य धर्मग्रंथों का अध्ययन करने में सक्षम होता था। तब शिक्षा का महत्त्व वेदाध्ययन की दृष्टि से अधिक था। इस कारण इस संस्कार को विद्यारंभ संस्कार अथवा वेदारंभ संस्कार के रूप में जाना जाता है।वेदों तथा अन्य धर्मग्रंथों के

अध्ययन से हमें इन सभी शास्त्रीय ज्ञान के बारे में बारे पूर्ण जानकारी प्राप्त होती थी। इस दृष्टि देखा जायतो इसे वेदारंभ संस्कार के नाम से ही जाना गया है। वेदाध्ययन के महत्त्व को इस प्रकार से वप्रकट किया गया है।

विद्यया लुप्यते पापं विद्यायाऽयु: प्रवर्धते।
विद्याया सर्वसिद्धि: स्याद्विद्ययाऽमृतमश्नुते ।।

अर्थात् वेद विद्या के अध्ययन सकरने से सभी पापों का लोप हो जाता है। आयु की वृद्धि होती है, समस्त सिद्धियां की पप्राप्ति होती हैं, यहां तक कि उसके समक्ष अमृत-रस के रूप में भी प्राप्त हो जाता है। इसलिए शुभ मुहूर्त के द्वारा वेदारंभ संस्कार को करना उचित माना गया है

शुभ मास - फाल्गुन, मार्गशीर्ष, माघ,वैशाख, ज्येष्ठ,आषाढ़,
शुभ तिथि - 1,2,3,5,6,7,8,10,11.,15
शुभ वार - सोम-बुध-गुरु-शुक्र
शुभ नक्षत्र - अश्विनी, रोहिणी, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, अनुराधा, स्वाति, मूल

4.4.13 केशांत संस्कार मुहूर्त—

वेदारंभ संस्कार के पूर्ण होने पर केशांत संस्कार किया जाता है, इस संस्कार को करने से बालक को बताया जाता है कि अब उसे सामजिक जिम्मेदारियों का पालन करना है. आइए जानते है केशांत संस्कार का महत्व, क्या है इसे कब करना चाहिए।

केशांत संस्कार का महत्व— केशांत दो शब्दों से मिलकर बनता है केश और अर्थ(केश – बाल, अंत – पूर्ण) अर्थात किसी व्यक्ति के बालों को पूरी तरह से काटना ही केशांत कहलाता है। पहली बार बालक अपने दाढ़ी और मूंछ को काटता है. यहीं से उसका किशोरावस्था पूर्ण होता है और वो गृहस्थ जीवन की ज़िम्मेदारी उठाने योग्य बन जाता है. केशांत संस्कार एक युवा के वेदारंभ संस्कार की समाप्ति के पश्चात किया जाता है क्योंकि उसके बाद वह गुरुकुल से अपने घर और समाज में दोबारा लौटता हैकेशांत संस्कार 16 साल की उम्र से पहले नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे पहले वह वेदारंभ संस्कार के नियमों का पालन कर रहा होता है। जिसमें उसे गुरुकुल में रहकर सिर तथा दाढ़ी के बाल कटवाने के लिए निषेध होता है।इस संस्कार को करते समय मुख्य-तौर पर कुछ मंत्रो का जप करना लाभदायक होता है।

शुभ मास - माघ,वैशाख, ज्येष्ठ, फाल्गुन,मार्गशीर्ष,
शुभ तिथि - 1,2,3,5,6,7,8,10,11,12,13,15
शुभ वार - सोम-बुध-गुरु-शुक्र
शुभ नक्षत्र - अश्विनी, रोहिणी, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, अनुराधा, स्वाति, मूल श्रवण, धनिष्ठा

4.5.14 समावर्तन संस्कार मुहूर्त—

षोडश संस्कार मैं समावर्तन संस्कार का महत्व भी अधिक माना जाता हैं। जब शिशु धीरे धीरे बड़ा होकर

गुरुकुल मैं जाकर के गुरु के आश्रम मैं रहकर वेद शास्त्रों का अध्ययन करता है तो अध्ययन पूर्ण होने के पश्चात् वह शास्त्री, आचार्य की शिक्षा प्राप्त यानि स्नातक की शिक्षा प्राप्त कर ब्रह्मचर्य का पालन कर वह घशुभ दिन मैं सूर्य उत्तरायण मैं हो ऐसे समय पर वह विद्यार्थी घर लौटता है उसे समावर्तन संस्कार कहते हैं। इस संस्कार के बाद विद्यार्थी स्नातक कहलाता है गुरुकुल से लोटने पर उस बालक का संस्कार स्नान होता हैं। इसे धर्म शास्त्रों मैं समावर्तन कहते हैं।(सम्यक रुप से घर लौटना) ही समावर्तन संस्कार कहलाता हैं।

शुभ तिथि - 12,3,5,6,7,8,10,11,12,13,15
शुभ वार - सोम, बुध, गुरु, शुक्र
शुभ नक्षत्र - अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा,
शुभ लग्न - 2,7,9,12

4.4.15 विवाह संस्कार मुहूर्त—

षोडश संस्कार मैं विवाह संस्कार 15 वां संस्कार हैं। जब जातक सभी संस्कारों का विधिवत पालन करते करते आगे बढ़ता हैं तो फिर उसे विव संस्कार को भी करना पड़ता हैं। क्योंकि सभी चारों आश्रम गृहस्थ पर ही आधारित हैं जिससे की सृष्टि प्रक्रिया भी चलती रहे ओर सभी जीवों का पालन गृहस्थियों के द्वारा होती रहें सभी आश्रमों में यह श्रेष्ठ आश्रम कहां गया हैं। विवाह संस्कार होने पर धर्म का पालन भी होता हैं। हमारे शास्त्रों में इन संस्कारों के विषय मैं कहां गया हैं। शुभ मास, दिन, लग्न मैं विवाह संस्कार करना चाहिए।

सर्वाश्रमाणामाश्रेयो गृहस्थाश्रम उत्तमः।
यतः सोऽपि च योषायां शीलवत्यौ स्थितस्ततः।
तस्यास्तच्छीललब्धिस्तु सुलग्नवशतः खलु।
पितामहोक्तां सम्वीक्ष्य लग्नशुद्धिं प्रवच्यहम्।

शुभ तिथि - 12356.78.10,11,12,13,15
शुभ नक्षत्र - रेवती, अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, श्रवण, धनिष्ठा, हस्त, चित्रा, स्वाति, भरणी, मघा, तीनों उत्तरा, पुष्य, अनुराधा।
शुभ वार - चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र।
शुभ लग्न - स्थिर लग्नों में चतुर्थ एवं अष्टम भाव शुद्ध हो।
अशुभ दिन - व्यतिपात, क्षयतिथि, ग्रहण, वैधृति, अमावस्या, संक्रान्ति व रिक्ता तिथि

वधूप्रवेशो न दिवा प्रशस्तः राजप्रवेशो न निशि प्रशस्तः ।
दिवा च रात्रौ च गृहप्रवेशः सत्कीर्तिदः स्यात्त्रिविधः प्रवेशः ॥

4.5 गृह-निर्माण मुहूर्त विचार

प्रायः देखा जाता हैं कि किसी भी प्राणी को गृह की प्रथम आवश्यक होती हैं जीव, जन्तु पशु,पक्षी आदि जितने भी प्राणी हैं उन सभी को मुख्य रुप से गृह की आवश्यकता अवश्य होती हैं। भूखंड पर शास्त्रों के अनुसार विधिवत परीक्षण कर उस भूमि का शास्त्रों के द्वारा पूजन कर वास्तु शास्त्र के अनुसार गृह का निर्माण करना ही श्रेयस्कर होता हैं क्योंकि यदि हमारा घर अशुभ स्थान पर बना हो तो वह हमेशा के ही परेशानी का कारण बना रहेगा। इसलिए शुभ मुहूर्त के अनुसार उस भूमि पर गृह का निर्माण प्रत्येक माह के नाग मुख को देखकर ही उस दिशा से पहली शिलान्यास कर पूजन करना चाहिए। जिससे की सुखसमृद्धि और यश की प्राप्ति होती रहें।

शुभ मास - वैशाख, श्रावण, मर्गशीर्ष, माघ फाल्गुन, एवं मेष, वृष कर्क, सिंह, तुला, वृश्चिक, मकर, कुम्भ सूर्य रहते गृहाराम्भ शुभ तथा भाद्रपद-कार्तिक मास भी समान्यतया मान्य होता हैं।
शुभतिथि - 2, 3, 5, 6, 7, 10, 11, 12, 13, 15 तथा कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा।
शुभवार - चन्द्र, बुध, गुरु, ष्ठशुक्र, ष्ठानि।
शुभनक्षत्र -रों., मृग., चित्रा, हस्त, स्वा., अनु., उत्तरा 3, धनि, ष्टात, रेवती तथा पुष्य

शुभ लग्न - मेष, मिथुन, सिंह, कन्या, वृश्चिक, कुम्भ, मीन, तथा लग्न बल हेतु केन्द्र त्रिकोण स्थानों में

शुभ ग्रह तथा 3 /6/ 11 में पाप ग्रह एवं आठवे स्थान शुद्ध होने पर नवीन घर का निर्माण शुभकारी होता है।

4.6 नवीन गृह प्रवेश मुहूर्त

जब गृह निर्माण का कार्य पूर्ण हो जाता है तो उसके बाद नवीन गृह में शुभ मुहूर्त शुभ माह में अपने कुल देवताओ का पूजन कर यज्ञ करना चाहिए।

शुभ मास - वैशाख, ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन आदि चान्द्र मास विशेष शुभ तथा कार्तिक मार्गशीर्ष

शुभ तिथि - चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी रहित सभी तिथि मान्य

शुभ लग्न -वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ लग्नों में सामान्यत: 369 12 लग्नों में भी मान्यता। लग्न से 1, 2, 3, 4, 5, 7, 9, 10 इन स्थानों शुभ ग्रह तथा 3, 6, 11 भावों में पाप ग्रह रहे तथा चन्द्रमा 1, 4, 6, 8, 12 स्थानों में नहीं होवें तथा चतुर्थ अष्टम भाव शुद्ध हो। जन्म राशि से अष्टम राशि का लग्न न हो।

शुभ वार - चन्द्र बुध, गुरु, शुक्र, शनि

शुभ नक्षत्र -रोहि., मृग., चि., अनु., उत्तरा 3 तथा रेवती विशेष शुभ एवं जीर्ण गृह में पुष्य स्वाति, इन सभी संस्कारो को मुहूर्त के अनुसार विचार करना चाहिय तथा जीवन की सुख समृधि के लिए इनका पालन करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न—

1. संस्कार किसे कहते हैं।
2. संस्कार कितने होते हैं।
3. प्राग्जन्म के कोन कोन संस्कार होते हैं।
4. गर्भाधान की उतम आयु क्या हैं।
5. चूडाकर्म के लिए शुभ नक्षत्र कोन से हैं।
6. वर्ष की आयु मैं कोन सा संस्कार किया जाता हैं।
7. ब्राह्मणों का उपनयन संस्कार कितने वर्ष मैं किया जाता हैं।
8. उपनयन संस्कार करने के लिए शुभ तिथि क्या हैं।
9. श्रत्रियों का जनेऊ कब किया जाता हैं।
10. क्षिप्र संज्ञक नक्षत्र होते हैं।
11. मृदुसंज्ञक नक्षत्र हैं।
12. षोडश संस्कारों मैं विवाह संस्कार का कोन सा क्रम हैं।
13. गृहनिर्माण मैं शुभ मास , तिथि,नक्षत्र
14. नवीन गृह मैं प्रवेश करना कब शुभ होता हैं।

4.7 सारांश

इस ईकाई के अध्ययन के पश्चात् आप समझ गये होंगे कि संस्कार किसे कहते हैं संस्कार की प्रारंभिक अवस्था क्या हैं। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त मनुष्य के अन्त करण मैं संस्कार व्याप्त रहता हैं जिससे कि उस मनुष्य की वृद्धि होती रहती हैं वह स्वयं के परिवेष के साथ साथ

अन्य परिवेश को भी संस्कारित करताहैं। जिससे वह एक नये परिवेश का निर्माण कर सकें। वस्तुत सनातन संस्कृति मैं जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त षोडश संस्कार होते हैं। गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि पर्यन्त षोडश संस्कार होते हैं। इन सभी षोडश संस्कारमैं मुहूर्त का विचार करना आवश्यक होता हैं जिससे की षोडश संस्कार का मुहूर्त शुभ हो तथा उस संस्कारको करने के लिए मुहूर्त के द्वारा शुभ दिन निश्चित कर इन सभी संस्कारों को किया जा सकता है। यह सारासंसार काल के वश मैं होने के कारण यहां पर जितने भी प्राणी हैं उन सभी को इन षोडशो संस्कार से होकरआगे जाना होता हैं जिसमें की मुहूर्त की आवश्यकता होती हैं। शुभ मुहूर्त के द्वारा ही संस्कार को करना शुभमाना जाता है। अतः प्राग्जन्म के तीन संस्कार होते हैं गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोन्नयन,इन तीनों संस्कार कोकरने का अधिकार पिता को होता है मां इस संस्कार मैं संवाहिका होती हैं। वह अपने स्वामी द्वारा सम्पन्नकराया जा रहा संस्कार पवित्र होकर धारण करती हैं। आगे के जो भी संस्कार होते हैं उसमें मां निमित्त बनकर नामकरण संस्कार, उपनयन संस्कार, चूड़ाकरण संस्कार, इत्यादि संस्कारों को करने के लिए दायित्व लेती हैं। पूर्व में हमारे ऋषियों के द्वारा कहे गये इन संस्कारों का हम सभी को पालन करना चाहिए। जिससे आने वाली पीढ़ियों पर सही प्रभाव पड़ सके। इसलिए षोडश संस्कारों में मुहूर्त की आवश्यकता विशेष रुप से होती हैं।

4.8 पारिभाषिक शब्दावली

निष्क्रमण- बालक को घर से बाहर ले जाना ही निष्क्रमण संस्कार हैं

जातकर्म -जन्म के समय किया जाने वाला संस्कार जातकर्म कहलाता हैं।

संस्कार -संस्कृत करना अर्थात् विशुद्ध होना

मुहूर्त-शुभ समय को निश्चित करना

पुंसवन-पुत्र की प्राप्ति के लिए जिस संस्कार को किया जाता हैं उसे पुंसवन संस्कार कहते हैं।

कर्णवेध-कान पर छिद्र करना

सीमन्तोनयन -जिसमें गर्भिणी के केशों को ऊपर की और उठाया जाता है उस समय शास्त्र विधि से सीमन्तोनयन संस्कार किया जाता है।

नामकरण-जन्म से 11वें दिन किया जाने वाला संस्कार नामकरण कहलाता हैं जिसमें बच्चे का नाम किसी नकिसी अक्षर पर रखा जाता हैं।

गर्भाधान-शुभ कर्म के माध्यम से पति अपने पत्नी के गर्भ में बीज स्थापित करता हैं उसे गर्भाधानकहते हैं।

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. संस्कृत करना अर्थात् विशुद्ध रहना ही संस्कार कहलाता हैं।
2. षोडश 16
3. गर्भाधान संस्कार, पुंसवन संस्कार, सीमन्तोनयन संस्कार
4. 20 से 40 वर्ष
5. अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती
6. चूडाकर्म संस्कार
7. आठ वर्ष में
8. 3,5,10,11,12,2, तिथियों में

9. जन्म काल से 11वें वर्ष मैं
10. हस्त, अश्विनी,पुष्य
11. मृगशिरा,चित्रा, अनुराधा
12. 15 वा क्रम
13. वैशाख, 2,3,5,6,7,10,11,15, तिथि, रोहिणी, मृगशिरा, चित्रा,हस्त,स्वाती
14. शुभमास, वैशाख, माघ, शुभ तिथि 2, 6, 11, 15 शुभ नक्षत्र, रोहिणी, मृगशिरा, अनुराधा, उत्तरात्रय, शुभ लग्न, वृष, सिंह, कुम्भ, शुभ वार, चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र

4. 10 सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

1. मुहूर्त चिंतामणि, श्रीरामाचार्य विरचित
2. नारदज्योतिषसंहिता, नारद मुनि
3. मुहूर्त मार्तण्ड, नारायण दैवज्ञ
4. वृहद्देवज्ञरंजन

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. संस्कार किसे कहते हैं तथा कितने संस्कार होते हैं संक्षिप्त उल्लेख कीजिए।
2. प्राग्जन्म के कितने संस्कार हैं इनका सविस्तार वर्णन कीजिए।
3. वेदारंभ संस्कार से आप क्या समझते हैं ? स्पष्ट कीजिए।
4. कर्ण भेद संस्कार, उपनयन संस्कार, तथा विवाह संस्कार पर विस्तार से प्रकाश डालिए।
5. गृहप्रवेश मुहूर्त का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।
6. नवीन गृह मुहूर्त का वर्णन कीजिए।

इकाई- 5 नवग्रह शान्तिविधि एवं महत्त्व

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उदेश्य
5.3 मानव जीवन में ग्रहों का प्रभाव
5.4 नवग्रहशान्ति विधान
5.4.1 ग्रह शान्ति का क्रम
5.5 नवग्रहशान्ति प्रयोग विधि
5.5.1 स्वस्ति वाचन : शांति पाठ का विधान व महत्त्व
5.5.2 पञ्चाङ्ग (पञ्चदेव) पीठस्थ देवता व उनका पूजन विधान
5.5.3 पूजन विधि
5.5.4 घृतमातृका चक्र संरचना
5.5.5 षोडश मातृका निर्माण विधि
5.5.6 षोडशोपचार सम्पूर्ण पूजन विधि
5.6 नवग्रह पूजन
5.6.1 संकल्प विधि
5.6.2 सूर्य पूजन विधि
5.6.3 चन्द्रमा(सोम) पूजन विधि
5.6.4 भौम(मङ्गल) पूजन विधि
5.6.5 बुध पूजन विधि
5.6.6 गुरु (बृहस्पति) पूजन विधि
5.6.7 भार्गव (शुक्र) पूजन विधि
5.6.8 शनि पूजन विधि
5.6.9 राहु पूजन विधि
5.6.10 केतु पूजन विधि
5.6.11नवग्रह मंडल प्राणप्रतिष्ठा विधान
5.6.12 नवग्रह स्त्रोत
5.7 सारांश
5.8 पारिभाषिक शब्द
5.9 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर
5.10 सहायक पाठ्य ग्रन्थ व संदर्भित ग्रन्थ सूची
5.11 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रिय अध्येताओं

प्रस्तुत इकाई वैदिक कर्मकाण्ड एवं अनुष्ठान BASL (N)1 21नामक पाठ्यक्रम के नित्य-नैमित्तिक अनुष्ठान विधि नामक खण्ड की पञ्चम इकाई "नवग्रह शान्तिविधि एवं महत्त्व"नामक शीर्षक से सम्बंधित है। भारतीय ज्ञान परम्परा के मूल स्रोत वेद हैं ,वेदों का लक्ष्य है ईष्ट प्राप्ति और अनिष्ट परिहार। जातक के जन्म के समय शुभाशुभ ग्रह नक्षत्रों में जन्म लेने का शुभाऽशुभ फल का प्रभाव निश्चित ही प्राप्त होता है ।उन अशुभ फलों के शमनार्थ ग्रह शान्ति का विधान शास्त्रों में निहित है ।नवग्रह शांति जब जातक की कुंडली में विद्यमान ग्रहयोगों का अशुभ फल मिल रहा हो अर्थात् अनिष्ट हो रहा हो तो तब कोई उचित आचार्य के निर्देश से उस अशुभ फल के नकारात्मक प्रभाव को कम करने के लिए ग्रह शान्ति की जाती है। इन सभी बातों का हम इस इकाई में विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे कि ग्रह शान्ति क्या है, इसका विधान क्या है तथा इसका महत्व क्या है, आदि उक्त सभी ध्यातव्य विदुओं का भी सांगोपांग अध्ययन करेंगे।

5.2 उदेश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- नित्य-नैमित्तिक अनुष्ठान के विषय से परिचित हो पाएंगे।
- नवग्रहों के शुभाशुभ फल से परिचित हो पायेंगे।
- ग्रहों का प्रभाव मानव जीवन में कैसे पड़ता है, इस प्रक्रिया का बोध हो पायेगा।
- ग्रहों के अनिष्ट प्रभाव को शमन करने में नवग्रह शान्ति विधान है,इस महत्त्वपूर्ण विषय का वोध हो पायेगा।
- नवग्रह शान्ति विधान के वैज्ञानिक महत्व से परिचित हो पायेंगे।

5.3 मानव जीवन में ग्रहों का प्रभाव

प्रिय अध्येताओं

आप **"यत् पिण्डे तत् ब्रह्मान्डे"** के सिद्धांत से परिचित होंगे अर्थात्ब्रह्मांड की खगोलीय घटना का प्रभाव अवश्य ही इस धरा-धाम में विद्यमान समस्त चराचर पर पड़ता है चाहे वह जीवात्मा हो या जड़ पदार्थ जो कि प्राय: हम देखते हैं ।मनुष्य स्वभाव से स्वसुखनिवेशी प्राणी है , थोड़ा भी बिपरीत परिस्थिति होने पर उसके शमन हेतु प्रयत्न करता है। और वह प्रयत्न उधम साहस व्यक्ति को सफल भी बनाता है। इसलिए इस चराचर संसार में मानव बुद्धिमान कहा जाता है। अब प्रसंग वश ये जानने का प्रयत्न करते हैं कि कैसे ग्रहों का प्रभाव मानव के जीवन में प्रभाव डालते हैं।प्रिय अध्येताओ आत्मा के द्वारा जन्म-जन्मान्तरों में किये गये शुभ एवं अशुभ कर्मों के परिणाम स्वरूप उसका जन्म होता है और कर्म फल भोगने के लिए यह जीवन मिलता है। उस जीवन में किस क्रम से कब-कब, कैसे – कैसे और क्या-क्या मिलेगा ? इस सब घटनाक्रमों को जानने का विश्वाश पात्र एक मात्र साधन है– ज्योतिषशास्त्र। जैसे दीपक अन्धकार मेंरखे वास्तु या पदार्थ का बोध करा देता है, ठीक उसी प्रकार यह शास्त्र जन्म- जन्मान्तरों में किये गये शुभ एवं अशुभ कर्मों के इस जीवन में मिलने वाले परिणामों को हृदयंगम करा देता है। इसलिए सारांश में कहा जा सकता है कि जीवन का घटनाक्रम जन्म-

जन्मान्तरों में किये गये कर्मों का फल है और उसे सही रूप से जानने का साधन ज्योतिष शास्त्र है। जन्म- जन्मान्तरों में अर्जित कर्म तीन प्रकार के होते हैं – **१- संचित , २- प्रारब्ध एवं ३- क्रियमाण** । इन त्रिविध कर्मों के फल को जानने के लिए ज्योतिषशास्त्र के प्रवर्तक पाराशर, गर्ग एवं जैमिनी प्रभृति महर्षियों ने तीन प्राविधि का आविष्कार एवं विकास किया है । यथा– संचित कर्मों के फल जानने के लिए योग पद्वति , प्रारब्ध कर्म का फल जानने के लिए दशा – पद्वति और क्रियमाण कर्मों का फल जानने के लिए गोचर पद्धति । इस प्रकार यह शास्त्र कर्मों के फल परिपाक स्वरुप मानव के जीवन में घटित होने वाली समस्त शुभाशुभ घटनाओं की सूचना देता है ।

ज्योतिष विज्ञान के अनुसार, ब्रह्माण्ड में विचरण कर रहे सभी खगोलीय पिंड का प्रभाव प्रकृति, पृथ्वी और यहां रहने वाले सभी जीवों पर अलग-अलग प्रकार से पड़ता है। साथ ही यह भी बताया गया है कि सभी ग्रह एक व्यक्ति के जीवन में अहम भूमिका निभाते हैं और इनका प्रभाव सभी राशियों पर सकारात्मक व नकारात्मक रूप से पड़ता है। इन सभी में सबसे महत्वपूर्ण ग्रह सूर्य है, इसके बाद उपग्रह चंद्रमा है। वहीं शुक्र, बुध, मंगल, बृहस्पति और शनि ग्रह भी अहम योगदान देते हैं। इसमें से दो ग्रह अर्थात् राहु और केतू को पापी या छाया ग्रह माना जाता है। इन्हीं ग्रहों के शुभाशुभ स्थिति वश जातक के जीवन में शुभाशुभ घटनाएँ घटती है ।

5.4 नवग्रहशान्ति विधान

शस्त्रों में ग्रह शान्ति का विधान बृहत एवं विस्तारपूर्वक कर्मकाण्ड के विद्वानों ने लिखा है,तथापि सार रूप से हम यहाँ हम इस प्रसंग में चर्चा करेंगे । कर्मकाण्ड पद्वाति में ग्रह शान्ति का महत्वपूर्ण स्थान है ।सभी शान्ति कर्मों यज्ञ –याज्ञादि में ग्रह शान्ति अनिवार्यरूप से शस्त्रों में विहित है ओर आवश्यक भी है । कहा भी गया है – **ग्रह राज्यं प्रयछन्ति ग्रह राज्यं हरन्ति च । ग्रह व्याप्तमिदं `सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरं ।।** अर्थात् शुभ अनुकूल ग्रह राजाओं को राज्य प्रदान करने के लिए सहायक होते हैं ओर दुष्ट ग्रह राजाओं के राज्य को नष्ट भी कर देते हैं । इन ग्रहों में जड़ चेतनात्मक समस्त जगत व्याप्त है । कहने का तात्पर्य यह है कि , मनुष्यों को ग्रहों की अनुकूलता के लिए उनको सविधि शांति परम आवश्यक है। इसके लिए ग्रह शांति कर्म सर्वथा उपयोगी सिद्ध हो जाता है ।

5.4.1 ग्रह शान्ति का क्रम—

सुस्नातः प्राङ्मुखो भूत्वा यजमानः ङ्ताहिकः ।
आहय ब्राह्मणान् कुर्यात् परतिज्ञां विधिवत्तदा ॥१॥
गणेशपूजनंछृत्वा वरुणंच ततो यजेत् ।
पुण्याहवाचनं ङत्वाऽभिषेकं कारयेत्ततः ॥२॥

ग्रह शान्ति विधान को किस क्रम में किया जाता है इस प्रसंग में अलग-अलग मत हैं विद्वानों का इसमें भी प्रायः लौकिक – वैदिक विधाओं में भिन्न–भिन्न मिलता है परन्तु उत्तर भारतीय कर्मकाण्ड पद्वातियों में जो दिया गया है यहाँ हम उसका वर्णन करते हैं। यजमान भली–भाँति स्नान एवं नित्य क्रिया से निवृत होकर, योग्य पण्डितों–आचार्यों को बुलाकर अमुक कार्य निमित ग्रह शान्ति करना चाहता हूँ ऐसा पण्डितों–पुरोहितों से आज्ञा प्राप्त करे ।तदनन्तर शुद्ध अन्तःकरण से प्रसन्नतावश गणेश अम्बिका का पूजन कर कलश स्थापन ओर पुण्यावाचन कर अभिषेक करायें । पुनःगौरी आदि षोडश मातृका तथा श्री आदि सप्तघृत मातृका, आयुष मंत्र पाठ

के बाद नांदी श्राद्ध सम्पन्न करें । तदनन्तर आचार्य, पण्डितों का वरण करें , तथा सर्वतोभद्रमण्डल देवताओं का पूजन एवं प्रधान देव का पूजन करें। पञ्च– भू संस्कार पूर्वक वेदी अथवा कुंड में अग्नि स्थापित कर ग्रहों का स्थापन तथा विधि – विधान पूर्वक कुश कंडिका सम्पन्न कर घृत आहुतियाँ दें। सूर्यादि नव – ग्रह , आधि देवता, दश दिग्पाल देवता, पञ्च लोकपाल, आदि का घृत - मिश्रित शाकल (तिल, यव, चावल ,चीनी) द्वारा हवन करें ।तथा प्रधान देवता का होम करें , तदनंतर सर्वतोभद्र मण्डल स्थित स्थापित देवताओं का हवन करें ।एवं अग्नि पूजन,ओर बचे हुए शाकल का एक साथ सविष्टकृत हवन कर केवल घृत की नवाहुति प्रदान करें। उसके वाद दिग्पालों के निमित्त दीप सहित बलिदान तथा सूर्यादिग्रहों के लिए बलिदान देकर प्रधान देवता, क्षेत्रपाल के लिए बलिदान देवें ।तत्पश्चात पूर्णा आहुति कर वसोरधारा हवन करें ।सुरवा द्वारा हवन वेदी से भष्म लेकर त्रयायुष करने के अनंतर संश्रव प्राशनादि करें ।पुन: पण्डितों आचार्यों से आशीर्वाद ग्रहण कर उन्हें यथा शक्ति दक्षिणा दें ।और स्थापित देवताओं को अक्षत छिड़ककर विसर्जन करें ।इतने कार्य ग्रह शान्ति विधान में प्राय: प्रमुख हैं।

5.5 नवग्रहशान्ति प्रयोग विधि

सर्व प्रथम यजमान (यजन कर्त्ता) दंपती (सपत्नीक) को स्नान आदि से निवृत होकर और तदनन्तर आचमन प्राणयामादि द्वारा स्वच्छ होकर अपने कुलदेवता ग्राम देवता और पितरों का ध्यान करें। पुरोहित देवताओं के मंडप का निर्माण करें जिसे नवग्रह वेदी भी कहा जता है, जो कि चित्र के माध्यम से नीचे दिया गया है। तथा पूजन मण्डप देवालायादि यज्ञ स्थल पर आये पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख होकर आसन पर बैठे। तत्त् पाश्चात् (आचार्य) पुरोहित को प्रणाम करके उनके आज्ञा अनुसार पूजन कार्य का प्रारंभ करें तथा शंख , घन्टी नाद , मंत्रोचार पूर्वक पवित्री करण, आचमनी, आसनादि शुद्धी करनी चाहिए। जिसके लिए निम्नलिखित मन्त्र दिए गए। इस मंत्र से पवित्रीधारण करे।

पवित्रीधारण :-

ॐ पवित्रेस्थो वैष्णव्यो सवितुर्वः प्रसवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः । तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुनेतच्छकेयम्॥ पवित्री करण हेतु हाथ में गंगाजल/जल लेकर इस मंत्र से शरीर और सभी पूजन सामग्री पर छिड़के।

पवित्रीकरण मंत्र :-

ॐ अपवित्र: पवित्रो वा सर्वावस्थाङ्गतोऽपि वा। य: स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स: बाह्याऽभंतर: शुचि:॥ ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु 3. **आसन**

पवित्रीकरण मंत्र :-

ॐ पृथ्वित्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुनाधृता। त्वं च धारय मां देवि पवित्रंकुरुचासनम्॥ इस मंत्र से आसन पर जल छिड़ककर आसनशुद्धि करें। अन्य विधि – दोनों हाथों को पृथ्वी पर रखकर इस मंत्र को पढ़ें और "**ॐ लं पृथिव्यै आधार शक्तये नमः**" इस मंत्र से भूमि की पञ्चोपचार पूजा करनी चाहिए। तदनन्तरआसन शुद्धि करनी चाहिए।

शिखाबंधन :यदि पहले से शिखा बंधी हो तो केवल स्पर्श करे)। यदि शिखा न हो तो कुश का ग्रंथियुक्त शिखा दाहिने कान पर धारण करे। यह कहकर तथा निम्नलिखित मन्त्रों से शिखा बंधन करना चाहिए।

ॐ चिद्रूपिणि महामाये दिव्यतेजः समन्विते।
तिष्ठ देवि शिखाबद्धे तेजोवृद्धिं कुरुष्व मे॥

ॐ पवित्रेऽस्त्थो वैषव्व्यो सवित्र प्रसव उत्पननाम्न्न छिद्रेंणा पवित्रेण
सूर्यस्यरस्मीभिः तस्यं ते पवित्रपते पुवि्नपतस्य यत्कामपुनेतच्छकेयम्॥

5.5.1 स्वस्ति वाचन- शांति पाठ का विधान व महत्त्व—

स्वस्तिवाचन हेतु यजमान के हाथ में जलाक्षत - पुष्प लेकर गणपत्यादि पंचलोकपाल देवताओं का आवाहन स्वागत करना चाहिए स्वस्ति वाचन शान्ति पाठ से पूजा के निर्विघ्नता पूर्वक सम्पनता के लिए पप्रार्थना की जाती है। निम्न मन्त्रों का पाठ-उच्चारण करें। स्वस्ति वाचन (शान्ति पाठ) शांति पाठ करने के बाद पूजन कर्म प्रारंभ करना चाहियें ऐसा शास्त्रीय मत है। शान्ति पाठ के निम्नलिखित मंत्र हैं-

ॐ आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः। देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे॥ देवानां भद्रासुमतिर्ऋजूयतांदेवानारातिरभिनोनिवर्तताम्। देवानांऽ सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे। तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्त्रिधम्। अर्यमणं वरुणऽ सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत्।तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः। तद् ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम्॥ तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम्। पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये॥ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभं यावानो विदथेषु जग्मयः। अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसागमन्निह॥ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा - सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥ शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्।पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः॥ अदितिद्यौं रदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः। विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्॥(शु य० 25। 14-23)

द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥(शु० य० 36। 17)

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु। शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः॥
सुशान्तिर्भवतु॥(शु य० 36। 22)

ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव यद् भद्रं तन्न आ सुव॥

ॐ गणानां त्वा गणपति ग्वँग् हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपति ग्वँग् हवामहे निधीनां त्वा निधीपति ग्वँग् हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्॥

ॐ अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन। ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्॥

श्रीमन्महागणाधिपतये नमः। लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः। उमा महेश्वराभ्यां नमः। वाणीहिरण्यगर्भाभ्यां नमः। शचीपुरन्दराभ्यां नमः। मातृ-पितृ-चरणकमलेभ्यो नमः। इष्टदेवताभ्यो नमः। कुलदेवताभ्यो नमः। ग्रामदेवताभ्यो नमः। वास्तुदेवताभ्यो नमः।

स्थानदेवताभ्यो नमः । सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः । सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नमः ।ॐ सिद्धि बुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः ।

सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः। लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः।।
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः। द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि।।
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा।संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते।।
शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम् । प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्व विघ्नोपशान्तये ॥
अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरासुरैः । सर्वविघ्नहरस्तस्मै गणाधिपतये नमः ॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये ! शिवे ! सर्वार्थसाधिके । शरण्ये त्र्यम्बके ! गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ।।
सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम् । येषां हृदिस्थो भगवान् मङ्गलाय तनो हरिः।
तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव । विद्याबलं देवबलं तदेव लक्ष्मीपते तेऽङ्घ्रियुगं स्मरामि ॥
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः । येषामिन्दी वर श्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥
यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः । तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥
अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते । तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥
स्मृतेः सकलकल्याणं भाजनं यत्र जायते । पुरुषं तमजं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम् ॥
सर्वेष्वारम्भकार्येषु त्रयस्त्रिभुवनेश्वराः । देवा दिशन्तु नः सिद्धिं ब्रह्मेशानजनार्दनाः ॥
विश्वेशं माधवं दुण्ढिं दण्डपाणिं च भैरवम् । वन्दे काशीं गुहां गङ्गां भवानीं मणिकर्णिकाम् ॥
वक्रतुण्ड महाकाय कोटिसूर्यसमप्रभ । निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा ॥
विनायकं गुरू भानु ब्रह्मं विष्णु महेश्वरान। सरस्वती प्रणम्यादौ सर्ब कामार्थ सिद्धय॥

हिन्दू धर्म के प्रत्येक मांगलिक कार्य या पूजा आदि में पंच देव की पूजन का विशेष महत्व है। मांगलिक कार्य या पूजा की सम्पूर्ण फल प्राप्ति के लिए पंचदेवों की पूजा सर्व प्रथम की जाती हैं। तो आइये जानते हैं कि पंच देवताओं के बारे में, और पूजा अर्चन और ध्यान कैसे करना चाहिये।आचमन - उपवस्त्र के बाद आचमन के लिये जल दें।

5.5.2 पञ्चाङ्ग (पञ्चदेव) पीठस्थ देवता व उनका पूजन विधान–

प्रायः आप लोगों ने सुना होगा कि; पञ्चाङ्ग अर्थात पञ्चदेव पूजन विधान के विषय में ये पाँच देवता इस प्रकार हैं -सूर्य, गणेश, दुर्गा, शिव और अग्नि। कुछ विशेष पूजन पर दुर्गा माता की जगह ब्रह्मा को जोड़ा जाता है। अग्नि, शिव, गणेश, सूर्य और शक्ति। पंच देवों का पूजन क्रम हैं, प्रथम सूर्य, गणेश, दुर्गा, शिव और अग्नि इस क्रम में उनकी पूजा करने का विधान शास्त्रों में मिलता है। जैसे कि –

आदित्यं गणनाथं च देवी अग्नि च रुद्रं।
पंच दैवत्यामि त्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत्॥

5.5.3 पूजन विधि—

वैसे प्रत्येक देवता का अलग-अलग मंत्रों से आह्वान और ध्यान किया जाता है। प्रत्येक देव पूजन से पूर्व पंचदेवों का पूजन अनिवार्य है। अर्थात् : सूर्य, गणेश, दुर्गा, शिव, अग्निदेव ये पंचदेव कहे गए हैं। इनकी पूजा सभी कार्यों में करना चाहिए। पंचदेव पूजन के लिए सबसे पहले सभी देवताओं का ध्यान कर उनका पूजन एक साथ करें-

भगवान सूर्य ध्यान :

ॐ ध्यये सदा सवित्र मंडल मध्यवर्ती।
नारायण सरसिजसन सन्निविष्टः
केयूरवान मकरकुण्डलवान किरीटी।
हारी हिरण्मय वपुः धृतशंखचक्रः।

गणपति ध्यान :

गजाननं भूत गणादि सेवितं,कपित्थजम्बू फलचारू भक्षणम्।
उमासुतं शोक विनाशकारकं, नमामि विघ्नेश्वर पाद पंकजम्॥

दुर्गा देवी ध्यान :

या विद्या शिव केशवादि जननी या वै जगन्मोहनी ।
या पन्चप्रणवद्विरेफनलिनी या चित्कलामालिनी ॥
या ब्रह्मादि पिपिलिकान्ततनुषा प्रोक्ता जगत्साक्षिणी ।
सा पायात्परदेवता भगवती श्री राजराजेश्वरी ॥

शिवध्यान :

निरावलम्बस्य ममावलम्बं ।
विपाटिता शेष विपत्तकदमबम् ॥
मदीय पापाचल पाप सम्बं ।
प्रवर्तताम् वाचि सदैव बमबम ॥
आश्चर्यम खल्लवेक मेव रचना दृष्टा तु कौतुहलम् ।
शीर्षाचाष्ट पदाष्ट जिव्हा नवकम् वत्राष्ट उक्षिद्वयम् ॥
विंगशत एक प्रमाण नेत्र विशतं वेदः प्रमाणं भुजा ।
स्रोतं चैव चतुर्दशम् च शततम् कुर्यात सदा मंगलम् ॥

अग्नि ध्यान :

ॐ चत्वारिशृङ्गास्त्रयोऽअस्य पादा
द्धे शीर्षे सप्तहस्ता सोऽअस्य ।
त्रिधावद्धोन्व्वृषभोरोरवीति महोदेवोमँर्त्त्याऽअविवेश ॥
रुद्रतेज : समुद्भूतं द्विमूर्धान द्विनासिकम् ॥
षण्णेत्रं च चतु : श्रोतं त्रिपादं सप्तहस्तकम् ।
याम्यभागे चतुर्हस्तं सव्यभागे त्रिहस्तकम् ॥

ध्यान करने के बाद आवाहन करके पूजन प्रारंभ करना चाहिए

ॐ भूर्भुवः श्वः श्री सूर्यादि पञ्चदेवता इहागच्छत इह तिष्ठत।

हाथों में त्रिकुश और जल लेकर मंत्र के साथ अर्घ पाद्य आचमण करें।

एतानि पाद्य- अर्घ्य- आचमनीय- स्नानीय- पुनराचमनीयानि ॐ श्री सूर्यादि पञ्चदेवताभ्यो नमः।

चन्दन

इदमनुलेपनम् ॐ श्री सूर्यादि पञ्चदेवताभ्यो नमः ।

अक्षत

इदमक्षतम् ॐ श्री सूर्यादि पञ्चदेवताभ्यो नमः ।-(तीन बार)

पुष्पम्

इदम पुष्पम ॐ श्री सूर्यादि पञ्चदेवताभ्यो नमः।

जल से नैवेद्य आदि का उत्सर्ग कर अर्पित करे

एतानि गंध- पुष्प- धुप- दीप- ताम्बूल- यथाभाग नानाविध नैवेद्यादनि ॐ श्री सूर्यादि पञ्चदेवताभ्यो नमः ।

नैवेद्य उपरांत जल से आचमन

इदमाचनियम् ॐ श्री सूर्यादि पञ्चदेवताभ्यो नमः ।

जल से नैवेद्य आदि का उत्सर्ग करें

एतानि गंध- पुष्प- धुप- दीप- ताम्बूल- यथाभाग नानाविध नैवेद्यानि ॐ श्री सूर्यादि पञ्चदेवताभ्यो नमः ।

जल—

इदमाचनियम् ॐ श्री सूर्यादि पञ्चदेवताभ्यो नमः ।

पान-सुपाड़ी और द्रव्य दक्षिणा

मुखवासार्थे ताम्बूल पुंगिफलम द्रव्य दक्षिणाम ॐ श्री सूर्यादि पञ्चदेवताभ्यो नमः।

फिर पुष्प लेकर पुष्पाञ्जलि दें।

कलश प्रार्थना मंत्र:-

भूमि स्पर्श करें-

ॐ भूरसि भूमिरस्यदितिसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री । पृथिवीं यच्छ पृथिवींदृ ठ ह पृथिवीं माहि ठ सीः ॥१॥

ॐ महीद्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् पिपृतान्नो भरीमभिः।

सप्तधान्य कलश के नीचे डालें- कलश के नीचे धान्य के हाथ लगावें ।

ॐ धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणायत्वो दानायत्वा व्यानात्वा ।

दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धान देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृहभ्णा त्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषेत्वा महीनाम्पयोऽसि ॥

कलश के नीचे धान्य के हाथ लगावें ।

ओषधयः समवदन्त सोमेन सहराज्ञा ।

यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्त ठ राजन् पारयामसि ॥

फिर कलश स्थापना करें या कलश के हाथ लगाये।

ॐ आजिघ्र कलशंमह्या त्वा विशन्त्विन्दवः।

पुनर्जा निवर्त्तस्वसानः सहस्रं धृक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्माविशताद्रयिः॥

कलश में जल भरें - ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भ सर्जनीस्थो वरुणस्य ऋत सदन्यसि वरुणस्य ऋत सदनमसि वरुणस्य ऋतसदनमासीद ॥

कलश को हाथ लगाकर मंत्र पढ़ें - ॐ आकलेशु धावति पवित्रे परिषिच्यते उक्थैर्यज्ञेषु वर्धते

तीर्थजल- इमंमे यमुने सरस्वति शुतुद्रिस्तोमं सचतापरुष्णया ।

असिकन्या मरुद्वृथे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्यासुषो मया॥

सर्वोषधि डालें- या: ओषधी : पूर्वाजाता देवभ्यस्त्रियुगं पुरा।

मनैनु बभ्रूणामह ठ शतं धामानि सप्त च॥

चंदनं लगाए - ॐ गंधद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्

ईश्वरी सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥

पंचपल्लव-

ॐ अश्वत्थेवो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता।

गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥

दूर्वा (दुब)-

ॐ दूर्वेह्यमृत संपन्ने शतमूले शतांकुरे । शत पातक सहन्त्री शतमायुष्य वर्धिनी॥

ॐ काण्डात् काण्डात् प्ररोहन्ती परुषः परुषपरि । एवानो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ॥२॥

कुशा अर्पित करें-

ॐ पवित्रस्थो वैष्णव्यौ सवितुर्व: प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। तस्यते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुनेतच्छकेयम्।

सप्तमृतिका प्रदान करें-

ॐ स्योना पृथिवी नो भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म सप्रथाः ॥

पूगीफल (सुपारी)-

ॐ या फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणी। बृहस्पतिः प्रसूतास्तानो मुञ्चत्व ठ हसः॥

ॐ उतस्मास्यद्रवतस्तुरण्यत्तः पर्णन्नवेरनुवाति प्रगर्द्धिनः । श्येनस्ये वजतोऽ अंक संपरिदधि क्राण्णः सहोर्जातरित्रतः स्वाहा ॥2॥

पंचरत्न -

ॐ सहिरण्यनानि दाशुषेसुवातिसविता भगः। तं भागं चित्रमीमहे ॥

ॐ परिवाजपतिः कविरग्नि हव्यान्य क्रमीत । हिरण्यप्रेक्षण-दधद्रनानि दाशुषे ॥

हिरण्य (द्रव्य दक्षिणा)

ॐ हिरण्य गर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।

सदाधार पृथिवीन्द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषाविधेम॥ ॐ हिरण्य रूपः सहिरण्य सहगयान्नयात्सेदु हिरण्यवर्णः। हिरण्य यात्परियोने निषद्या हिरण्यदा ददत्यन्तमस्मै ।

लाल वस्त्र सूत्र (मांगलिक सूत्र) बांधे-

युवा सुवासाः परिवीतऽआगात्स ऽउश्रेयान् भवति जायमानः।

तं धीरा सः कवय ऽउन्नयन्ति स्वाध्योमनसा देवयन्तः ॥

ॐ सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरूथमादत्स्वः।

वासो अग्ने विश्वरूप ठ सव्ययस्वः विभावसो॥

पूर्णपात्र चावल से भरकर पूर्णपात्र कलश पर रखें।

ॐ पूर्णादर्विपरापत सुपूर्णा पुनरापत।

वस्नेव विक्रीणाबहा ऽइषमूर्ज ठ शतक्रतो॥

इसके बाद नारियल पर मोली या लाल वस्त्र लपेट कर पूर्णपात्र पर रखें।

ॐ श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पल्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणा मुम्मइषाण सर्वलोकम्मइषाण॥

कलश पर वरुण का ध्यान कर आवाहन और पूजन करें।

ॐ अस्य तत्वायामीत्यस्य शुनः शेष ऋषि त्रिष्टुप्छन्दः वरुणो देवतावाहने विनियोगः।

ॐ तत्वायामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः ।

अहेडमानो वरुणे हवोद्धयुरुश ठ समान आयुः प्रमोषीः॥

अस्मिन् कलशे वरुणं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिकमावाहयामि। ॐ भूर्भुवः स्वः भो वरुण ! इहागच्छ, इह तिष्ठ, स्थापयामि, पूजयामि, मम पूजां गृहाण। ॐ अपां पतये वरुणाय नमः। (कहकर अक्षत- पुष्प कलशपर छोड़ दे।) फिर हाथमें अक्षत-पुष्प लेकर चारों वेद एवं अन्य देवी-देवताओंका आवाहन करे-

कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः ।
मूले त्वस्य स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः॥
कुक्षौ तु सागराः सर्वे सप्तद्वीपा वसुन्धरा ।
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदःसामवेदो थर्वणः॥
अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः।
अत्र गायत्री सावित्री शान्तिः पुष्टिकरी तथा॥
आयान्तुदेवपूजार्थं दुरितक्षयकारकाः।
गङ्गे च यमुनेचैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् संनिधिं कुरु॥
सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः।
आयान्तु मम शान्त्यर्थंदुरितक्षयकारकाः॥

जलाधिपति वरुणदेव तथा वेदों, तीर्थो, नदों, नदियों देवी देवताओं के आवाहनके बाद हाथ में अक्षत पुष्प लेकर निम्नलिखित मन्त्रसे कलशकी प्रतिष्ठा करे-

ॐ मनोजूतिर्जुषता माज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तन्नोत्वरिष्टं यज्ञँ$, समिमं दधातु । विश्वे देवास इह मादयन्तामो ३ प्रतिष्ठ :॥ ऊँ भूर्भुवः स्वः कलश गणेश वरुण सहित आवाहित देवानांभ्यो नमो नमः

5.5.4 घृत मातृका चक्र संरचना—

पूजन स्थल पर अग्निकोण के किसी वेदी पर या श्वेत वस्त्र से आच्छादित पीठ (पाटा) पर श्री लिखे तथा नीने सिन्दूर अथवा रोली से क्रमशः समानता में एक के नीचे दो उसके नीचे तीन ऐसे ही क्रमशः सात विन्दु बना लें। इसके बाद उन पर मंत्र पढ़ते हुए सातो बिन्दुओं पर घी या दूध से अपने – अपने लोकोचार के अनुसार सात धारा निम्नलिखत हैं।

सप्त घृत मातृकाओं का नाम:-

श्रीलक्ष्मार्धृतिमेधा स्वाहा प्रजा सरस्वती माङ्गल्येषु प्रपूज्यन्ते सप्तैता घृतमातरः॥

1- श्री
2- लक्ष्मी
3- धृति
4- मेधा

5- स्वाहा

6- प्रज्ञा

7- सरस्वती

सप्त घृत मातृका स्तुति:-

सौभाग्यदात्री कमलासनस्था तथा जगद्धात्री सदैव मेधा।
पुष्टिश्च श्रदाखिल लोकपूज्या सरस्वती मे वितनोतु लक्ष्मी।
ॐ भूर्भुव स्व ध्यानार्थे पुष्पाणि समर्पयामिः श्रीयादि सप्तघृतमातृकाभ्यो नमः
सप्त घृत मातृका आवाहन मंत्र सहित

श्रिय- ॐ मनसः काममाकूतिं वाचं सत्यमशीमहि पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः। ॐ श्रिये नमः श्रियमावाहयामि स्थापयामि।
(प्रथम विन्दु पर पुष्प अक्षत छोड़कर श्री देवी का आवाहन करें।)

लक्ष्मी- ॐ श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्यावोरात्रे पार्शवे नक्षत्राणि रूपमश्विनी व्यानम्। इष्णन्त्रिषाणामुं मषाण सर्व्वलोकं मऽइषाण। ॐ लक्ष्म्यै नमः। लक्ष्मीमावाहयामि स्थापयामि ।
(दूसरी विन्दु पर अक्षत छोड़कर लक्ष्मी का आवाहन करें)

धृति- ॐ भद्रं कण्णेभिः शृणुयाम देवा भद्र पश्येमाक्ष भिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ठं सस्तनूभिर्व्य शेमहि देवहितं यदायुः। धृत्यै नमः धृतिमावाहयामि स्थापयामि।
(तीसरी विन्दु पर अक्षत छोड़कर धृति का आवाहन करें ।)

मेधाम- ॐ मेधां मे व्वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः। मेधामिन्द्रश्च्च व्वायुरश्च मेधा धाता दधातु में स्वाहा। ॐ मेधायै नमः मेधामावाहयामि स्थापयामि।
(चौथी रेखा पर चावल छोड़कर मेधा का आवाहन करें ।)

स्वाहा- ॐ प्राणाय स्वाहा पानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा । ॐ स्वाहायै नमः स्वाहामावाहयामि स्थापयामि।
(पाँचवी विन्दु रेखा पर चावल छोड़कर स्वाहा का आवाहन करें ।)

प्रज्ञा- ॐ आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुर पितरं न प्रयन्स्वः। ॐ प्रज्ञायै नमः प्रज्ञामावाहयामि स्थापयामि ।
(छठी विन्दु रेखा पर अक्षत छोड़कर प्रज्ञा का आवाहन करें ।)

सरस्वती- ॐ पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवति। यज्ञं व्यष्टुधियावसुः । ॐ सरस्वत्यै नमः, सरस्वतीमावाहयामि स्थापयामि । (सातवीं विन्दु रेखा पर अक्षत छोड़कर सरस्वती का आवाहन करें ।)

प्राण-प्रतिष्ठा निम्नलिखित मंत्र द्वारा :-

ऊँ एतं ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे तेन यज्ञमव तेन यज्ञपतिं तेन मामव। ऊँ मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिं यज्ञमिमं तन्नोत्वरिष्टं यज्ञ ठं समिमं दधातु।। विश्वेदेवा स इह मादयंतामो २ प्रतिष्ठ।

प्राण स्थिर मंत्र-

ॐ अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु च। अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कश्चन॥
श्रीयादि सप्तघृत मातृके सुप्रतिष्ठिते वरदे भवेताम् ।

सप्त घृत मातृका ध्यान :-

सप्तहुं विन्दु पे सप्तहुं मातर श्री लक्ष्मी धृति मेधा माँ आओ।
स्वाहा सुप्रभा सरस्वती मातु हमें भव सिंधु से पार लगाओ॥
हे वसुधारा सदा वसुधा तल पे करुणामयि धार बहाओ।
पूजा में आय सनाथ करो माँ भक्त के माथे माँ हाथ लगाओ॥

वसोर्धारा मंत्र :--

ॐ वसो: पवित्र शतधारं वसो: पवित्रमसि सहस्त्र धारण्। देवस्त्वा सविता पुनातु वसो: पवित्रेण शतधारेण सुप्वा: काम धुक्ष्व:॥

इसके बाद गुड़के द्वारा बिन्दुओंकी रेखाओंको उपर्युक्त मन्त्र पढ़ते हुए मिलाये तदनन्तर निम्नलिखित वाक्योंका उच्चारण करते हुए प्रत्येक मातृकाका आवाहन और स्थापन करे- अन्त में उन अन्तिम बिन्दुओं को गुड़ से मिलाकर उनकी अलग-अलग पूजा करें।

5.5.5 षोडश मातृका बनाने की विधि—

आइये जानते है कि षोडश मातृका बनाने की विधि क्या हैं। सर्व प्रथम एक चौकोर पीडा ले और उसपे वस्त्र से आच्छादित करें। किसी धागे के माध्यम से वृताकार मंडल बनाये पाँच आरी और पाँच परि रेखा खींचे ऊर्ध्व चित्रानुसार। नैऋत्य कोण से ऊपर के तरफ यानि पश्चिम से पूर्व की ओर मातृकाओं का स्थापना प्रारम्भ करें। निम्नलिखित मंत्रों से आवाहन करें।

षोडश मातृका नाम

1. गणेश (माता) गौरी	2. माता पद्या
3. माता शची	4. माता मेधा
5. माता सावित्री	6. माता विजया
7. माता जया	8. माता देव सेना
9. माता स्वधा	10.माता स्वाहा
11.माता मातरः	12.माता लोकमातरः
13. माता धृतिः	14. माता पुष्टिः
15. माता तुष्टिः	16.आत्मनः कुलदेवता

चित्र- 01

षोडशमातृका आवाहन पूजनम्—

पूजक के दाहिने हाथ की ओर लाल वस्त्र पर उपरोक्त चित्र के अनुसार 16 (सोलह) कोष्ठों में गेहूँ अथवा रंगे हुये चावल से बनाये गयें मातृका मण्डल पर पश्चिम से पूर्व की ओर मातृकाओं का आवाहन नीचे लिखे नाम मंत्रों से कर उन्हें विराजमान करें।

गणेश-

ॐ गणानां त्वा गणपति (गूं) हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपति (गूं) हवा महे निधीनांत्वा निधिपति (गूं) हवामहे व्वसो मम। आहमजानि गर्भधमात्त्वमजासि गर्भधम्। ॐ भूर्भुवः स्वः गणपतये नमः, गणपतिमावाहयामि स्थापयामि।

(प्रथम कोष्ठक में गणेशजी का आवाहन करें।)

गौरी-देवी -

ॐ आयं गौः पृश्निरक्रमीद सदन्मातर पुरः। पितरं च प्ययस्वः॥ ॐ गौर्ये नमः गौरीमावाहयामि स्थापयामि।

(द्वितीय अक्षत-पुञ्ज पर गौर माता का आवाहन करें।)

पद्मा-

ॐ हिरण्यरूपा ऽउषसो व्विरोक ऽउभाविन्द्रा ऽउदिथः सूर्यश्च। आरोहतं व्वरुण मित्र गर्त ततश्चक्षाथामदितिं दितिञ्च मित्रोऽसिव्वरुणोऽसि।

सुवर्णाढ्यां पद्महस्तां विष्णुर्वस्थले स्थिताम। त्रैलोक्यै पूजितं देवी पद्मा मावाहयाम्यहम॥ पद्मायै नमः पद्मामावाहयामि स्थापयामि।

(तिसरे कोष्ठक में पद्मा का आवाहन करे।)

शची-देवी -

ॐ निवेशनः सङ्गमनो व्वसूनां व्विश्श्वा रूपाभिनष्टे शचीभिः। देवऽइव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे पथीनाम्॥ ॐ शन्य नमः शनोमावाहयामि स्थापयामि।

(चौथे कोष्ठक में शची का आवाहन करें।)

मेधा-देवी -

मेधां मे वरुणा ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः। मेधामिन्द्रश्च व्वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा। ॐ मेधायै नमः, मेधामावाहयामि स्थापयामि।

(पांचवे कोष्ठक में मेधा का आवाहन करें।)

सावित्री-देवी -

सविता त्त्वा सवाना (गूं) सुवतामग्निर्गृहपतीना (गूं) सोमो वनस्पतीनाम्। वृहस्पतिर्व्वान इन्द्रो ज्ज्यैष्ठ्यायरुद्रः पशुभ्यो मित्रः सत्त्यो वरुणो धर्मपतीनाम्। ॐ सावित्र्यै नमः, सावित्रीमावाहयामि स्थापयामि।

(छठे कोष्ठक में सावित्री का आवाहन करें।)

विजया-देवी -

ॐ विज्ज्यन्धनुः कपर्दिनो व्विशल्यो बाणवा२उत अशनस्य या ऽइषव आभुरस्य निषङ्गधिः॥ ॐ विजयायै नमः, विजयामावाहयामि स्थापयामि।

(सातवा कोष्ठक में विजया का आवाहन करें।)

जया-देवी-

ॐ वह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्शिचश्श्चाकृणोति समनावगत्य। इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रमृतः। ॐ जयायै नम जयामावाहयामि स्थापयामि। जयामावाहयामि स्थापयामि।

(आठवे कोष्ठक में जया का आवाहन करें।)

देवसेनाम्-देवी -

ॐ इन्द्र आसान्नेता बृहस्पतिदक्षिणा यज्ञः पुरः एतु सोम देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीना मरुतो यन्त्वग्रम् ॥ ॐ देवसेनायै नमः, देवसेनामावाहयामि, स्थापयामि ।

(नवं कोष्ठक में देवसेना का आवाहन करें।)

स्वधाम्-देवी-

ॐ पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वायिभ्य स्वधा नमः प्रपितामेहदभ्यः स्थायिभ्यः स्वधा नमः । अक्षन्निपतरोमीमदन्त पितरोतीतृपन्त पितरः पितरः शुन्धद्ध्वम् । ॐ स्वधायै नमः स्वधामावाहयामि स्थापयामि ।

(दसवें कोष्ठक में स्वधा का आवाहन करें।)

स्वाहाम्-देवी -

ॐ स्वाहा प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः । पृथिव्यै स्वाहाग्नये स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा व्वायवे स्वाहा । दिवे स्वाहा सूर्य्याय स्वाहा । ॐ स्वाहायै नमः स्वाहामावाहयामि स्थापयामि ।

(ग्यारह कोष्ठक में स्वाहा का आवाहन करें।)

मातृ-देवी-

ॐ आपोऽअस्म्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु । विश्व (गूं) हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाब्भ्यः शुचिरा पूत ऽएमि । दाक्षातपसोस्तनूरसि तां त्वा शिवा (गूं) शम्मां परिदधे भद्रं व्वर्णं पुष्यन् । ॐ मातृभ्यो नमः मातृः आवाहयामि स्थापयामि ।

(बारहवा कोष्ठक में मातृकाका आवाहन करें।)

लोकमातृ-देवी-

ॐ रायिश्च में रायश्चमे पुष्टं च मे पुष्टिश्च मे व्विभु च मे प्रभु च मे पूर्णं में पूर्णतरं मे कुयवं च मेक्षितं च मेत्रं च मेक्षुच्च मे यज्ञेन कल्पंताम । ॐ लोकमातृभ्यो नमः, लोकमातृ: आवाहयामि स्थापयामि ।

(तेरहवें कोष्ठक में लोकमातृ आवाहन का करें।)

धृति-देवी-

ॐ यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु । ऋते किञ्च न कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॐ धृत्यै नमः धृतिमावाहयामि स्थापयामि ।

(चौदहवे कोष्ठक में धृति का आवाहन करें।)

पुष्टि-देवी-

ॐ अङ्गान्न्यात्मन्भिषजा तदश्विनात्मानमङ्गैः समधात्सरस्वती । इन्द्रस्य रूपगुंग शतमानमायुश्चन्द्रेण ज्योतिरमृतं दधानाः॥ ॐ पुष्टयै नमः, पुष्टिमावाहयामि, स्थापयामि ।

(पन्द्रहवें कोष्ठक में पुष्टि का आवाहन करें।)

तुष्टि-देवी -

ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः । सनः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुंदुरितात्यग्निः ॥ ॐ तुष्टयै नमः, तुष्टिमावाहयामि, स्थापयामि।

(सोलहवें कोष्ठक में तुष्टि का आवाहन करें।)

आत्मनः कुलदेवता-

ॐ प्राणाय स्वाहाऽपानाय स्वाहा ळ्यानाय स्वाहा । चक्षुषे स्वाहा क्षोत्राय स्वाहा व्वाचे स्वाहा

मनसे स्वाहा। आत्मनः कुलदेवतायै नमः, आत्मनः कुलदेवतामावाहयामि, स्थापयामि।
(चसतरहवें कोष्ठक में आत्मनः कुलदेवताम् का आवाहन करें।)
षोडशमातृक का आवाहन कर **"ॐ मनोजू तर्जुषतामाज्ज्यस्य"** मन्त्र से षोडशमातृका मंडल चक्र की प्रतिष्ठा करके षोडशोपचार पूजन करें उसके बाद प्रार्थना करें-

5.5. 6 षोडशोपचार सम्पूर्ण पूजन विधि—

हिन्दू सनातन धर्म में अनेकों विधि की परम्परा रही हैं – 1. पंचोपचार , 2. दशोपचार , 3. षोडशोपचार , 4. द्वात्रिंशोपचार, 5. चतुःषष्ट्यपचार , 6. एकोद्वात्रिंशोपचार यानि 5 ,10 ,16 ,32 ,64 ,132 अपने सामर्थ के अनुसार करता हैं या कर सकता हैं। इसमें से षोडशोपचार पूजन का विशेष महत्वा होता हैं। आइये जानते की वह पूजन कैसे करें।

1 - देवी या देवता आवाहन और ध्यान
2 - आसान पूजन स्थल विराजमान करना
3 - तीसरा पाद्य
4 - चौथा अर्घ
5 - पांचमा आचमन
6 - जल द्वारा स्नान
7 - वस्त्र यथा संभव
8 - यज्ञोपवीत यानि उपवस्त्र
9 - चन्दन (तिलक)
10 -अक्षत अर्पण करें
11 - पुष्प
12 - धूप
13 - दीप
14 - नैवेद्य से भोग लगाए
15 - पान-सुपारी लौंग इलाइची
16 - द्रव्य-दक्षिणा

षोडश मातृका प्रार्थना-

गणनाथ के साथ उमा पदमा , शचि मेधा कृपा कर दीजे सहारा।
सावित्री विजया जया देवसेना स्वधा करुणामयि माता की धारा॥
स्वाहा स्वधा लोकमाता धृति शुचि पुष्टि व तुष्टि हरौ महि भारा।
आत्मनः कुलदेवता है षोडश , पूर्ण करो शुभ कामहमारा॥
गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया।
देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः॥
धृतिः पुष्टिस्तथातुष्टिरात्मनःकुलदेवता।
गणेशेनाधिका ह्येता वृद्धो पूज्याश्च षोडशः॥

अभ्यासात्मक प्रश्न –1

रिक्त स्थानों की पूर्ती करें –

1. कर्मकाण्ड.....प्रकार का है।
(क) दो, (ख) चार, (ग) एक, (घ) पांच

2. जन्म- जन्मान्तरों में अर्जित कर्म ……. प्रकार के होते हैं

(क) दो, (ख) चार, (ग) तीन, (घ) पांच

3. सर्वप्रथम पूजन में ..... की पूजा होती है।

(क) गणपत्यादिपञ्चांग पीठस्थ देवताओं

(ख) नवग्रह देवताओं

(ग) रुद्रों

(घ)दशदिग्पाल

4. प्रत्येक देवता का अलग-अलग मंत्रों से आह्वान और ध्यान किया जाता है। प्रत्येक देव पूजन से पूर्व पंच देवों का पूजन ..... है।

(क) अनिवार्य

(ख) नहीं

(ग) कर सकते

(घ) कोई नहीं

5.6 नवग्रह पूजन

नवग्रह पूजन का विधान शास्त्रों में व कर्मकाण्ड में महत्व की दृष्टि से तथा विधान की दृष्टि से भी बहुतविस्तार से बताया गया है । तथापि यहाँ इस इकाई में हम क्रमबद्ध रूप से अध्ययन कर रहे हैं । उपरोक्त हमने सर्वप्रथम गणेश एवं मातृकाओं का पूजन कैसे किया जता है उनका क्या विधान है , ये जाना इसी कर्म में अब नवग्रहों का पूजन विधान इस प्रकार है - नव ग्रह पीठस्थ देवताओं की वेदी निर्माण करके उसकी प्रतिष्ठा करनी चाहिए –

नवग्रह वेदी : चित्रानुसार नवग्रह वेदी बनाकर पूजा करें।

नवग्रह वेदी, हवन कुंड या वेदी के ईशानकोण में स्थापित की जाती है। यदि अन्य बहुत सारी वेदी न भी बनाई गयी हो तो भी हवन के समय नवग्रह वेदी बनाई जाती है। नवग्रह मंडल में सूर्यादि नवग्रह, अधि देवता, प्रत्यधि देवता, पंचलोक्पाल और दशदिक्पाल की पूजा की जाती है। नवग्रह मंत्र वैदिक (सम्पूर्ण मंडल) के साथ पूजा विधि नीचे दी गयी है।

चित्र- 02 नवग्रह मण्डल वेदी

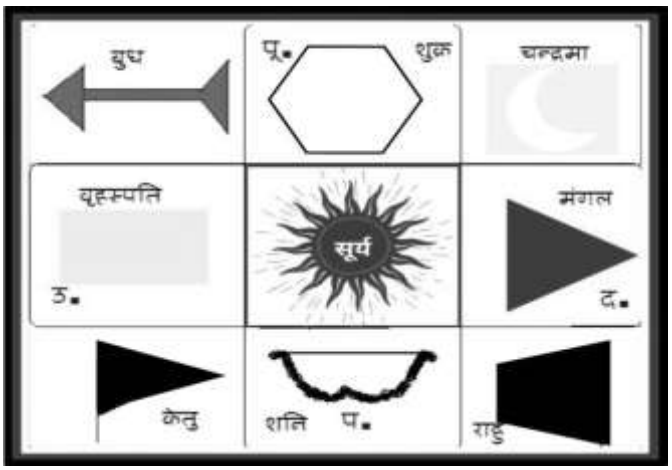

हाथों में त्रिकुश और जल लेकर मंत्र के साथ अर्घ पाद्य आचमन करें।

एतानि पाद्य- अर्घ्य- आचमनीय- स्नानीय- पुनराचमनीयानि ॐ श्री सूर्यादि नवग्रह मण्डलस्थ देवताभ्यो नमः। (पांच ईशान्यां चतुस्त्रिंशदगुलोञ्चसमचतुरस्रस्य ग्रहपीठस्य समीपे सपत्नीको यजमानः उपविश्य आचमनं प्राणायामञ्च कुर्यात्।

5.6.1 संकल्प—

यजमान अक्षत जल लेकर मंत्र से पूजन का संकल्प ले-

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य ब्रह्मणोऽह्नि द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वंतरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे जंबुद्वीपे भारतवर्षे आर्यावर्तैकदेशे .... नगरे / ग्रामे मासे... शुक्ल / कृष्णपक्षे... तिथौ .... वासरे प्रातः / सायंकाले ... गोत्र..... नाम अहं ममोपात्तदुरितक्षयद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं ममसम्पूर्ण मनोकामना सिध्यर्थ आदित्यादि नवग्रह देवता प्रसाद सिद्ध्यर्तं आदित्यादि नवग्रह पूजनं/ नवग्रह शांति पूजनं करिष्ये। हाथ में अक्षत और पुष्प लेकर नव ग्रह का आवाहन करें।

5.6.2सूर्य पूजन विधि -

लाल अक्षत और लाल पुष्प लेकर निम्नलिखित मंत्र से सूर्य का आवाहन पूजनकरें :-

ॐ आकृष्णेन रजमा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च।

हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥

ॐ भूर्भुवः स्वः कलिङ्गदेशोद्भव कश्यपगोत्र रक्तवर्ण भो सूर्यः इहागच्छ इह तिष्ठ, सूर्यमावाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि। ॐ सूर्याय नमः

5.6.3 चन्द्रमा(सोम) पूजन विधि :-

श्वेता (उजला) अक्षत-पुष्प लेकर दाएं हाथ से छोड़ते हुए इस मंत्र से चंद्र (सोम) देवता का आहवान पूजनकरें :-

ॐ इमं देवा असपत्न$ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्याय इन्द्रस्येन्द्रियाय।

इममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वोमी राजा सोमोस्माकं ब्राह्मणाना$ राजा॥

ॐ भूर्भुवः स्वः यमुनातीरोद्भव आत्रेयगोत्र शुक्लवर्ण भो सोम! इहा गच्छ इह तिष्ठ, सोममावाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि। ॐ सोमाय नमः चन्द्रमसे नमः

5.6.4भौम(मङ्गल) पूजन विधि :-

रक्त(लाल) पुष्प-अक्षत लेकर मंडल पर छोड़ते हुए इस मंत्र से भौम मंगल देव का आवाहना पूजनकरें :-

ॐ अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याऽ अयम्। अपा$रेता$सि जिन्वति॥

ॐ भूर्भुवः स्वः अवन्तिकापुरोद्भव भरद्वाजगोत्र रक्तवर्ण भो भौम! इहागच्छ इह तिष्ठ, भौममावाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि। ॐ भौमाय नमः

5.6.5 बुध पूजन विधि:-

हरा अक्षत-फूल दाएं हाथ में लेकर मंडल पर छोड़ते हुए इस मंत्र से बुध देव का आवाहन पूजनकरें:-

ॐ उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते स$ सृजेथामयं च। अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत॥

ॐ भूर्भुवः स्वः मगधदेशोद्भव आत्रेयगोत्र हरितवर्ण भो बुध! इहागच्छ, इहतिष्ठ, बुधमावाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि। ॐ बुधाय नमः

5.6.6 गुरु (बृहस्पति) पूजन विधि :-

पीले(पीत) अक्षत-फूल लेकर मंडल पर छोड़ते हुए इस मंत्र से गुरु(बृहस्पति) देव का आवाहन करें:-

ॐ बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु । यद्दीदयच्छवस$ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् । उपयामगृहीतोसि बृहस्पतये त्वैष ते योनिर्बृहस्पतये त्वा ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिन्धुदेशोद्भव आङ्गिरसगोत्र पीतवर्ण भो बृहस्पते । इहागच्छ इहतिष्ठ, बृहस्पतिमावाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि । ॐ गुरुवे नमः

5.6.7 भार्गव (शुक्र) पूजन विधि :-

श्वेता पुष्प-अक्षत लेकर मंडल पर भार्गव(शुक्र) देव का आवाह्न करें:-

ॐ अन्नात्परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत् क्षत्रं पयः सोमं प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपान शुक्रमन्धसइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयो$मृतं मधु ॥

ॐ भूर्भुवः स्वःभोजकटदेशोद्भव भार्गवसगोत्र शुक्लवर्ण भो शुक्र इहागच्छ इह तिष्ठ, शुक्रमावाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि । ॐ शुक्राय नमः

5.6.8 शनि पूजन विधि :-

शनि देव का आह्वान करने के लिए काले रंगे अक्षत-काले फूल मंडल छोड़ते हुए मंत्र उच्चारण करें:-

ॐ शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शय्योरभिस्रवन्तु नः ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सौराष्ट्रदेशोद्भव काश्यप गोत्र कृष्णवर्ण भो शनैश्चर! इहागच्छ इहतिष्ठ, ॐ शनैश्चरमावाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि । शनैश्चराय नमः

5.6.9 राहु पूजन विधि:-नीले रंगे अक्षत-फूल लेकर दाएं हाथ से मंडल पर छोड़ते हुए का आह्वान करें:-

ॐ कयानश्चित्रऽआभुवदूती सदावृधः सखा । कयाशचिष्ठ्या वृता ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः राठिनपुरोद्भव पैठिनसगोत्र कृष्णवर्ण भो राहो! इहा गच्छ इह तिष्ठ, राहुमावाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि । राहवे नमः

5.6.10 केतु पूजन विधि :-

धूम्र वर्ण का अक्षत-फूल लेकर दाएं हाथ से मंडल पर छोड़ते हुए धूम्रकेतु का आह्वान करें:-

ॐ केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या$ अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः अन्तर्वेदिसमुद्भव जैमिनिगोत्र कृष्णवर्ण भो केतो! इहागच्छ इह तिष्ठ, केतुमावाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि । ॐ केतवे नमः।

5.6.11 नवग्रह मंडल प्राण प्रतिष्ठा मंत्र:-

ॐ मनोजूतिर्जुषता माज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तन्नोत्वरिष्टं यज्ञँ$, समिमं दधातु । विश्वे देवास इह मादयन्तामो३ प्रतिष्ठ : ॥ ऊँ भूर्भुवः स्वः सूर्यादि नवग्रह मण्डलस्थ देवताभ्यो नमः।

5.6.12 नवग्रह स्त्रोत

जपाकुसुम संकाशं काश्यपेयं महाद्युतिम । तमोSरिं सर्वपापघ्नं प्रणतोSस्मि दिवाकरम ॥
दधिशंखतुषाराभं क्षीरोदार्णव सम्भवम । नमामि शशिनं सोमं शंभोर्मुकुट भूषणं ॥
धरणी गर्भ संभूतं विद्युत्कान्ति समप्रभम ।कुमारं शक्ति हस्तं तं मंगलं प्रणमाम्यहम ॥
प्रियंगुकलिकाश्यामं रूपेणाप्रतिमं बुधम । सौम्यं सौम्य गुणोपेतं तं बुधं प्रणमाम्यहम ॥
देवानां च ऋषीणां च गुरुं का चनसन्निभम । बुद्धि भूतं त्रिलोकेशं तं नमामि बृहस्पितम ॥

हिम कुन्दमृणालाभं दैत्यानां परमं गुरुम । सर्वशास्त्रप्रवक्तारं भार्गवं प्रणमाम्यहम ॥
नीलांजनसमाभासं रविपुत्रं यमाग्रजम । छायामार्तण्डसंभूतं तं नमामि शनैश्चरम ॥
अर्धकायं महावीर्य चन्द्रादित्यविमर्दनम । सिंहिकागर्भ संभूतं तं राहुं प्रणमाम्यहम ॥
पलाशपुष्पसंकाशं तारकाग्रह मस्तकम । रौद्रं रौद्रात्मकं घोरं तं केतुं प्रणमाम्यहम ॥
आयुश्च वित्तं च तथा सुखं च धर्मार्थलाभौ बहुपुत्रतांच ।
शत्रुक्षयं राजसु पूजितां च तुष्टा ग्रहाः क्षेमकरा भवन्तु ॥
ब्रह्मामुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमि-सुतो बुधश्च ।
गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः सर्वे ग्रहाः शान्तिकरा भवन्तु ॥

अभ्यासात्मक प्रश्न –2

1. पंचोपचार पूजा में कितने द्रव्यों से पूजा होती है ।

(क) 1(ख) 3(ग) 4 (घ) 5

2. षोडशोपचार पूजा में कितने द्रव्य प्रयुक्त होते हैं ।

(क) 4 (ख) 8 (ग) 12 (घ) 16

3. **"ॐ लं पृथिव्यै आधार शक्तये नमः" यह मन्त्र किस देवी- देवता का है ।**

(क) पृथ्वी (ख) अग्नि (ग) वरुण (घ) इंद्र

4. इनमें से कोन सा मन्त्र पवित्री करण मन्त्र है ।

(क) **ॐ अपवित्र: पवित्रो वा सर्वावस्थाङ्गतोऽपि वा। य: स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स: बाह्याऽभंतर: शुचि:॥**

(ख) ॐमनोजूतिर्जुषता माज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तन्नोत्वरिष्टं यज्ञँ$, समिमं दधातु । विश्वे देवास इह मादयन्तामो३प्रतिष्ठा : ॥

(ग) ॐ जातवेदसे सुनवाम सोमं अरातीयतो नि दहाति वेदः । स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥

(घ) कोई नहीं

5.7 सारांश

प्रिय अध्येताओं इस इकाई के अन्तरगत आपने अध्ययन किया कि नवग्रहशान्ति क्या है , साथ ही इसकी विधी का भी सांगोपांग अध्ययन किया इस इकाई में आपने जाना की कैसे नवग्रहों की पूजा व शांति करके मनुष्य जीवन में समस्त अशुभत्व का क्षय करके शुभता की वृद्धि करता है – नवग्रह शन्ति से मुख्य रूप से हमारे जीवन में घटित हो रही अनेक प्रकार की नकरात्मक ऊर्जा को समाप्त कर सकारात्मक ऊर्जा मे वृद्धि के लिए की जाती है। इन नवग्रहों का प्रभाव हमारे जीवन पर भी पड़ता है। सूर्य, चंद्रमा, मंगल, बुध, शुक्र, बृहस्पति, शनि, राहू एवं केतू इन सभी ग्रहो के समूह को नवग्रह कहा जाता है। प्रत्येक ग्र का अपना महत्व होता है हमारे जन्म कुण्डली में इन्ही ग्रहों से शुभ – अशुभ योग बनते हैं तथा उनके ही प्रभाव से यह जीवन प्रभावित होकर शुभाशुभता को प्राप्त करता है । तथा जो ग्रह अनिष्टकारी होते हैं उनके अनिष्ट फल की निवृत्ति के लिए नवग्रहों के निमित्त पुजन – जप – होम, तथा शान्ति की जाती है इसी शांतिक – पौष्टिक कर्म को नवग्रह शांति के नाम से भी हम जानते हैं ।उपरोक्त सभी बातों का हमने इस इकेई के अंतर्गत विस्तार पूर्वक अध्ययन किया ।

5.8 पारिभाषिक शब्द

दैनन्दिन - प्रतिदिन,
दिनचर्या -दिन की शुरुआत नित्य किए जाने वाले कार्य
उषाकाल- सूर्योदय से पूर्व का समय
त्रिकाल संध्या -तीन काल की संध्या करना
आसन- जहां बैठकर प्रभु की आराधना हो जहां थिर पूर्वक बैठा जाय।
मंत्र - मन से मनन करना मंत्र कहलाता हैं
धरणी - भूमि
उच्चारण - बोलना ,
सर्वांगीण – सभी अंगों का विकास,
षट्कर्म – छ: प्रकार के नित्य कर्म
आत्मा विश्वास -स्वयं पर विश्वास
कराग्रे- हाथ के अग्र भाग मैं
संध्या काल – गोधूलि काल के समय को संध्या काल कहा जाता हैं।
नित्य कर्म – हमेशा होनेवाले कर्म
हिरण्य – स्वर्ण
सांगोपांग – विधि- विधान पूर्वक सम्पूर्ण विधि सहित ।

5.9 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर

अभ्यासात्मक प्रश्न –1

1. क
2. ग
3. क
4. क

अभ्यासात्मक प्रश्न –2

1. घ
2. घ
3. क
4. क

5.10 सहायक पाठ्य ग्रन्थ व संदर्भित ग्रन्थ सूची

1. नित्य कर्म पूजा प्रकाश, लाल विहारी मिश्र
2. कर्मठ गुरु
3. संध्योपासन विधि -गीताप्रेस गौरखपुर
4. कर्मकांड प्रदीप

5.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. कर्मकाण्ड के प्रयोजन के सन्दर्भ में एक विस्तृत निबन्ध लिखिए।
2. ग्रह शांति का प्रयोजन व महत्व के सन्दर्भ में लिखिए।
3. पंचोपचार पूजन विधान क्या है, विस्तार पूर्वक उल्लेख कीजिए।
4. षोडशोपचार पूजन विधि क्या है साथ ही महत्त्व को भी बताएं।

इकाई- 6 मूल गण्डान्त शांति विधि

इकाई की संरचना

6.1 प्रस्तावना
6.2उद्देश्य
6.3 विषय परिचय
6.4 गण्डान्त नक्षत्रों के प्रकार
6.5 गण्डान्तनक्षत्रों का मानव जीवन से सम्बन्ध
6.5.1मूल गण्डान्त का स्वरुप
6.5.2 मूल वास विचार
6.6 मूल गण्डान्त का स्वरुप
6.6.1 मूल वास का विचार
6.6.2 गण्ड मूल शांति विधि
6.7 सारांश
6.8 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर
6.9 पारिभाषिक शब्दावली
6.10सन्दर्भ ग्रंथ सूची
6.11निबंधात्मक प्रश्न

6 .1 प्रस्तावना

प्रिय अध्येताओं प्रस्तुत इकाई वैदिक कर्मकाण्ड(BASL-(N)-121) पाठ्यक्रम के प्रथम खण्ड की छठवीं इकाई है। इस इकाई का शीर्षक है – **"मूल गडान्त शान्ति विधि"**नक्षत्र मूल संबंधी शान्ति विधि का अध्ययन हम इस इकाई में करने का प्रयास करेंगे। जैसे कि आपको ज्ञान होगा कि नक्षत्र सताईस होतें हैं – उनमें से छ: नक्षत्र ऐसे हैं जो मूल कहलाते हैं- अश्विनी, आश्लेषा, मघा, ज्येष्ठा, रेवती एवं मूल। इन नक्षत्रों में जन्म लेने वाले जातकों का विशेष फल होता है, यूँ कहें कि कुछ अशुभ एवं कुछ हद तक शुभाकिसी भी जातक का जन्म शुभ लग्नानुसार होता है उस समय ब्रमांड में कोई न कोई नक्षत्र विद्यमान रहता है।जो इस प्रकार है।ये छ: नक्षत्र गण्ड मूल के नाम से जाने जाते है इन सभी नक्षत्रों में मूल नाम के नक्षत्र को मूल गण्डांत के नाम से भी जाना जाता हैं।जिस भी जातक का जन्म इन नक्षत्रों में होने के कारण जातक के जीवनपर कष्टमय प्रभाव पड़ता है।तथा कभी-कभी जातक के परिवार पर भी सीधा-सीधा संबंध होने के कारण इनसे संबंधित लोगों का भी जीवन भी कष्टमय होता है। इस प्रकार की समस्या को दूर करने के लिए शान्ति कराने की आवश्यकता होती है। इसी शान्ति विधि कोमूल गण्डांत शान्ति विधि के नाम से जाना जाता है। इस इकाई के अन्तर्गत हम इस प्रसंग का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

6.2उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप बोध कर सकेंगे कि -

- गंड मूल किसे कहते हैं तथा कौन-कौन से हैं।
- गण्डान्त नक्षत्रों के बारे में जान पायेंगे।
- मूल गण्डान्त नक्षत्र के स्वरुप से अवगत हो सकेंगे।
- गण्डान्त में जन्मे जातकों के फल के बारे में जान सकेंगे।
- मूल नक्षत्र शांति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

6.3 विषय परिचय

नक्षत्र – आकाश में विविध प्रकार का प्रकाश विद्यमान रहता है- प्राय: तारे व तारे पूंज दिखाई पड़ते हैं उन्हीं टिम-टिमाते तारों में से नक्षत्र भी होते हैं जो कि भ–चक्र में भ्रमण करते हैं , जब किसी जातक का जन्म होता है, उस समय उसदिन तद समयानुसार जो नक्षत्र संचार करता है, उसे उस जातक का जन्म नक्षत्र कहा जाता है ।जातक जन्म के समय ज्योतिष गणना के अनुसार ही उस जातक की सारी गणना की जाती हैं। ज्योतिषशास्त्र के द्वारा जातक के नक्षत्रों का निर्धारण किया जाता हैं।भचक्र मैं जब 27 नक्षत्र भ्रमण करते हैं ।अब बात करते हैं मूल व गंडमूल की-गंडमूल नक्षत्र एक प्रकार से नक्षत्रों की संज्ञा है ।जो इस प्रकार है - अश्विनी,मघा, आश्लेषा, रेवती , ज्येष्ठा, मूल, ये गंडमूल नक्षत्र कहलाते हैं।

गण्ड शब्द का अर्थ गांठ होता हैं जब आपस मैं दो रस्सियों का जुड़ाव किया जाता है तो उस रस्सी पर गांठ पड़जाती हैं जिसे गण्ड कहते हैं। शास्त्रीय ग्रन्थों मेंगंड को अभुक्त मूल के नाम से जाना जाता हैं।

अभुक्तमूलं घटिकाचतुष्टयं ज्येष्ठान्त्यमूलादिभवं हि नारदः ।
वसिष्ठ एकद्विघटीमितं जगी वृहस्पतिस्त्वेकघटीप्रमाणतः।।

ज्येष्ठा नक्षत्र के अन्त्य की आठ घटी और मूल नक्षत्र के आदि की पांच घटी अभुक्त मूल कहलाती हैं, इस अभुक्त मूल नक्षत्र में जन्म लेने वाले जातकों को समस्या का सामना आने वाले भविष्य में करना पड़ता हैं। जिस भी जातक के जन्म समय परगण्ड मूल नक्षत्र का प्रवेश होता हैं, शास्त्र के अनुसार उसका विधि के द्वारा गंड मूल नक्षत्र की शांति करनी चाहिए। तथा आठ वर्ष तक पिता को जातक का मुखनही देखना चाहिये।यह अशुभकारक होता हैं।

6.4 गण्डान्त नक्षत्रों के प्रकार

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार 27 नक्षत्रों में अश्विनी से लेकर रेवती नक्षत्र तक इन नक्षत्रों की गणना की जाती हैं।इन 27 नक्षत्रों में से 6गण्डमूल नक्षत्र का क्रम भी इन्हीं नक्षत्रों के अन्तर्गत आता हैं जो इस प्रकार से हैं।-अश्विनी,मघा,आश्लेषा,ज्येष्ठा,रेवती,मूलाये छ: प्रकार के नक्षत्र गंडमूल नक्षत्र कहलाते हैं। किसी भी जातक के जन्म के समय मैं यदि इन नक्षत्रों का प्रवेश होता हैं तो गंडमूल नक्षत्र में उनका जन्म माना जाता हैं। ज्योतिष शास्त्र मैं गंडमूल नक्षत्रों को अशुभ की श्रेणी मैं गिना जाता हैं। जो अनिष्ट करने वाले होते हैं। इन नक्षत्रों मैं जन्में जातक को अनेक समस्याओं से आगे बढ़ना पड़ता हैं स्वास्थ्य, मानसिक तनाव, कार्य मैं बाधा, इन सभी प्रकार की समस्याओं का सामना इस नक्षत्र वाले जातक को करना पड़ता हैं। इन छह प्रकार के गंडमूल नक्षत्रों मैं भी आश्लेषा,मूल, ज्यैष्ठा, नक्षत्र वाले जातकों को अधिक कष्टप्रद होता हैं स्वास्थ्य मैं गिरावट,अनेक कार्य मैं बाधा, क्रोध की प्रवृत्ति बनी रहती हैं। हमारे शास्त्रीय ग्रंन्थों मैं इन नक्षत्रों से मुक्ति कैसे मिल सके उसके लिए परिहार के द्वारा कर्मकांड के माध्यम से वैदिक लौकिक मंत्रों तथा नक्षत्रोंके मंत्रों का जप कराकर यज्ञ करनें से गंडमूल नक्षत्रों की शान्ति करनी चाहिए। जिससे की उस जातक पर इन नक्षत्रों का विपरीत प्रभाव न पड सकें।

1. अश्विनी नक्षत्र –

मेष राशि एवं केतु के इस नक्षत्र में उत्पन्न हुए बच्चे का जीवन प्रायः संघर्षशील रहता है। इस नक्षत्र के प्रथम चरणमें जन्म होने से पिता के लिए कष्टकारी, दूसरे चरण में जन्म हो तो घर में अशांति, तीसरे चरण में भ्रमणशील, तथा चतुर्थ नक्षत्र में कृश शरीर (अपनेशरीर के लिए) कष्ट बना रहता है।

2. आश्लेषा नक्षत्र –

कर्क राशि एवं बुध के नक्षत्र के जातक प्राय: चंचल एवं चतुर मूल बुद्धि वाले तथा परिवर्तनशील प्रकृति के होते हैं। प्रथम चरण में जन्म हो तो विशेष दोष नहीं, ती दूसरे चरण में पैतृक धन की हानि, तीसरे चरण में माता-पिता के लिए गण्डान्त शूल तथा चतुर्थ चरण में जन्मे जातक पिता के लिए अनिष्टकारी होता हैं।

आश्लेषाद्ये न गण्डं स्यातंधनगण्डं द्वितीयके ।
तृतीये मातृगण्डं तु पितृगण्डं चतुर्थके ॥

3. मघानक्षत्र–

सूर्य राशि और केतु के नक्षत्र में उत्पन्न जातक स्पष्टवादी, शीघ्र क्रुद्धहोने वाले, उद्यमी और धनवान होते हैं। प्रथम चरण में उत्पन्न हो तो माता-पिता को कष्ट या मातृ पक्ष की हानि, दूसरे चरण में पिता को परेशानी,तीसरे चरण में जन्म हो तो शुभ फलदायक, चतुर्थ चरण में जन्म हो तो विद्या, धनादि के लिए शुभ होता है।

4. ज्येष्ठा नक्षत्र-

मंगल की राशि (वृश्चिक) एवं बुध के नक्षत्र में उत्पन्न जातकसरल हृदय, तीक्ष्ण बुद्धि, धर्म परायण तथा उन्नति के कार्यों में अनेक बाधाओं से युक्त होते हैं।ज्येष्ठा नक्षत्र के प्रथम पाद (चरण) में दूसरे चरण में पैदा हो तो छोटे भाई को नेष्ट,तीसरे चरण में पिता के लिए अरिष्टकर तथा यदि चतुर्थ चरण में उत्पन्न हो जातक स्वयं अपने एवं पिता के लिए कष्टकारी होता है।

ज्येष्ठाद्यपादेऽग्रजमाशुं हन्याद् द्वितीयपादे यदि तत्कनिष्ठम् ।
तृतीयपादे पितरं निहन्ति स्वयं चतुर्थे मृतिमेति जातः।।

ज्येष्ठा नक्षत्र और मंगलवार के योग में उत्पन्न कन्या बड़े भाई के लिए अरिष्टकारक होती है।

5. अभुक्त मूल नक्षत्र-

ज्येष्ठा नक्षत्र की अन्तिम २ घटियाँ तथा मूल नक्षत्र केआरम्भ की २ घटियाँ-कुल चार घड़ियाँ अभुक्त मूल गण्ड नक्षत्र कहलाते हैं। इनमें उत्पन्न कन्या, पुत्र, पशु और नौकर कुल के लिए अनिष्टकारी माना जाता हैं ।

अभुक्त मूलं गठिका चतुष्टयं ज्येष्ठान्त्यमूलादि भवं हि नारदः ।
जातं शिशुं तत्र परित्यजेत् वा मुखं पिताऽस्याष्ट समा न पश्येत् ॥

अभुक्त मूल नक्षत्र-

नक्षत्रों की आद्यान्त घटियों के बारे में विद्वानों में मतान्तर पाया जाता है।यथा-नारद के अनुसार - ज्येष्ठा, मूल नक्षत्र की चार घटियाँ, वशिष्ठ के अनुसार 2 घटियाँ बृहस्पति के मतानुसार केवल १-१ अभुक्त-मूल संज्ञक है। अभुक्तमूलोत्पन्न बालक यदि जीवित रहे, तो अपने वंश की वृद्धि करने वाला, धनवान् एवं सम्पत्तिवान होता है।

6. मूल नक्षत्र-

केतु के नक्षत्र और गुरु की राशि (धनु) में उत्पन्न जातक धार्मिक रुचि वाला, उदार हृदय, मिलनसार, परोपकारी,धन-वाहनादि सुखों से युक्त होता है। चरण भेदानुसार मूल नक्षत्र के प्रथम चरण में उत्पन्न जातक पिता की हानि करता है। दूसरे चरण में माता की हानि,तीसरे चरण में धन का नाश,चौथा चरण सभी के लिए शुभ होता हैं ।नक्षत्र की विधिपूर्वक शान्ति लेने से अनिष्ट का भय नहीं रहता।

मूलाद्यपादे पितरं निहन्याद् द्वितीयके मातरमांशु हन्ति ।
तृतीयजो वित्तविनाशकः स्यात् चतुर्थपादे समुपैति सौख्यम् ॥

मूल नक्षत्र और रविवार दोनों के योग में उत्पन्न कन्या श्वसुर के लिए अनिष्टकारी होती है-

भौमवासरे योगेन ज्येष्ठाजा ज्येष्ठ सोदरम् ॥
भानुवासरयोगेन मूलजा श्वसुरं हरेत् ॥

6.5गण्डान्त नक्षत्रों का मानव जीवन से सम्बन्ध

हमारे ऋषियों ने ज्योतिष शास्त्र का अपने जीवन मैं उतारकर मानव जीवन के आने वाली समस्याओं का समाधान कैसे हो सके उस भविष्य को ज्ञात करनें के लिए खगोलीय पिंड का अध्ययन कर इस ज्योतिष शास्त्र को आगे बढ़ाने का कार्य किया खगोलीय पिंड मैं 27 नक्षत्रों की गणना के साथ साथ 6 गंडमूल नक्षत्रों में जन्मे जातक के जीवन मैं इनका क्या सम्बन्ध रहा हैं। वस्तुत इन गंडमूल नक्षत्रों को अशुभ कारक माना गया हैं ये नक्षत्र अपने स्वभाव के अनुसार ही जातक को फल देते हैं। जैसे आश्लेषा नक्षत्र को अशुभ नक्षत्र माना जाता इस नक्षत्र के देवता सर्प होते हैं तथा राक्षस प्रवृत्ति के कार्य करनें वाले गंडमूल नक्षत्रों का मानव जीवन से अत्यन्त

सम्बन्ध रहा हैं। जो सदैव जातक को कष्ट देते रहते हैं विपरीत मार्ग की ओर ले जाते हैं। विपरीत मार्ग से कैसे सद्मार्ग की ओर जाया जाय इन सभी के लिए इन नक्षत्रों की शान्ति तथा नक्षत्रों के देवताओं की आराधना करनी चाहिए। जिससे की उस जातक के जीवन मैं आने वाली समस्याओं का निदान हो सकें। इसलिए गंडमूल नक्षत्रों का मानव जीवन में विशेष विपरीत प्रभाव रहा हैं।

6.5.1मूल गण्डान्त का स्वरुप

मूल नक्षत्र की सम्पूर्ण घटियों को 15 द्वारा भाग देकर 15 खण्ड बना कर प्रत्येक खण्ड काफल इस प्रकार से होगा। प्रथम भाग हो तो पिता के लिए अनिष्टकर, दूसरे में चाचा की हानि, तीसरे में बहनोई की हानि, चौथे में पितामह (दादा) की हानि, आठवें में चाची के लिए अनिष्टक, नवमे में सबके लिए अनिष्टकर, दसवें अंश में पशु का नाश, ग्यारहवें में नौकर का नाश होता है। बारहवें अंश में स्वयं जातक का नाश होता है। तेरहवें अंश में हो तो उसके ज्येष्ठ भाई का नाश, चौदहवें अंश में जातक की बहिन का अनिष्ट होता है। अगर पन्द्रहवें में हो तो नाना को कष्ट (अनिष्ट) होता है।उदाहरण–यदि मूल का सर्वर्क्ष योग ६४ घड़ी १८ पल है, तो इसमें १५ द्वारा भाग देने सेलब्ध प्रथम भाग में ४ घड़ी, १७ पल हुए। मान लो कि जन्मकालीन भयात् २८ १४५ है। ४।१७

चट्यादि को ९ से गुणा करने पर पता चला कि ३८।३३ पर नौवां खण्ड (भाग) समाप्त होकर३८ १४५ पर दसवां भाग पड़ता है। तदनुसार फल चौपाय आदि पशु के लिए अनिष्ट रहेगा।

- रेवती नक्षत्र-बुध के नक्षत्र और गुरु की राशि (मीन) में उत्पन्न जातक सर्वप्रिय, विद्यावान, सुन्दर आकृति, तर्कशील एवं धनवान् होता है। रेवती के प्रथम चरण में जन्म हो तो राजा के समान वैभवशाली, दूसरे में मन्त्री के समान सुख साधनों से युक्त, तीसरे में जन्म होने से धनवान तथा चतुर्थ में जन्म होने से माता-पिता के लिए अरिष्टकारी होता है।

दिवाजातस्तु पितरं रात्रौ तु जननीं तथा ।
आत्मानं संध्ययोर्हन्ति ततो गण्डं विवर्जयेत् ।।

6.5.2 मूल वास विचार

स्वर्गे शुचिप्रौष्ठपदेषुमाघे भूमौ नभः कार्त्तिकचैत्रपौषे ।
मूलं ह्यधस्तात्तु तपस्यमार्गवैशाखशुक्रेष्वशुभं च तत्र ।।

मूल वास का विधि विधान से विचार कर शुभ मास का भी चिंतन करने चाहिए ।आषाढ़, भाद्रपद, आश्विन और माघ इन चार महीनों में मूल नक्षत्र का वास स्वर्ग लोक में होता है। श्रावण, कार्तिक, चैत्र, पौष मास में मूल नक्षत्र का निवास पृथिवी पर होता है। फाल्गुन, मार्गशीर्ष, वैशाख और ज्येष्ठ मास में मूल नक्षत्र का वास पाताल लोक में होता है। मूल नक्षत्र अपने स्वभाव के अनुसार फल प्रदान करता हैं। मूल नक्षत्र जिस लोक में रहता है उसी लोक में फल की प्राप्ति करता हैं।यदि किसी जातक का जन्म श्रावण, कार्त्तिक, चैत्र, पौष इन चार मासों में होता है तो उस जातक का कर्मकांड का द्वारा गंडमूल नक्षत्र की शान्ति करनी चाहिये।शास्त्रों में कहा गया है की जिस जातक का जन्म मूल नक्षत्रों में हो तो उसे इन महीनों में शांति करने का निर्देश शास्त्रों ने दिया हैं । जीना जन्म अभुक्त मूल नक्षत्रों में हो तो उस जातक का प्रति महीना शांति करानी चाहिए ।यदि कोई जातक मूल नक्षत्र में जन्म लेता है तो उस जातक की

मूल शांति करना चाहिय। जिससे की जातक पर कोई भी बूरा प्रभाव पड़ने से वह जातक सुरक्षित हो जाता हैं। इस इकाई में मूल शांति शास्त्रों के द्वारा केसे किया जाय इस विषय में आगे सदिय जा रहा हैं।

बोधात्मक प्रश्न –

1.नक्षत्रों की कितनी संख्या होती है।

क. 20

ख. 26

ग.

27

घ. 30

2. इनमें से गंड मूल नक्षत्र हैं।

क.अश्विनी, मघा, आश्लेषा

ख. ज्यैष्ठा, रेवती, मूल

ग. कृतिका

घ.कोई नहीं

3. राशियाँ कितनी होती है।

क. 4

ख. 6

ग. 10

घ. 12

4. मूल शान्ति जन्म से कितने दिन में होती है –

क. 27 दिन

ख. 7 दिन

ग. 3 दिन

घ. एक माह के पश्चात

6.5.3 मूल में जन्मे जातकों को धाताव्य बातें-

किसी भी जातक ने गंडमूल नक्षत्र में जन्म लिया हो तो वे जातक अपने मां बाप के लिए कष्ट प्रदान करने वाले होते हैं। ऐसा कहा जाता है कि जिस भी बच्चे ने गंडमूल नक्षत्र में जन्म लिया है तो उनके पिता को बच्चे का मुंह नहीं देखना चाहिए। 22 दिन तक बच्चे के पिता को बच्चे का मुंह नहीं देखना चाहिए और 27 दिन तक उस बच्चे के सर के ऊपर से मूली के पत्ते घुमाकर दूसरे दिन बहते पानी में प्रवाह कर देना चाहिए 27 दिन तक यह प्रक्रिया नियमित रूप से करने का विधान हैं।उसके बाद 28 वे दिन पिता बच्चे का मुंह देख सकता है।जो भी बच्चा मूल नक्षत्र में जन्म लेता है उस बच्चे का स्वास्थ्य कमजोर रहता है इसीलिए उनके मां-बाप को पूर्णिमा का उपवास करने की सलाह भी दी जाती है। अगर किसी बच्चे की राशि सिंह है और नक्षत्र मघा है तो उस बच्चे के मां-बाप को सूर्य को जल अर्पित करना चाहिए। अगर किसी बच्चे की राशि मेष है और उसका नक्षत्र अश्विनी है तो उस बच्चे के मां-बाप को हनुमानजी की उपासना करनी चाहिए। किसी बच्चे की राशि धनु है और उसका नक्षत्र मूल है तो उनके मां-बाप को गुरु और गायत्री उपवास करना चाहिए। अगर किसी बच्चे की राशि कर्क है और नक्षत्र

आश्लेषा है तो उसे भगवान शिव की उपासना करनी चाहिए अगर किसी बच्चे की राशि वृश्चिक है और नक्षत्र ज्येष्ठा है तो बच्चे से हनुमानजी की उपासना करानी चाहिए। अगर किसी बच्चे की राशि मीन है और नक्षत्र रेवती है तो उस बच्चे से गणेश जी की उपासना करानी चाहिए। अश्विनी, मघा और मूल नक्षत्र में पैदा होने वाले बच्चे को बुध ग्रह की उपासना और आराधना करनी चाहिए अथवा बुधवार के दिन बच्चे के हाथ से हरी वस्तुओं का दान भी करना चाहिए। आश्लेषा, ज्येष्ठा और रेवती नक्षत्र में पैदा होने वाले बच्चे को बुध ग्रह की उपासना करनी चाहिए तथा बुधवार के दिन उस बच्चे के हाथ से हरी वस्तुओं का दान भी कराने से लाभ प्राप्त होता है। सर्वप्रथम यजमान के वाम भाग में उनकी पत्नी का गठबंधन कराकर उत्तर दिशा या फिर पूर्व दिशा की ओर मुख करके आसन ग्रहण करना चाहिए उसके बाद पूजा प्रारंभ करें, उसके बाद यजमान दंपत्ति दोनों लोग अपनी पूजा सामग्री कर जल छिड़कना है।

ॐ अपवित्रः पवित्रो व सर्वावास्थांग गतोपिऽवा ।यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं सबाह्याभ्यंतरः शुचिः ॥

ॐ नारायणाय नमः ।ॐ केशवाय नमः ।ॐ माधवाय नमः ।ॐ गोविंदाय नमः ।

उपरोक्त मंत्रों के उच्चारण करते हुए आचमन और अपने हाथों का प्रक्षालन करना चाहिए।

तदनंतर– जलाक्षत-पुष्प लेकर सभी देवताओं का ध्यान करना चाहिए।

स्वस्तिवाचन -स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभं यावानो विदथेषु जग्मयः ।अग्निर्जिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवाऽअवसागमन्निह ॥ भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥ अदितिद्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥ द्योः शान्तिरन्तरिक्ष शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु । शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥सुशान्तिर्भवतु ॥

श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः। उमामहेश्वराभ्यां नमः। वाणीहिरण्यगर्भाभ्यां नमः । शचीपुरन्दराभ्यां नमः ।मातृपितृचरणकमलेभ्यो नमः। इष्टदेवताभ्यो नमः । कुलदेवताभ्यो नमः । ग्रामदेवताभ्यो नमः वास्तुदेवताभ्यो नमः । स्थानदेवताभ्यो नमः । सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः । सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नमः। ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः । उसके बाद अपने हाथ में लिए हुए अक्षत, पुष्प सभी देवताओं के सामने छोड़ दे । उसके बाद फिर से यजमान दंपत्ति के हाथों में अक्षत जल लेकर संकल्प करें ।

संकल्प - ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्री मद्भग्वतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य ब्राह्मणोऽहि द्वितीयप्रहरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवश्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथम चरणे जम्बुद्वीपे भारतवर्षे आर्यावर्तैकदेशे (अमुक) प्रदेशे (अमुक) मासे (अमुक) पक्षे (अमुक) तिथौ (अमुक) (अपना नाम) नामनाहम् (अमुक) (अपना गोत्र) गोत्रस्य मम अस्याः जातकस्य (पुत्र या पुत्री कहें) (अमुक) (नक्षत्र का नाम लें) नक्षत्र गण्ड-मूल जनित दोषोपशांत्यर्थम् गौरी-गणेश, नवग्रह, वरुण कलश, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र व (अमुक) नक्षत्र पूजन पश्चात नक्षत्र व सर्वतोभद्रहवन कर्म,छाया पात्र दान, शान्ति कर्माऽहं करिष्ये। इसके पश्चात

सर्व प्रथम कलश में रोली से स्वस्तिक का चिह्न बनाकर गले मौली लपेटे और कलश को एक ओर रख लेना चाहिए। कलश स्थापित कि जानेवाली भूमि अथवा पाटे पर कुङ्कम या रोली से अष्टदल कमल बनाकर निम्न मन्त्रसे भूमिका का स्पर्श करे।

भूमिका स्पर्श – ॐ भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधीया विश्वस्य भुवनस्य धात्री।

मन्त्र पढ़कर पूजित भूमि पर सप्तधान्य' अथवा गेहूँ, चावल या जौ को छोडे।

धान्यप्रक्षेप – ॐ धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वो दानाय त्वा व्यानाय त्वा। दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रति गृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयोऽसि॥ इस धान्य पर निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर कलशकी स्थापना करे-

कलश-स्थापन – ॐ आ जिघ्र कलशं मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः। पुनरूर्जा नि वर्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्मा विशताद्रयिः॥

कलशमें जल – ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनी स्थो वरुणस्य ऋतसदन्यसि वरुणस्य ऋतसदनमसि वरुणस्य ऋतसदनमा सीद॥

कलशमें चन्दन – ॐ त्वां गन्धर्वा अखनस्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः। त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान् यक्ष्मादमुच्यत॥

कलशमें सर्वोषधि' – ॐ या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा। मनै नु बभ्रूणामहः शतं धामानि सप्त च॥ (सर्वोषधि छोड़ दे।)

कलशमें दूर्वा – ॐ काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि। एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च॥

कलशपर पञ्चपल्लव – ॐ अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता। गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम्।

कलशमें पवित्री – ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम्॥

कलश में सप्तमृत्तिका को डाले -ॐ स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म सप्रथाः।

कलशमें सुपारी –ॐ याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः। बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्व गुं हसः॥

कलश में पञ्चरत्न-ॐ परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत्।दधद्रत्नानि दाशुषे।

कलशमें द्रव्य –ॐ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकआसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर कलशको वस्त्रसे अलंकृत करे-

कलश पर वस्त्र धारण - ॐ सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरूथमाऽसदत्त्वः। वासो अग्ने विश्वरूपः गुं सं व्ययस्व विभावसो॥

कलशपर पूर्णपात्र – ॐ पूर्णा दर्वि परापत सुपूर्णा पुनरा पत। वस्नेव विक्रीणावहा इषमूर्ज शतक्रतो॥

चावल से भरे पूर्णपात्र को कलश पर स्थापित करे और उस पर लाल कपड़ा लपेटे हुए नारियलको निम्न मन्त्र पढ़कर रखे-

कलश पर नारियल – ॐ याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः । बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वः हसः ॥ अब कलशमें देवी-देवताओंका आवाहन करना चाहिये। सबसे पहले हाथ में अक्षत और पुष्प लेकर निम्नलिखित मन्त्रसे वरुणका आवाहन करे-

कलशमें वरुणका ध्यान और आवाहन - ॐ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेडमानो वरुणे ह बोध्युरुशः स मा न आयुः प्रमोषीः ॥ अस्मिन् कलशे वरुणं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिकमावाहयामि।ॐ भूर्भुवः स्वः भो वरुण। इहागच्छ, इह तिष्ठ, स्थापयामि, पूजयामि, मम पूजां गृहाण। 'ॐ अपां पतये वरुणाय नमः' कहकर अक्षत-पुष्प कलश पर छोड़ दे।फिर हाथमें अक्षत-पुष्प लेकर चारों वेद एवं अन्य देवी-देवताओंका आवाहन करना चाहिए।

कलशमें देवी-देवताओं का आवाहन- कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः।मूले त्वस्य स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः ॥ कुक्षौ तु सागराः सर्वे सप्तद्वीपा वसुन्धरा । ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः ॥

अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः। अत्र गायत्री सावित्री शान्तिः पुष्टिकरी तथा ॥

आयान्तु देवपूजार्थं दुरितक्षयकारकाः । गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।

नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥ सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः।

आयान्तु मम शान्त्यर्थं दुरितक्षयकारकाः ॥ इस तरह जलाधिपति वरुणदेव तथा वेदों, तीर्थों, नदों, नदियों, सागरों, देवियों एवं देवताओं के आवाहन के बाद हाथ में अक्षत-पुष्प लेकर निम्नलिखित मन्त्रसे कलशकी प्रतिष्ठा करे-

प्रतिष्ठा – ॐ मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञःगुं समिमं दधातु विश्वे देवास इह मादयन्तामो ३ म्प्रतिष्ठ ॥ कलशे वरुणाद्यावाहितदेवताः सुप्रतिष्ठिता वरदो भव।

पाद्यं- गङ्गोदकं निर्मलं च सर्वसौगन्ध्यसंयुतम् । पादप्रक्षालनार्थाय दत्तं मे प्रतिगृह्यताम् ॥

पादयोः पाद्यं समर्पयामि। (आचमन जल छोड़े।)

अर्घ्यं- गङ्गोदकं निर्मलं च सर्वसौगन्ध्यसंयुतम् ।

गृहाणार्घ्यं मया दत्तं प्रसन्नो वरदो भव ॥

हस्तयोरर्घ्यं समर्पयामि अर्घ्य का जल छोड़े

आचमनम - कर्पूरेण सुगन्धेन वासितं स्वादु शीतलम् ।

तोयमाचमनीयार्थं गृहाण परमेश्वर ॥

मुखे आचमनीयं जलं समर्पयामी आचमनके लिये जल समर्पित करे ।)

स्नानीय जल- मन्दाकिन्यास्तु यद् वारि सर्वपापहरं शुभम् ।

तदिदं कल्पितं देव स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

स्नानीयं जलं समर्पयामि

वस्त्र- शीतवातोष्णसंत्राणं लज्जाया रक्षणं परम् । देहालङ्करणं वस्त्रमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

आभूषणं - वज्रमाणिक्यवैदूर्यमुक्ताविद्रुममण्डितम् । पुष्परागसमायुक्तं भूषणं प्रतिगृह्यताम् ॥

अलङ्करणार्थ आभूषणानि समर्पयामि

गन्धं- श्रीखण्डं चन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम्।विलेपनं सुरश्रेष्ठ! चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ॥

पुष्पं- माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो।

मयाहतानि पुष्पाणि पूजार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

धूपं- वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः। आत्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

दीपं - साज्यं च वर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया ।दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापहम्॥
नैवेद्यं - शर्कराखण्डखाद्यानि दधिक्षीरघृतानि च। आहारं भक्ष्यभोज्यं च नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥
आचमनं- कर्पूरेण सुगन्धेन वासितं स्वादु शीतलम् । तोयमाचमनीयार्थं गृहाण परमेश्वर ॥
मुखे आचमनीयं जलं समर्पयामी आचमनके लिये जल समर्पित करे ।
ताम्बूलं - पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम्।
एलादिचूर्णसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥
प्रार्थना-
देवदानवसंवादे मथ्यमाने महोदधौ। उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम्॥
त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः। त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ॥
शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापति । आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः सपैतृकाः ॥
त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः । त्वत्प्रसादादिमां पूजां कर्तुमीहे जलोद्भव।
सांनिध्यं कुरु मे देव प्रसन्नो भव सर्वदा ॥ नमो नमस्ते स्फटिकप्रभाय सुश्वेतहाराय सुमङ्गलाय ।
सुपाशहस्ताय झषासनाय जलाधिनाथाय नमो नमस्ते ॥ 'ॐ अपां पतये वरुणाय नमः|
सर्वेवरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः, प्रार्थनापूर्वकं नमस्कारान् समर्पयामि । (इस ना इस मंत्र के द्वारा नमस्कार पूर्वक भगवान को पुष्प पुष्प समर्पित करें |
नवग्रह पूजनं - पूजन के इसी क्रम में नवग्रह का जल, अक्षत, पुष्प लेकर निम्न मंत्र का विधि विधान से नवग्रह वेदी का पूजन करना चाहिए|
ॐ सूर्याय नमः ।ॐ चंद्राय नमः ।ॐ मंगलाय नमः।ॐ बुधाय नमः ।ॐ बृहस्पत्ये नमः ॐ शुक्राय नमः ।ॐ शनिश्चराय नमः ।ॐ राहवे नमः ।ॐ केतवे नमः ।
उसके बाद फिर से अपने हाथों में अक्षत पुष्प लेकर नवग्रह मंडल देवताओं का धयान करने क विधान है|
ॐ ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च ।गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः सर्वे ग्रहाः शान्तिकरा भवन्तु ॥सूर्यः शौर्यमथेन्दुरुच्चपदवीं सन्मङ्गलं मङ्गलः।सद्बुद्धिं च बुधो गुरुश्च गुरुतां शुक्रः सुखं शं शनिः ।
राहुर्बाहुबलं करोतु सततं केतुः कुलस्योन्नतिं।नित्यं प्रीतिकरा भवन्तु मम ते सर्वेऽनुकूला ग्रहाः ॥
अस्मिन नवग्रह मण्डल देवताभ्यो नमः, आवाहयामि, स्थापयामि पूजयामि च ।
उसके बाद नवग्रह मंडल पर अक्षत और फूल छोड़ दे.
मूल शांति कलश पूजन विधि-चार कलशों का वेदिक , लोकिक मंत्रो ,श्लोको के बाद चारों कलशो का पूजन अर्चन करना चाहिये |
1. **प्रथम कलश पूजन -**
ब्रह्माजी का आवाहन करें-
ॐ ब्रह्माणं शिरसा नित्यमष्टनेत्रम् चतुर्मुखम्।गायत्री सहितं देवं ब्रह्माणं आवाहयाम्यहम्॥
अब ब्रह्माजी का पंचोपचार या षोडशोपचार के द्वारा पूजन करना चाहिए|
ॐ ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचोव्वेनऽआवः ।स बुध्न्याऽउपमाऽअस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥
2. द्वितीय कलश-

विष्णु भगवान का आवाहन करें- देवदेवं जगन्नाथं भक्तानुग्रहकारकम् । चतुर्भुजं रमानाथं लक्ष्मी सहितं देवं विष्णोमावाहयाम्यहम् ॥भगवान विष्णु जी का पंचोपचार,षोडशोपचार, तथा 32 प्रकार के उपचार से पूजन करें |

ॐ विष्णो रराटमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि ।वैष्णवमसि विष्णवेत्वा ॥

तृतीय कलश- **ॐ शिवं शंकरमीशानं द्वादशार्द्ध त्रिलोचनम्।उमा सहितं देवं शिवमावाहयाम्यहम् ॥**

3. शंकर का आवहन- ॐ नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥

चतुर्थ कलश - **इन्द्रदेव का आवाहन - ॐ ऐरावतगजारूढं सहस्त्राक्षं शचीपतिम् । वज्रहस्तं सुराधीशम् इन्द्राणी सहितं देवं इन्द्र मावाहयाम्यहम् ॥ॐ इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥**

मूल शांति नक्षत्र पूजन विधि - सभी -नक्षत्रों का सर्वप्रथम चौंकी का निर्माण करके मूल 27 नक्षत्र कीस्वर्ण प्रतिमा यजमान अपनी हथेली पर रखकर इस प्रकार रखें की मूर्ति दिखाई न दे। आचार्य के १६ आवृत्ति मंत्र पढ़ते तक मूर्ति को उसी प्रकार रखे। एस मंत्र को पढ़ते रहे |

ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं षं षं सं हं सः सोऽहं अस्या (अमुक)नक्षत्र मूर्तयः प्राणा इह प्राणाः ।

ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं षं षं सं हं सः सोऽहं अस्या (अमुक)नक्षत्र मूर्तयः जीव इह स्थितः ।

ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं षं षं सं हं सः सोऽहं अस्या (अमुक)नक्षत्र मूर्तयः सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनस्त्वक्चक्षुः श्रोत्राजिह्वाघ्राणपाणिपादपायूपस्थानि इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ।

ॐ मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञ समिमं दधातु ।
विश्वेदेवास इह मादयन्तामो३ प्रतिष्ठ ॥
एष वै प्रतिष्ठानाम यज्ञो यत्रौतेन यज्ञेन यजन्ते सर्व मे प्रतिष्ठितम्भवति ॥

उसके बाद फिर से यजमान को अक्षत पुष्प देखकर नक्षत्र की शांति के लिए नक्षत्रों का पूजन करना चाए।

2. अश्विनी नक्षत्र पूजन मंत्र- ॐ अश्विनी भैषज्येन तेजसे ब्रह्मावर्चसा या भिषिंचामि सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्या यान्नाद्याया भिषिंचामीन्द्रियस्येद्रियेण बलाय श्रियै यशसे भिषिंचामि नमः॥

3. अश्लेषा नक्षत्र पूजन मंत्र - ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो येके च पृथ्विमनु: ये अन्तरिक्षे ये दिवितेभ्य: सर्पेभ्यो नम:॥

4. मघा नक्षत्र पूजन मंत्र- ॐ पितृभ्य: स्वधायिभ्यः स्वधानम: पितामहेभ्य: स्वधायिभ्य: स्वधानम:प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानम: अक्षन्नपितरोमीमदन्त:
पितरोऽतितृप्यन्त पितर:शुन्धद्धाम् ॥

5. ज्येष्ठा नक्षत्र पूजन मंत्र- ॐ सजोषाइन्द्रसगणोमरुभ्दि: सोमावपिव वृत्रहाशुरविद्वान् जहि शत्रूँ रपसुधोनुहस्वाहा भयं कृणुहिविश्वतीनः॥

6. मूल नक्षत्र पूजन मंत्र- ॐ अपाधम किल्वि षमयकृत्या मनायोग्य: अपामार्ग वमपस्मदपयु: स्वप्न सुव॥

7. रेवती नक्षत्र पूजन मंत्र -ॐ पूषन्ततवव्रते वयन्नरिष्येम कदाचन स्तोतारस्त इह स्म |

नक्षत्रों का ध्यान-

1.अश्विनी नक्षत्र-ॐ अश्विनी तेजसाचक्षु: प्राणेन सरस्वती वीर्यम् वाचेन्द्रोबलेन्द्राय दधुरिन्द्रियम्।

ॐ अश्विनी कुमाराभ्यो नम: ।

2. अश्लेषा नक्षत्र - ॐ सर्पोरक्त स्त्रिनेत्रश्च फलकासिकरद्वय:।आश्लेषा देवता पितांबरधृग्वरदो स्तुमे ।

ॐ सर्पेभ्यो नम:।

3. मघा नक्षत्र -पितर: पिण्डहस्ताश्च कृशाधूम्रा पवित्रिण:।कुशलं द्धुरस्माकं मघा नक्षत्र देवता:।

ॐ पितृभ्यो नम:।

4. ज्येष्ठा नक्षत्र - ॐ त्राताभिंद्रमबितारमिंद्र गवं हवेसुहव गवं शूरमिंद्रम वहयामि शक्रं पुरुहूतभिंद्र गवं स्वास्ति नो मधवा धात्विन्द्र: ।

ॐ इन्द्राय नम: ।

5. मूल नक्षत्र- ॐ मातेवपुत्रम पृथिवी पुरीष्यमग्नि गवं स्वयोनावभारुषा तां विश्वेदैवऋतुभि: संविदान: प्रजापति विश्वकर्मा विमुञ्चत ।

ॐ निऋतये नम: ।

6. रेवती नक्षत्र- ॐ पूषा रेवत्यन्वेति पंथाम् पुष्टिपती पशुपा वाजबस्त्यौ इमानि हव्या प्रयता जुषाणा।

सुगैर्नो यानैरुपयातां यज्ञम् क्षुद्रान् पशून् रक्षतु रेवती न: गावो नो अश्वा ँ अन्वेतु पूषा अन्न ँ रक्षंतौ बहुदाविरूपम् वाज ँ सनुतां यजमानाय यज्ञम्।

ॐ पूषाये नम: ।

हवन विधान-सम्पूर्ण पूजन के बाद नक्षत्रों की शांति के लिए दशाश हवन करना चाहिए ।संपूर्ण सामग्री (जंवा,तील आदि) लेकर शाँकल्य बनावें,हवन कुंड में हल्दी-कुमकुम से

ॐ मुखं य: सर्व देवानां खाण्डवोद्यान दाहकम्।

पूजितं सर्व यज्ञेषु अग्निमावाहयाम्यहम्॥

ॐ अग्नये नम:॥

उसके बाद हवन कुंड में समिधा डालें और पंचोपचार से अग्नि देवता की पूजा करें उसके बाद यजमान दंपत्ति के हाथों में श्रुवा में घीं लेकर पहले निम्न मंत्रों से आहुति दे |

ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम ।

ॐ इन्द्राय स्वाहा, इदमिन्द्राय सूर्याय न मम ।|

ॐ अग्नये स्वाहा, इदमग्नये न मम ।उसके बाद सबसे पहले गणेश अंबिका और नवग्रह को घीं से आहुति दें **ॐ गणानां त्वा गणपति ग्वड हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे निधीनां त्वानिधिपतिं हवामहे वसो मम ।आहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम् स्वाहा ॥ॐ अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन ।ससस्त्यश्वक: सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् स्वाहा ॥ॐ सूर्याय नम: स्वाहा ॥ॐ चंद्राय नम: स्वाहा ॥ॐ**

मंगलाय नमः स्वाहा ॥ॐ बुधाय नमः स्वाहा ॥ॐ बृहस्पत्ये नमः स्वाहा ॥ॐ शुक्राय नमः स्वाहा ॥ॐ शनिश्चराय नमः स्वाहा ॥ ॐ राहवे नमः स्वाहा ॥ॐ केतवे नमः स्वाहा ॥ 108 बार इस मंत्र से जप करते हुवे आहुति डाले **(अमुक)नक्षत्रेभ्यो नमःस्वाहा॥** पुनः इसके बाद नक्षत्र सूक्त(नक्षत्रसूक्तम् पढ़े) मंत्र से या निम्न लघु मंत्रों की आहुति डालें-

ॐ अश्विनी नक्षत्रेभ्यो नमःस्वाहा॥ॐ भरणी नक्षत्रेभ्यो नमःस्वाहा॥ॐ कृत्तिका नक्षत्रेभ्यो नमःस्वाहा॥ॐ रोहणी नक्षत्रेभ्यो नमःस्वाहा॥ॐ मृगशिरा नक्षत्रेभ्यो नमःस्वाहा॥ॐ आर्द्रा नक्षत्रेभ्यो नमःस्वाहा॥ॐ पुनर्वसु नक्षत्रेभ्यो नमःस्वाहा॥ॐ पुष्य नक्षत्रेभ्यो नमःस्वाहा॥ॐ अश्लेषा नक्षत्रेभ्यो नमःस्वाहा॥ॐ मघा नक्षत्रेभ्यो नमःस्वाहा॥ॐ पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रेभ्यो नमःस्वाहा॥ॐ उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रेभ्यो नमःस्वाहा॥ॐ हस्त नक्षत्रेभ्यो नमःस्वाहा॥ॐ चित्रा नक्षत्रेभ्यो नमःस्वाहा॥ॐ स्वाती नक्षत्रेभ्यो नमःस्वाहा॥ॐ विशाखा नक्षत्रेभ्यो नमःस्वाहा॥ॐ अनुराधा नक्षत्रेभ्यो नमःस्वाहा॥ॐ ज्येष्ठा नक्षत्रेभ्यो नमःस्वाहा॥ॐ मुल नक्षत्रेभ्यो नमःस्वाहा॥ॐ पुर्वाषाढ़ा नक्षत्रेभ्यो नमःस्वाहा॥ॐ उत्तराषाढ़ा नक्षत्रेभ्यो नमःस्वाहा॥ॐ अभिजीत नमःस्वाहा॥ॐ श्रवण नक्षत्रेभ्यो नमःस्वाहा॥ॐ धनिष्ठा नक्षत्रेभ्यो नमःस्वाहा॥ॐ शतभिषा नक्षत्रेभ्यो नमःस्वाहा॥ॐ पूर्वभाद्रपद नक्षत्रेभ्यो नमःस्वाहा॥ॐ उत्तरभाद्रपद नक्षत्रेभ्यो नमःस्वाहा॥

3.ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्री मद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य ब्राह्मणोऽहि द्वितीयप्रहरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवश्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथम चरणे जम्बुद्वीपे भारतवर्षे आर्यावर्तैकदेशे (अमुक) प्रदेशे (अमुक) मासे (अमुक) पक्षे (अमुक) तिथौ (अमुक)(अपना नाम) नामनाहम् (अमुक) (अपना गोत्र) गोत्रस्य मम् नवजात शिशुः (अमुक) नक्षत्र गण्ड-मूल जनित दोषोपशांत्यर्थ पूजनं पूर्णाहुति कर्माहं करिष्ये।

यजमान अक्षत,जल लेकर यह मंत्र बोलते हुए पृथ्वी मे छोड़ दें)पूर्णाहुति-अब यजमान दंपत्ति को घीं, शाँकल्य व नारियलगिरी (नारियलगिरी को लाल कपड़ा या मौलिधागा मेंलपेटकर)निम्न मंत्रों से हवन कुंड मे आहुति दिलवाएँ-

ॐ पूर्णा दर्वि परापत सुपूर्णा पुनरापत। वस्नेव विक्रकीणावहाऽइषमूर्ज ँ शतक्रकतो नमः स्वाहा॥

आरती

4. पुष्पांजलि - ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।

ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥नानासुगन्धिपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च।

पुष्पाञ्जलिर्मया दत्तो गृहाण परमेश्वर ॥ॐ नक्षत्र मूर्तये नमः, पुष्पाञ्जलि समर्पयामि। (पुष्पाञ्जलि अर्पित करे।

5. प्रदक्षिणा- ॐ ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः। तेषा ँ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि।

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च। तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणया पदे पदे ॥

ॐ नक्षत्र मूर्तये नमः, प्रदक्षिणां समर्पयामि।

6.6 सारांश

प्रिय अध्येताओंआपने इस इकाई के अन्तर्गत जाना कि गंडमूल नक्षत्र क्या है , कौन-कौन से नक्षत्र हैं जो कि गंडमूल कहलाते हैं इन सबके विषय में हमने विस्तारपूर्वक पढ़ा।ज्योतिषशास्त्र के अनुसार जो नक्षत्र गंडमूल कहलाते हैं वे इस प्रकार हैं - अश्विनी, आश्लेषा, मघा, जेष्ठा, मूल और रेवती । ज्योतिषशास्त्र में इसका विविध फल है चरण वशात । ज्योतिषशास्त्र के अनुसार कुल 27 नक्षत्रों का वर्णन प्राप्त होता है। जिनमें से कुछ नक्षत्र को शुभ और कुछ को अशुभ माना जाता है। यह अशुभ नक्षत्र ही गण्डमूल नक्षत्र कहलाते हैं। ज्योतिष के अनुसार यह नक्षत्र अश्विनी, आश्लेषा, मघा, जेष्ठा, मूल और रेवती के नाम से जाने जाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि इन नक्षत्रों में जन्मा हुआ बालक माता-पिता, कुल और स्वयं अपने आप को नष्ट करने वाला होता है। यह पूरी तरह अशुभ ही होंगे यह कहना सही नहीं है, क्योंकि इन नक्षत्रों का जातक पर शुभ और अशुभ दोनों प्रभाव होता है। यह प्रभाव इन 6 नक्षत्रों में से किसी एक में चंद्रमा की स्थिति और नक्षत्र किस भाव में है, इसको देखकर निश्चित किया जाता है। ठीक 27 दिन के बाद यह नक्षत्र पुनः आता है। सभी नक्षत्रों में कुल चार चरण होते हैं, और उन्हीं चरणों के हिसाब से जन्म लेने वाले बच्चे पर प्रभाव की गणना होती है। यह गणना इस प्रकार होती है। अश्वनी नक्षत्र के पहले चरण में जन्मे बच्चे के पिता को कष्ट का भय होता है। दूसरे चरण में सुख और ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। तीसरे चरण में मंत्री पद जैसा उच्च स्थान मिलता है, और चौथे चरण में राज सम्मान मिलता है। आश्लेषा नक्षत्र के पहले चरण में शांति का शुभ आशीर्वाद मिलता है। दूसरे चरण में धन नाश होता है। तीसरे चरण में मातृ नाश होता है, और चौथे चरण में पितृ नाश होता है। मघा नक्षत्र के पहले चरण में माता को कष्ट मिलता है। दूसरे चरण में पिता को भय होता है। तीसरे चरण में सुख प्राप्ति होती है, और चौथे चरण में अनेक कष्ट मिलने की संभावना होती है। जेयष्ठा नक्षत्र के पहले चरण में बड़े भाई को कष्ट होता है। दूसरे चरण में छोटे भाई को कष्ट होता है। तीसरे चरण में माता का नाश होता है, और चौथे चरण में पिता का नाश होता है। मूल नक्षत्र में पहले चरण से पिता के नाश की संभावना होती है। दूसरे चरण में धन का नाश होता है। तीसरे चरण में माता का नाश होता है, और चौथे चरण से शांति और सुख मिलता है। रेवती नक्षत्र में प्रथम चरण राज सम्मान का सुख देता है। दूसरा चरण मंत्री पद की प्राप्ति कराता है। तीसरा चरण धन का सुख लाता है, और चौथा चरण अनेक प्रकार के कष्ट लाता है। इस प्रकार हर परिस्थिति में गण्डमूल नक्षत्र का अशुभकारी होना जरूरी नहीं है। गण्डमूल में जन्मे बच्चे का मुंह 27 दिन तक उसके पिता को नहीं देखना चाहिए। बल्कि प्रसूति स्नान के बाद शुभ बेला में ही पिता को बच्चे का चेहरा दिखाना उचित माना जाता है । उपरोक्त सभी विषयों का हमने इस इकाई में विस्तार पूर्वक अध्ययन किया ।

6.7 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर

1.**ग**

2. क एवं ख

3. घ

4. क

6.8 पारिभाषिक शब्द -

नित्य	-	हमेशा
पंच	-	पांच
संध्याकाल	-	सायं सूर्य अस्त से पहले का समय
अतिथि	-	जिसकी कोई आने की तिथि न हो कभी भी आ जाय
कराग्रे	-	हाथ के आगे वाले भाग मैं
संकल्प	-	प्रतिज्ञा
ताम्बूल	-	सुपारी
षोडश	-	सोलह

6.10 संदर्भित ग्रन्थ एवं सहायक पाठ्य सामग्री

1- नित्य कर्म पूजा प्रकाश - पं लाल विहारी मिश्र,
2- कर्मकांड प्रदीप
3- निर्णय सिन्धु
4- याग्यवल्क्य स्मृति मिताक्षरी टीका चौखम्बा प्रकाशन
5- श्रीमद भागवत पुराण
6- नित्यकर्म संध्या प्रकाश
7 - जातक पारिजात
8- मुहूर्तचितामणि
9- मुहूर्त पारिजात

6.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गंडमूल नक्षत्रों का परिचय विस्तार पूर्वक परिचय दीजिए।
2.मूल शान्ति विधि का सविस्तार उलेख कीजिए।
3.मूलों में जन्म लेनेवाले जातकों का शुभाशुभ फलों का उल्लेख कीजिए।
4.कर्मकाण्ड का परिचय देते हुए आज के प्रसंग में उपयोगिता सिद्ध कीजिए।

खण्ड- दो (Section-B)
वैदिक कर्मकाण्ड का स्वरूप

इकाई 1 कर्मकाण्ड का उद्भव एवं विकास

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 कर्मकाण्ड का उद्भव
1.4 कर्मकाण्ड की उपयोगिता
1.5 कर्मकाण्ड का वैज्ञानिक महत्त्व
1.6 कर्मकाण्ड का उचित प्रयोग
1.7 कर्मकाण्ड में श्रेष्ठ भावनाएँ
1.8 कर्मकाण्ड में देव पूजा का महत्व
1.9 सारांश
1.10 पारिभाषिक शब्दावली
1.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.12 संदर्भ ग्रंथ सूची
1.13 अन्य सहायक पुस्तकें
1.14 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों !

प्रस्तुत इकाई कर्मकाण्ड का उद्भव एवं विकास से संबंधित है । कर्मकाण्ड का मूल उद्भव वेद से हुआ है। यह ज्ञान समस्त आध्यात्मिक और लौकिक ज्ञान के स्रोत या आधार के रूप में है । **"वेदोखिलो धर्ममूलम्"** वेद धर्म, ज्ञान, उपासनादि का मूल है । इष्ट आराधना, उपासना, देवपूजनादि के साथ-साथ कर्मकाण्ड का अद्भुत वैज्ञानिक महत्व भी है जैसे कि सुसंस्कारी बनाने के लिए यज्ञीय वातावरण की समीपता बड़ी उपयोगी सिद्ध होती है । कुबुद्धि, कुविचार, दुर्गुण एवं दुष्कर्मों से विकृत मनोभूमि में यज्ञ से भारी सुधार होता है । इसलिए यज्ञ को पापनाशक कहा गया है । यज्ञीय प्रभाव से सुसंस्कृत हुई विवेकपूर्ण मनोभूमि का प्रतिफल जीवन के प्रत्येक क्षण को स्वर्ग के आनन्द से भर देता है । कार्मकाण्ड में वेद मंत्रोच्चारण से भी एक विशिष्ट प्रकार की ध्वनि तरंगों का संचार सम्पूर्ण वातावरण में होता है। और उन का भारी प्रभाव विश्वव्यापी प्रकृति पर सूक्ष्म जगत पर तथा प्राणियों के स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरों पर पड़ता है । यज्ञों के माध्यम से शक्तिशाली तत्व वायुमण्डल में फैलाये जाते हैं, उनसे हवा में घूमते असंख्य रोग कीटाणु सहज ही नष्ट होते हैं । इस प्रकार आप कर्मकाण्ड से सम्बन्धित विविध विषयों का प्रस्तुत इकाई में अध्ययन करेंगे ।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप–

- कर्मकाण्ड का उद्भव कैसे हुआ यह जान सकेंगे ।
- कर्मकाण्ड की उपयोगिता के विषय में जान सकेंगे ।
- कर्मकाण्ड का वैज्ञानिक महत्व को जान सकेंगे ।
- कर्मकाण्ड का उचित प्रयोग के विषय में जान सकेंगे ।
- कर्मकाण्ड की श्रेष्ठ भावनाएँ को जान सकेंगे।
- कर्मकाण्ड में देव पूजा का महत्व से अवगत हो सकेंगे।

1.3 कर्मकाण्ड का उद्भव

भारतीय यज्ञ-संस्कार आदि कर्मकाण्ड ऋषि-मानीषियों द्वारा लंबी शोध एवं प्रयोग-परीक्षण द्वारा विकसित असामान्य क्रिया-कृत्य है । कर्मकाण्ड का मूल उद्भव वेद से हुआ है । 'ज्ञानार्थक 'विद्' धातु से निष्पन्न 'वेद' शब्द का अर्थ 'ज्ञान' ही है । यह ज्ञान समस्त आध्यात्मिक और लौकिक ज्ञान के स्रोत या आधार के रूप में है ।**"वेदोखिलो धर्ममूलम्"** वेद धर्म, ज्ञान, उपासनादि का मूल है ।कर्मकाण्ड ही नहीं अपितु समस्त भारतीय विद्याओं का मूल वेद है । **"विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते वा धर्मादिपुरुषार्था एभिरिति वेदा:"**भारतीय संस्कृत एवं संस्कृति का मूल आधार वेद ही है । विद्वानों ने वेद को विश्व का सर्वप्राचीनतम ग्रंथ माना है । इस आधार पर विश्व का ज्ञान-विज्ञान की आधार शिला वेद ही है ।वेद इष्ट –प्राप्ति और अनिष्ट – निवारण के लिए अलौकिक उपाय का निरूपण करने वाला ग्रंथ है । **"इष्टप्राप्तयनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेद:"** यह अर्थ कर्मकाण्ड की दृष्टि से ही किया गया है । कर्मकाण्ड का सम्बन्ध मानव समाज के सभी प्रकार के

आध्यात्मिक कर्मों से है, देव, पितृ पूजनादि धार्मिक क्रियाओं को कर्मकाण्ड कहते हैं। कर्मकाण्ड के दो प्रकार है। पहला इष्ट, दूसरा पूर्त है। यज्ञादि अदृष्ट कर्मों को इष्ट कहते हैं। और लौकिक हितकारी फलप्राप्ति कर्मों को पूर्त कहते हैं। वैदिक धर्म को तीन काण्डों में विभक्त किया गया है। ज्ञानकाण्ड , उपासनाकाण्ड एवं कर्मकाण्ड इन तीन काण्डों का एकत्व शान वेद है। वेद में सबसे अधिक मंत्र कर्मकाण्ड के हैं। यज्ञादि विविध अनुष्ठानों का वर्णन कर्मकाण्ड में प्राप्त होता है। महर्षि जैमनी द्वारा रचित पूर्वमीमांसा शास्त्र कार्मकाण्ड का प्रतिपादन करता है। ज्ञानकाण्ड का प्रतिपादन उत्तरमीमांसा करता है। उत्तरमीमांसा को वेदान्त भी कहते हैं। भारतीय संस्कृति, परम्परायें, अनुष्ठान, पर्वादि जितने भी महान आयोजन है, यह समग्र भारत वर्ष को ही नहीं अपितु समस्त विश्व को एक सूत्र में बांधने का कार्य करते हैं। **"वसुधैव कुदुम्बकम्"**की भावना समाज में विकसित करते हैं। और षोडश संस्कारों के माध्यम से जीव को सुसंस्कृत किया जाता है और उसे योग्य बनाया जाता है। कहा जाता है कि –**"संस्कारोनाम स भवति यस्मिन् जाते पदार्थो भवति योग्यः कश्चिदर्थस्य।"** संस्कार वह हैं जिनके होने से कोई पदार्थ या व्यक्ति किसी कार्य के लिये योग्य हो जाता है। यह सभी मानव के अति आवश्यक कर्म कर्मकाण्ड के मंत्रों एवं पुरोहित्य के माध्यम से समपन्न करवाये जाते हैं। देखा जाये तो मानव के जन्म होने से पूर्व एवं मृत्यु के पश्चात तक कर्मकाण्ड की उपयोगिता अनिवार्य रूप से होती है। भारतीय संस्कृति कर्म सिद्धांतों पर आधारित है। भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति है। इसके अंतर्गत व्रत,त्यौहार, उत्सव अनुष्ठान आदि का विशेष महत्व है। भारतीय संस्कृति भारत की प्रतिष्ठा है। **"भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा"** इस वाक्य से यह विदित होता है कि हमारे भारत की प्रतिष्ठा संस्कृत और संस्कृति इन्ही दोनों में निहित है और संस्कृत-संस्कृति का ही मूल है। भारतीय परम्पराओं, संस्कारों, यागादि अनुष्ठानों में सर्व प्रथम पंचांग पूजन का विधान है। मुख्य पाँच देवों को पंचदेव कहा जाता है, जो कि इस प्रकार से हैं –

आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं च केशवम्।
पञ्चदैववत्यमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत्।। (मत्स्यपुराण)

सूर्य, गणेश, दुर्गा, शिव, विष्णु ये पंचदेव कहे गये हैं। इनकी पूजा अर्चना सभी धार्मिक कार्यों में करनी चाहिये।

गणेश- सभी धार्मिक कार्य निर्विघन्ता पूर्वक सम्पन्न हों, इसलिए सर्वप्रथम गणेश वंदना की जाती है।

सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः।
लम्बोदरश्च विकटो विघन्नाशो विनायकः।।
धुम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छुणुयादपि।।
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा।
सङ्ग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते।।
शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्व विघ्नोपशान्तये।।
अभीप्सितार्थ सिद्ध्यर्थ पूजितो यः सुरासुरैः।
सर्वविघ्नहरस्तस्मै श्री गणाधिपतये नमः।।
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।

शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तुते ।।

विष्णु-

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् ।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभ्यहरं सर्वलोकैकनाथम् ।।

जिनकी आकृति अतिशय शान्त है, जो शेषनागकी शय्यापर शयन किये हुए हैं, जिनकी नाभिमें कमल है, जो देवताओंके भी ईश्वर और सम्पूर्ण जगत्के आधार हैं, जो आकाशके सदृश सर्वत्र व्याप्त हैं, नील मेघके समान जिनका वर्ण है, अतिशय सुन्दर जिनके सम्पूर्ण अङ्ग हैं, जो योगियोंद्वारा ध्यान करके प्राप्त किये जाते हैं, जो सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी हैं, जो जन्म-मरणरूप भयका नाश करनेवाले हैं, ऐसे लक्ष्मीपति, कमलनेत्र भगवान् श्रीविष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ।

शिव-

ध्यायेनित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नकल्पोज्वलान्गम् परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् ।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृतिं वसानं
विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ।।

चाँदी के पर्वत के समान जिनकी श्वेत कान्ति है, जो सुंदर चंद्रमा को आभूषण रूपसे धारण करते हैं, रत्नमय अलंकारों से जिनका शरीर उज्ज्वल है, जिनके हाथों में परशु, मृग, वर और अभय मुद्रा है, जो प्रसन्न हैं, पद्यम् के आसन पर विराजमान हैं, देवतागण जिनके चारों ओर खड़े होकर स्तुति करते हैं, जो बाघ की खाल पहनते हैं, जो विश्व के आदि जगत की उत्पत्ति बीज और समस्त भयों को हरने वाले हैं। जिनके पाँच मुख और तीन नेत्र हैं, उन महेश्वर का प्रतिदिन ध्यान करें।

सूर्य –

रक्ताम्बुजासनमशेषगुणैकसिन्धुं
भानुं समस्तजगतामधिपं भजामि ।
पद्यद्वायाभयवरान्दधतं कराब्जै-
र्माणिक्यमौलिमरुणाङ्गरुचिं त्रिनेत्रम् ।।

लाल कमल के आसन पर समासीन, सम्पूर्ण गुणों के रत्नाकर, अपने दोनों हाथों में कमल और अभयमुद्रा धारण किये हुए, पद्यराग तथा मुक्ता फल के समान सुशोभित शरीर वाले, अखिल जगत के स्वामी, तीन नेत्रों से युक्त भगवान् सूर्या का मैं ध्यान करता हूँ।

दुर्गा –

सिंहस्था शशिशेखरा मरकतप्रख्यैश्चतुर्भिर्भुजैः
शङ्खं चक्रधनुः शरांश्च दधती नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता ।
आमुक्ताङ्गदहारकङ्कणरणत्काञ्चीरणन्नूपुरा
दुर्गा दुर्गतिहारिणी भवतु नो रत्नोल्लसत्कुण्डला ।।

जो सिंह की पीठ पर विराजमान है, जिनके मस्तक पर चंद्रमा का मुकुट है, जो मरकत मणि के समान कान्तिवाली अपनी चार भुजाओं में शंख, चक्र, धनुष, और बाण धारण करती हैं, तीन नेत्रों से सुशोभित होती है, जिनके भिन्न-भिन्न अंग बांधे हुए बाजूबंद, हार, कंकण, खनखनाती

हुई करधनी और रूनझुन करते हुए नुपुरों से विभूषित हैं तथा जिनके कानों में रत्न जटित कुण्डल झिलमिलाते रहते हैं, वे भगवती दुर्गा हमारी दुर्गति दूर करने वाली हों।

1.4 कर्मकाण्ड की उपयोगिता

भारतीय कर्मकाण्ड में ऋषि-मुनियों की योजना के अनुरूप प्रभाव पैदाकर पाना तभी संभव होगा, जब उसे मात्र कौशल ही न मानकर साधना माना जाए।रोचक स्वर में मंत्र बोलना, सरल व्याख्याएं, सुरम्य वातावरण आदि बनाने का कौशल भी विकसित किया जाना चाहिए। और उन सबमें प्राण संचारण के लिए स्वयं के भीतर तदनुरूप भाव-संचार, आस्था विकास एवं निष्ठा के निर्वाह की क्षमता विकसित करने की साधना भी चलती रहनी चाहिये। कर्मकाण्ड प्रारम्भ करने के पूर्व वातावरण शान्त करके सबका ध्यान उसी ओर खींच लेना चाहिए। कर्मकाण्ड के कृत्य भले ही कुछ व्यक्ति करते हों, परंतु सभी उपस्थित व्यक्तियों के विचारों और सद्भावनाओं के एकीकरण संयोग से ही उसमें शक्ति आती है। यह मर्म ठीक-ठीक समझकर ही कार्यारंभ करना चाहिये। कर्मकाण्ड की शक्ति, मंत्र प्रयोग की सजीवता, विचारों की दिशा, श्रद्धा भावना के उभार तथा क्रियाओं के सुसंयोग से उभरती है। इसलिए मंत्रोच्चार भर करते रहना ही पर्याप्त नहीं है। कार्य को सही ढंग से कराने के निर्देश , संकेत, विचारपरक व्याख्या, आदि का संतुलित प्रयोग करने की क्षमता विकसित करनी चाहिये। मंत्रोच्चार प्राणवान् तब बनते हैं, जब उच्चारण के साथ मनोयोग भी जुड़े, इसके लिए मंत्र कंठस्थ न भी हों, तो कम से कम इतना हो की मंत्र पढ़ने में ही सारा ध्यान न चला जाए। इतना होने पर ही भावनाओं पर बल दिया जाना सम्भव है। विचारपरक व्याख्या न तो इतनी अधिक हो कि कर्मकाण्ड नैतिक शिक्षा की कक्षा लगने लगे और न इतनी कम रहे कि प्रेरणाओं का प्रवाह ही न उमड़े। जिन व्यक्तियों के बीच कर्मकाण्ड चल रहा है, उनके बौद्धिक एवं भावनात्मक स्तर के अनुरूप व्याख्याएं एवं टिप्पणियाँ कराने की कुशलता अर्जित करनी चाहिए। कर्मकाण्ड में हीनता या अभाव का संस्कार नहीं उभरने देना चाहिए। कर्मकाण्ड के जो अंश कम करने हों, उन्हें इस कुशलता से हटाया जाए कि न तो प्रवाह टूटे और न अभाव का अनुभव हो। मंत्रोच्चार एवं व्याख्याओं के साथ पूजन आदि क्रियाओं की संगति बिठानी चाहिए। मंत्रों में इनती जल्दी न की जाए कि क्रिया ठीक से करने में कठिनाई हो, स्वयं सेवकों द्वारा पुष्प देने, भस्म देने जैसे कार्यों के समय सरस व्याख्याओं का ऐसा संतुलित क्रम चलाया जाए कि वह कार्य पूरा होते-होते व्याख्या भी पूरी हो जाए। न तो लोगों को व्याख्या के कारण अकारण रुका रहना पड़े और न खालीपन के कारण इधर-उधर की बातें करने का अवसर मिले।

1.5 कर्मकाण्ड का वैज्ञानिक महत्व

वैदिक मंत्रों में अनेक आध्यात्मिक शक्तियां निहित हैं। जैसा कि स्वर विन्यास से युक्त शब्दों की रचना करने से अनेक राग- रागनियाँ ध्वनित होती हैं और उनका प्रभाव सुनने वालों पर विभिन्न प्रकार का होता है, ठीक उसी प्रकार वेद मंत्रोच्चारण से भी एक विशिष्ट प्रकार की ध्वनि तरंगों का संचार सम्पूर्ण वातावरण में होता है। और उन का भारी प्रभाव विश्वव्यापी प्रकृति पर, सूक्ष्म जगत पर तथा प्राणियों के स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरों पर पड़ता है। यज्ञों के माध्यम से शक्तिशाली तत्व वायुमण्डल में फैलाये जाते हैं, उनसे हवा में घूमते असंख्य रोग कीटाणुसहज ही नष्ट होते हैं। डी०डी०टी० फ़िनायल आदि छिड़कने, बीमारियों से बचाव करने वाली दवायें या सुइयाँ लेने से भी कहीं अधिक कारगर उपाय यज्ञ करना है। साधारण रोगों एवं महामारियों से

बचने का यज्ञ एक सामूहिक उपाय है। दवाओं में सीमित स्थान एवं सीमित व्यक्तियों को ही बीमारियों से बचाने की शक्ति है, पर यज्ञ की वायु सर्वत्र ही पहुँचती है और प्रयास न करने वाले प्राणियों की भी सुरक्षा हो जाती है। यज्ञ की ऊष्मा मनुष्य के अन्तः करण पर देवत्व की छाप डालती है। जिस स्थान पर यज्ञ होतें हैं, वह भूमि एवं प्रदेश सुसंस्कारों की छाप अपने भीतर धारण कर लेता है और वहाँ जाने वालों पर दीर्घकाल तक प्रभाव पड़ता है। प्राचीन काल में तीर्थ वहाँ ही बने हैं, जहाँ बड़े-बड़े यज्ञ हुआ करते थे। जिन घरों में जिन स्थानों में यज्ञ होते हैं, वह भी एक प्रकार का तीर्थ बन जाता है और वहाँ जो आता है उसकी मनोभूमि उच्च, सुविकसित एवं सुसंस्कृत बनती है। महिलायें , छोटे बालक एवं गर्भस्थ बालक विशेष रूप से यज्ञ शक्ति से अनुप्राणित होते हैं। उन्हें सुसंस्कारी बनाने के लिए यज्ञीय वातावरण की समीपता बड़ी उपयोगी सिद्ध होती है।

कुबुद्धि, कुविचार, दुर्गुण एवं दुष्कर्मों से विकृत मनोभूमि में यज्ञ से भारी सुधार होता है। इसलिए यज्ञ को पापनाशक कहा गया है। यज्ञीय प्रभाव से सुसंस्कृत हुई विवेकपूर्ण मनोभूमि का प्रतिफल जीवन के प्रत्येक क्षण को स्वर्ग के आनन्द से भर देता है। इसलिए यज्ञ को स्वर्ग प्राप्त कराने वाला साधन माना गया है। यज्ञ से आत्मा में ब्राह्मण तत्व, ऋषि तत्व, की वृद्धि होती है और आत्मा को परमात्मा से मिलाने का लक्ष्य सुगम हो जाता है। यज्ञ इतने प्रभावशाली होते हैं कि उनके द्वारा मानसिक दोषों-दुर्गुणों का निष्कासन एवं सद्भावों का अभिवर्धन नितान्त सम्भव है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद्, मत्सर, ईर्ष्या, द्वेष कायरता, कामुकता, आलस्य, आवेश, संशय आदि मानसिक उद्वेगों की चिकित्सा के लिए यज्ञ एक विश्वस्त पद्धति है। शरीर के असाध्य रोगों तक का निवारण यज्ञ से हो साकता है। आग्निहोत्र के अनेक भौतिक लाभ हैं। वायु को हम मल, मूत्र, श्वास तथा कल-कारखानों के धुआँ आदि से गन्दा करते हैं। गंदी वायु रोगों का कारण बनती है। वायु को हम जितना गंदा करते हैं, उतना ही उसे स्वच्छ एवं शुद्ध करना हमारा परम कर्तव्य है। यज्ञों के द्वारा निकले धूम (धुआँ) से वायु शुद्ध हो जाती है। यज्ञ के धूम्र से आकाश में बादलों में जाकर खाद बनकर मिल जाती है। वर्षा के जल के रूप में जब वह जल पृथिवी पर आता है, तो उससे परिपुष्ट अन्न, घास तथा वनसपत्तियाँ उत्तपन्न होती हैं, जिनके सेवन से मनुष्य तथा पशु-पक्षी सभी परिपुष्ट होते हैं। यज्ञाग्नि के माध्यम से शक्तिशाली बने मंत्रोच्चार के ध्वनि कम्पन, सुदूर क्षेत्र में बिखरकर लोगों का मानसिक परिष्कार करते हैं, फलस्वरूप शरीरों की तरह मानसिक स्वास्थ्य भी बढ़ता है। कामनाओं की पूर्ति के लिए अनेक यज्ञ विधानों के साथ अनेक विशिष्ट यज्ञ भी किये जा सकते हैं। राजा दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ करके चार उत्कृष्ट संतानें प्राप्त की थी। अग्निपुराण में तथा उपनिषदों में वर्णित पंचाग्नि विद्या में ये रहस्य बहुत विस्तार से बताए गये हैं। विश्वमित्र आदि ऋषि असुरों से रक्षा हेतु यज्ञ किया करते थे। लंका विजय के पश्चात भगवान श्रीराम ने भी दस अश्वमेध यज्ञ किये थे। महाभारत युद्ध के पश्चात भगवान श्रीकृष्ण ने पांडवों से एक महायज्ञ करवाया था। पांडवों का उद्देश्य युद्धजन्य विक्षोभ से क्षुब्ध वातावरण की असुरता का समाधान करना ही था। जब कभी आकाश के वातावरण में असुरता की मात्रा बढ़ जाती है तो उसका उपचार यज्ञ से बढ़कर और कुछ हो नहीं सकता। यज्ञीय प्रक्रिया के माध्यम से ही सम्पूर्ण वातावरण को शुद्ध किया जा सकता है।

पवित्रीकरणम्—

देव उद्देश्य के लिए मनुष्य को स्वयं भी देवत्व धारण करना होता है। देव पवित्रता प्रिय हैं। देवों को शरीर और मन से, आचरण और व्यवहार से शुद्ध मनुष्य ही प्रिय होते हैं। यही करण

है कि यज्ञ जैसे देव कार्यों में संलग्न होते समय शरीर और मन को पवित्र बनाना पड़ता है। पवित्रता की भावना रखनी पड़ती है। मन में यह भावना करें की हमारे भाव भरे आवाहन से सूक्ष्म सत्ता हम पर पवित्रता की वर्षा कर रही है और हम उसे धारण कर रहे हैं।

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा, सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं, स बाह्यभ्यन्तरः शुचिः ।।
ॐ पुनातु पुण्डरीकाक्षः, पुनातु पुण्डरीकाक्षः, पुनातु।

आचमनम्-

मनुष्य की मन, वाणी और अन्तः करण की शुद्धि के लिए तीन बार आचमन किया जाता है, मंत्रपूरित जल से तीनों को भाव स्नान कराया जाता है। आयोजन के अवसर पर तथा भविष्य में तीनों को अधिकाधिक समर्थ, प्रामाणिक बनाने का संकल्प किया जाता है। प्रत्येक मंत्र के साथ एक आचमन की जाती है।

ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा।
ॐ अमृतापिधानमसि स्वाहा।
ॐ सत्यं यशः श्रीर्मयि, श्रीः श्रयतां स्वाहा।

शिखावन्दनम्-

भारतीय धर्म की ध्वजा शिखा है, शिखा मस्तकरूपी किले के ऊपर भारतीय संस्कृति प्रेमी की निष्ठा और आस्था का प्रतीक है ।शिखा को गायत्री का प्रतीक भी माना गया है। मस्तिष्क सदविचारोंका केंद्र है। इसमें देव भाव ही प्रवेश करें ऐसा प्रयास करना चाहिये।

ॐ चिद्रूपिणि महामाये, दिव्यतेजः समन्विते।
तिष्ठ देवि शिखामध्ये, तेजोवृद्धिं कुरुष्व मे ।।

प्रणायाम्—

प्राणायाम की बड़ी महिमा कही गयी है। इससे पाप-ताप तो जल ही जाते हैं, शारीरिक उन्नति भी अद्भुत ढंग से होती है। दीर्घ आयु भी इससे मिल सकती है। सुंदरता और स्वास्थ्य के लिये तो यह मानो वरदान ही है। जब हम साँस लेते हैं, तब इसमें मिले हुए आक्सीजन से फेफड़ों में पहुँचा हुआ अशुद्ध काला रक्त शुद्ध होकर लाल बन जाता है। इस शुद्ध रक्त का हृदय पंपिंग – क्रिया द्वारा शरीर में संचार कर देता है। यह रक्त शरीर के सब घटकों खुराक बाँटता-बाँटता स्वयं काला पड़ जाता है। तब हृदय इस उपकारी तत्व को फिर से शुद्ध होने के लिये फेफड़ों में भेजता है। वहाँ साँस में मिले प्राणवायु (आक्सीजन) के द्वारा यह फिर सशक्त हो जाता है और फिर सारे घटकों को खुराक बाँटकर शरीर की जीवनी शक्ति को बनाये रखता है। यही कारण है कि साँस के बिना पाँच मिनट जीना कठिन हो जाता है।

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम्।
ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ आपोज्योति रसोऽमृतं, ब्रह्म भूर्भुवःस्वः ॐ ।

1.6 कर्मकाण्ड का उचित प्रयोग

भारत देश ऋद्धि-मनीषयों की पवित्र भूमि रही है। कर्मकाण्ड भारतीय ऋषि मनीषियों द्वारा लंबी शोध एवं प्रयोग परीक्षण द्वारा विकसित असामान्य क्रिया-कृत्य है। कर्मकाण्ड के द्वारा महत् चेतना एवं मानवीय पुरुषार्थ की योग साधना को दृश्य-श्रव्य का दिव्य स्वरूप दिया गया है

। स्थूल क्रिया- कलापों के द्वारा अंतरंग की सूक्ष्म शक्तियों को जाग्रत एवं व्यवस्थित किया जाता है। औषधि निर्माण क्रम में अनेक प्रकार के उपचार करके सामान्य वस्तुओं में औषधि गुण पैदा कर दिये जाते हैं। मानवीय अन्तः करण में सत्प्रवृतियों, सद्भावनाओं, सुसंस्कारों के जागरण, आरोपण, विकास व्यवस्था आदि से लेकर महत चेतना के वर्चस्व बोध कराने, उनसे जुडने, उनके अनुदान ग्रहण करने तक के महत्वपूर्ण क्रम में कर्मकाण्डों की अपनी सुनिश्चित उपयोगिता है। अतः कर्मकाण्ड की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये और न ही चिन्ह पूजा के रूप में करके सस्ते पुण्य आर्जित करने चाहिये। कर्मकाण्ड के क्रिया-कृत्यों को ही सब कुछ मान बैठना या उन्हें एकदम निरर्थक मान लेना, दोनों ही हानिकारक हैं। उनकी सीमा को भी समझना चाहिये और महत्व को भी नहीं भूलना चाहिये। संक्षिप्त करें पर श्रद्धासिक्त मनोभूमि के साथ ही करें , तभी वह प्रभावशाली होगा एवं उद्देश्य की पूर्ति होगी। यज्ञादि कर्मकाण्ड के माध्यम से देव आवाहन, मंत्र प्रयोग, संकल्प एवं सद्भावनाओं की सामूहिक शक्ति से एक ऐसी ऊर्जा पैदा की जाती है, जिसमे मनुष्य की अन्त: प्रवृत्तियों तक को गलाकर इच्छित स्वरूप में ढालने की स्थिति में लाया जा सकता है। गलाई के साथ ढलाई के लिए उपयुक्त प्रेरणाओं का संचार भी किया जा सके, तो भाग लेने वालों में वांछित, हितकारी परिवर्तन बड़ी मात्रा में लाये जा सकते हैं। कर्मकाण्ड विद्या का सही दिशा में प्रयोग करने से युग निर्माण अभियान के अंतर्गत सम्पन्न होने वाले यज्ञों में गुण, कर्म, स्वभाव परिवर्तन के संकल्पों के रूप में बड़ी संख्या में जन-जन द्वारा देव दक्षिनाएँ अर्पित की जाती हैं। इंद्रियाँ अपने-अपने विषयों की ओर आकर्षित होती हैं, मन सुख की कल्पना में डूबना चाहता है, बुद्धि विचारों से प्रभावित होती है, लेकिन चित ऑउए अन्तः करण में जहाँ स्वभाव और आकांक्षाएँ उगती रहती हैं, उसे प्रभावित करने में ऊपर के सारे उपचार अपर्याप्त सिद्ध होते हैं। यज्ञ संस्कार आदि ऐसे सूक्ष्म विज्ञान के प्रयोग हैं, जिनके माध्यम से मानव के व्यक्तित्व का कायाकल्प कर सकने वाली उस गहराई को भी प्रभावित, परिवर्तित किया जा सकता है। जो लोग युग निर्माण अभियान तथा उसके सूत्र संचालकों के व्यापक प्रयोग परीक्षण से परिचित हैं, उन्होंने लाखों व्यक्तियों के जीवन में इस विद्या को फलित होते देखा है।

ऐसे अति महत्वपूर्ण कार्य को पूरी निष्ठा और पूरी जागरूकता से किया जाना चाहिये। उनमे मर्म समझने एवं उन्हें क्रियान्वित कर सकने की कुशलता तथा प्रवृति विकसित करने का प्रयास मनोयोगपूर्वक बराबर करते रहना चाहिये।

1.7 कर्मकाण्ड में श्रेष्ठ भावनाएँ

कर्मकाण्ड के दिव्य प्रभाव से श्रेष्ठ भावनाएँ विकसित होती हैं। श्रेष्ठ विचार उत्पन्न होते हैं। उस समय उन्हें समुचित दिशा-प्रेरणा देने से उनका लाभ सम्मिलित होने वालों को मिल जाता है। जब समुद्र में ज्वार आता है, तो जहाज उथले क्षेत्र पार करते हैं, रत्न गहराइयों से उथले क्षेत्र में आ जाते हैं। मानवी अन्तः करण में भी ऐसे ज्वार आने पर श्रेष्ठ संकल्पों में बाधक प्रवृतियों को पार करना तथा अंदर के सुसंस्कारों का ऊपर आना सम्भव है। यह प्रयास करने पर ही कार्मकाण्ड से उत्पन्न ऊर्जा का लाभ जन-जीवन को मिल सकता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयास कुछ इस प्रकार से हैं कि यज्ञ, संस्कार आदि कर्मकाण्ड सम्पन्न होने के पश्चात उत्तरदायित्व का यश नहीं लेना चाहिये। अपितु यह माना जाना चाहिये कि यह कर्मकाण्ड नहीं, अपितु प्रेरणाकाण्ड पूर्ण हुआ है, पश्चात इसके अनुरूप कर्म करने की व्यवस्था बनाकर सही अर्थों में कर्मकाण्ड-कर्म का प्रारम्भ करना चाहिये। उमंग एवं सामर्थ्य के अनुरूप सुगम, एवं

सुनिश्चित कार्यक्रमों से हर व्यक्ति को संकल्प पूर्वक जोड़ देने का प्रयास किया जाना चाहिये। यही उचित देव दक्षिणा का स्वरूप है। इस कार्य को किस प्रकार कुशलता एवं सरलता से पूर्ण किया जाए यह कर्मकाण्ड संचालक की सही कसौटी मानी जा सकती है। कर्मकाण्ड में उद्देश्य की पूर्ति के लिए समूह बनाकर, व्यवस्था बनाकर भी जुटा जा सकता है। लोगों के संकल्प ढीले पड़ने लगते हैं, परिस्थितियों के दबाव से व्यक्ति लड़खड़ाने लगते हैं। ऐसे में उन्हें तब तक सहारा देने की व्यवस्था बनायी जानी चाहिये, जब तक वे स्वयं संकल्पित न हों। कर्मकाण्ड का कार्य आत्मीयता तथा प्रखर कर्त्तव्य बुद्धि के संयोग से ही किया जा सकता है। इसीलिये इन दोनों का समुचित विकास निरंतर करते रहना चाहिये।

1.8 कर्मकाण्ड में देव पूजा का महत्व

भारतीय संस्कृति में देव पूजा का अत्याधिक महत्व है। हिन्दू पूजा पद्धति की उपयोगिता और सरलता सबसे भिन्न है। हिन्दू पूजा पद्धति में वैज्ञानिक मूलभूत सिद्धांत दिखाई पड़ते है।श्रीभगवान से निस्वार्थ प्रेम करना ही पूजा है। देव पूजा के माध्यम से जो प्रकृति ने हमे प्रदान किया है। हम उसे पुनः श्रीभगवान को अर्पित करते हैं। पूजा का धार्मिक व्यक्ति के जीवन में बहुत अधिक महत्व होता है। देव प्राप्ति के लिए जो भी साधन वैदिक कर्मकाण्ड में बताए गये हैं, उन्हें पूजा विधि कहा जाता है। धर्म क्षेत्र के साथ-साथ कर्म क्षेत्र में भी पूजा का अपना विशेष महत्व है। यही करण है कि लोग अपने कार्य को भी पूजा मानते हैं। पूजा की विधियाँ अनेक प्रकार की हैं। जैसे तन्मयता के साथ अपने आराध्य के लिए भजन – कीर्तन करना, वैदिक मंत्रोच्चारण द्वारा हवन इत्यादि, देवी-देवताओं की उपासना, व्रत, त्यौहार, पर्व आदि। अपने इष्ट – देवता को मनाने के लिए अलग-अलग ढंग से मानव पूजा कर्म किया करता है। भारतीय सनातन धर्म में पूजा का इतना अधिक महत्व है कि लोगों के घर-घर में श्रीभगवान की पूजा अर्चना की जाती है। पूजा पाठ के द्वारा मानव के जीवन में सकारात्मक ऊर्जा की वृद्धि होती है और नकारात्मक ऊर्जा दूर होती है। प्रातः काल उठने के बाद स्नान से पूर्व जो आवश्यक कृत्य हैं शास्त्रों में उनके लिए भी सुनियोजित विधि-विधान बताया गया है।

ब्राह्म-मुहूर्त में जागरण –

सूर्योदय से चार घड़ी (लगभग डेढ़ घंटे) पूर्व ब्राह्ममुहूर्त में ही जाग जाना चाहिये। इस समय सोना शास्त्रों में निषिद्ध माना गया है।

प्रातः काल आँखे खुलते ही करावलोकन करना चाहिये –

कराग्रे वसते लक्ष्मी: करमध्ये सरस्वती।
करमूले स्थितो ब्रह्मा प्रभाते करदर्शनम्॥

हाथ के अग्रभाग में लक्ष्मी, हाथ के मध्य में सरस्वती और हाथ के मूलभाग में ब्राह्मा जी निवास करते हैं, अतः प्रातः काल दोनों हाथों का अवलोकन करना चाहिये।

भूमि –वन्दना –

श्याय से उठकर पृथ्वी पर पैर रखने से पूर्व पृथ्वी माता का अभिवादन करना चाहिये और पैर रखने की विवशता के लिए उनसे क्षमा मांगते हुए प्रार्थना करनी चाहिये।

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डिते।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

समुद्ररूपी वस्त्रों को धारण कराने वाली, पर्वत रूप स्तनों से मंडित भगवान विष्णु की पत्नी हे भू देवी ! आप मेरे पाद-स्पर्श को क्षमा करें।

मंगल दर्शन –पश्चात गोरोचन, चंदन, सुवर्ण, शंख, मृदंग, दर्पण, मणि, आदि मांगलिक वस्तुओं का दर्शन करना चाहिये तथा गुरु , अग्नि ,और सूर्य को नमस्कार करना चाहिये ।माता,पिता, गुरु, एवं ईश्वर का अभिवादन करें।

गणेश वंदना-

प्रातः स्मरामि गणनाथमनाथबन्धु
सिन्दूरपूरपरिशोभितगण्डयुग्मम् ।
उद्दण्डविघ्नपरिखण्डनचण्डदण्ड-
माखण्डलादिसुरनायकवृन्दवन्द्यम् ।।

अनाथों के बन्धु, सिंदूर से शोभायमान दोनों गण्डस्थलवाले, प्रबल विघ्न का नाश करने में समर्थ एवं इन्द्र आदि देवों से नमस्कृत श्रीगणेश का मैं प्रातः काल स्मरण करता हूँ।

गुरु वन्दना-

गुरु व्यक्ति तक सीमित नहीं, वह एक दिव्य चेतन प्रवाह ईश्वर का ही एक अंश होता है। चेतना का एक अंश जो अनुशासन व्यवस्था बनाता है तथा उसका फल देता है वह ईश्वर है, दूसरा अंश जो अनुशासन मर्यादा सिखाता है, उसमें गति पैदा कराता है, वह गुरु है। ऐसी चेतना के रूप में गुरु की वंदना करके उस अनुशासन को अपने ऊपर आरोपित करना चाहिये, उसका उपकरण बनने के लिए भाव-भरा आवाहन करना चाहिये, ताकि अपनी वृत्तियाँ और शक्तियाँ उसके अनुरूप कार्य करती हुई, उस सनातन गौरव की रक्षा कर सकें।

ॐ ब्रह्मानन्दं परम सुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं,
द्वन्द्वातीत गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं,
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद् गुरुं तं नमामि ।।
अखण्डानन्दबोधाय शिष्यसंतापहारिणे ।
सच्चिदानन्दरूपाय तस्मै श्री गुरवे नमः ।।

सरस्वती वन्दना-माँ सरस्वती वाणी की देवी हैं। कर्णकाण्ड में वाणी का प्रयोग करना पड़ता है। यदि वाणी सुसंस्कृत न हुई, तो उसमें प्रभाव पैदा नहीं होगा, बोले गये मंत्र शब्द मंत्र न रह जाएँ, मंत्र बने, कहे गये शब्दों में अन्तः-करण को प्रभावित करने योग्य प्राण पैदा हो, इसी कामना भाव के साथ माँ सरस्वती की भाव पूर्ण वंदना करनी चाहिये।

याकुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता ।
या वीणावरदण्डमण्डित करा या श्वेतपदमासना ।।
या ब्रह्माच्युत शंकरप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता ।
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ।।

जो कुन्दपुष्प, चन्द्रमा, बर्फ और हार के समान श्वेत हैं, जो शुद्ध सफेद वस्त्रों को धारण किये हुए हैं , जिनके हाथवीणा से सुशोभित हो रहे है, जो श्वेत कमलासन पर बैठती हैं, जिसकी ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देव जिनकी सदा उपासना करते हैं और जो सब प्रकार के अज्ञान को हर लेती हैं, वह माँ सरस्वती मेरा पालन करें।

शुक्लां ब्रह्मविचार सारपरमामाद्यां जगद्व्यापिनी ।

वीणापुस्तक धारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापाहाम्।।
हस्ते स्फाटिकमालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थिताम्।
वन्देतां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्।।

जिनका रूप श्वेत है, जो ब्रह्मविचार की परम तत्व हैं, जो सब संसार में फैल रही हैं, जो हाथों में वीणा और पुस्तक धारण किये रहती हैं, सभी भयों से अभयदान देने वाली, अज्ञान के अंधकार को मिटाने वाली, हाथों मे वीणा-पुस्तक औऱ स्फाटिक की माला धारण करने वाली, कमल के आसन पर विराजमान होती हैं और बुद्धि देनेवाली हैं, उनपरमेश्वरी भगवती सरस्वती की मैं वन्दना करता हूँ।

इस प्रकार से कई माध्यमों से अपने आरध्या की उपासना, पूजा की जा सकती है। कर्मकाण्ड का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक है ।पूजा, यज्ञ ,संस्कार आदि सभी धार्मिक क्रियाओं का मूल कर्मकाण्ड ही है।

1.9सारांश

इस इकाई में आपने कर्मकाण्ड के विषय में अध्ययन किया। आप जाना चुके हैं कि कर्मकाण्ड का मूल उद्भव वेद से हुआ है। 'ज्ञानार्थक 'विद्' धातु से निष्पन्न 'वेद' शब्द का अर्थ 'ज्ञान' ही है। यह ज्ञान समस्त आध्यात्मिक और लौकिक ज्ञान के स्रोत या आधार के रूप में है। **"वेदोखिलो धर्ममूलम्"** वेद धर्म, ज्ञान, उपासनादि का मूल है। कर्मकाण्ड ही नहीं अपितु समस्त भारतीय विद्याओं का मूल वेद है। **"विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते वा धर्मादिपुरुषार्था एभिरिति वेदाः"** भारतीय संस्कृत एवं संस्कृति का मूल आधार वेद ही है। विद्वानों ने वेद को विश्व का सर्वप्राचीनतम ग्रंथ माना है। इस आधार पर विश्व का ज्ञान-विज्ञान की आधार शिला वेद ही है। वेद इष्ट –प्राप्ति और अनिष्ट –निवारण के लिए अलौकिक उपाय का निरूपण करने वाला ग्रंथ है। साथ ही आपने भारतीय संस्कृति के बारे में जाना कि भारतीय संस्कृति कर्म सिद्धांतों पर आधारित है। भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति है। इसके अंतर्गत व्रत,त्यौहार, उत्सव अनुष्ठान आदि का विशेष महत्व है। भारतीय संस्कृति भारत की प्रतिष्ठा है। **"भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा"** इस वाक्य से यह विदित होता है कि हमारे भारत की प्रतिष्ठा संस्कृत और संस्कृति इन्ही दोनों में निहित है और संस्कृत-संस्कृति का ही मूल है।कर्मकाण्ड के वैज्ञानिक महत्व के अंतर्गत आपने जाना वेद मंत्रोच्चारण से भी एक विशिष्ट प्रकार की ध्वनि तरंगों का संचार सम्पूर्ण वातावरण में होता है। और उन का भारी प्रभाव विश्वव्यापी प्रकृति पर, सूक्ष्म जगत पर तथा प्राणियों के स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरों पर पड़ता है। यज्ञों के माध्यम से शक्तिशाली तत्व वायुमण्डल में फैलाये जाते हैं, उनसे हवा में घूमते असंख्य रोग कीटाणु सहज ही नष्ट होते हैं। डी०डी०टी० फ़िनायल आदि छिड़कने, बीमारियों से बचाव करने वाली दवायें या सुइयाँ लेने से भी कहीं अधिक कारगर उपाय यज्ञ करना है ।हिन्दू पूजा पद्धति में वैज्ञानिक मूलभूत सिद्धांत दिखाई पड़ते है। श्रीभगवान से निस्वार्थ प्रेम करना ही पूजा है। देव पूजा के माध्यम से जो प्रकृति ने हमे प्रदान किया है। हम उसे पुनः श्रीभगवान को अर्पित करते हैं। पूजा का धार्मिक व्यक्ति के जीवन में बहुत अधिक महत्व होता है। देव प्राप्ति के लिए जो भी साधन वैदिक कर्मकाण्ड में बताए गये हैं, उन्हें पूजा विधि कहा जाता है। धर्म क्षेत्र के साथ-साथ कर्म क्षेत्र में भी पूजा का अपना विशेष महत्व है। यही करण है कि लोग अपने कार्य को भी पूजा मानते हैं। पूजा की विधियाँ अनेक प्रकार की हैं। जैसे तन्मयता के साथ अपने

आराध्य के लिए भजन – कीर्तन करना, वैदिक मंत्रोच्चारण द्वारा हवन इत्यादि, देवी-देवताओं की उपासना, व्रत, त्यौहार, पर्व आदि। अपने इष्ट – देवता को मनाने के लिए अलग-अलग ढंग से मानव पूजा कर्म किया करता है। भारतीय सनातन धर्म में पूजा का इतना अधिक महत्व है कि लोगों के घर-घर में श्रीभगवान की पूजा अर्चना की जाती है। इस प्रकार से इस इकाई के माध्यम से आपने कर्मकाण्ड के विषय में अध्ययन किया।

1.10 पारिभाषिक शब्दावली

- चेतना - ज्ञानमूलक मनोवृत्ति
- अन्तः करण - अन्तः करण का अर्थ मानसिक शक्ति से है जिससे मानव उचित और अनुचित का निर्णय करता है।
- सुसंस्कृत - सुंदर संस्कार युक्त
- कामना - अभिलाषा, वांछा
- वैदिक - वेद संबंधी
- तन्मयता - किसी कार्य में एकाग्र भाव से लगे रहना
- परम्परा - चली हुई एक प्रथा / प्रणाली
- निर्विघ्नता - बाधा रहित / बिना बाधा के
- प्रवृत्ति - मन का झुकाव
- उपासना - आराधना / भक्ति
- वायुमण्डल - पृथ्वी के चारों ओर सैकड़ों किमी की मोटाई में लपेटने वाले गैसीय आवरण को वायुमण्डल कहते हैं।

अभ्यास प्रश्न 1

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिये।

1 कर्मकाण्ड का मूल है।

(क) उपनिषद

(ख) पुराण

(ग) वेद

(घ) इनमे से कोई नहीं

2 वेद शब्द निष्पन्न हुआ है।

(क) वि धातु से

(ख) वृ धातु से

(ग) विद् धातु से

(घ) इनमे से कोई नहीं

3 कर्मकाण्ड का प्रतिपादन करता है।

(क) उत्तरमीमांसा

(ख) पूर्वमीमांसा

(ग) पुराण

(घ) उपनिषद

4 पूर्वमीमांसा के रचयिता कौन हैं ?

(क) वादरायण

(ख) जैमनी

(ग) कणाद

(घ) इनमे से कोई नहीं

5 कर्मकाण्ड के दो प्रकार है।

(क) इष्ट एवं पूर्त

(ख) पूर्त एवं कुर्त

(ग) इष्ट एवं याग

(घ) इनमे से कोई नहीं

(2) रिक्तस्थानों की पूर्ति कीजिये।

1. विद्वानों ने ---------- को विश्व का सर्वप्राचीनतम ग्रंथ माना है।

2. कर्मकाण्ड भारतीय ---------- द्वारा लंबी शोध एवं प्रयोग परीक्षण द्वारा विकसित असामान्य क्रिया-कृत्य है।

3. महर्षि जैमनी द्वारा रचित पूर्वमीमांसा शास्त्र कार्मकाण्ड का प्रतिपादन करता है। ज्ञानकाण्ड का प्रतिपादन ---------- करता है।

4. वेद इष्ट प्राप्ति और------निवारण के लिए अलौकिक उपाय का निरूपण करने वाला ग्रंथ है।

5. मनुष्य की----------की शुद्धि के लिए तीन बार आचमन किया जाता है, मंत्रपूरित जल से तीनों को भाव स्नान कराया जाता है।

(3) सही गलत का चयन कीजिये।

1. भारत की प्रतिष्ठा संस्कृत और संस्कृति इन्ही दोनों में निहित है और संस्कृत-संस्कृति का ही मूल है। ( )

2. कर्मकाण्ड के द्वारा महत् चेतना एवं मानवीय पुरुषार्थ की योग साधना को दृश्य-श्रव्य का दिव्य स्वरूप दिया गया है। ( )

3. कर्मकाण्ड का मूल उद्भव पुराण से है।( )

4. कर्मकाण्ड के दो प्रकार है। पहला इष्ट, दूसरा पूर्त है ( )

5. कर्मकाण्ड की शक्ति, मंत्र प्रयोग की सजीवता, विचारों की दिशा, श्रद्धा भावना के उभार तथा क्रियाओं के सुसंयोग से उभरती है। ( )

1.11अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1)- 1 ग, 2 ग, 3 ख, 4 ख, 5 क

(2)- 1 वेद , 2 ऋषि-मनिषियों, 3 उत्तर मीमांसा, 4 अनिष्ट, 5 मन,वाणी, अन्तः करण

(3)-1 सही, 2 सही, 3 गलत, 4 सही, 5 सही

1.12 संदर्भ सूची ग्रंथ

1. कर्मकाण्ड भास्कर, श्रीराम शर्मा आचार्य

2. नित्य कर्म पूजा प्रकाश, गीताप्रेस गोरखपुर

3. मनुस्मृति, शिवराज आचार्य:कौण्डिन्न्यानः

1.12 अन्य सहायक पुस्तकें

1. कर्मकाण्ड प्रदीप
2. षोडश संस्कार रहस्य

1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. कर्मकाण्ड के उद्भव के संदर्भ में विस्तार से वर्णन कीजिये।
2. कर्मकाण्ड के वैज्ञानिक महत्व पर प्रकाश डालिए।
3. कर्मकाण्ड में देव पूजा के महत्व का वर्णन कीजिये।

इकाई 2 पञ्च भू संस्कार एवं अग्नि स्थापना विधि

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 पञ्च भू संस्कार हेतु भूमि शोधन एवं कुण्डादि प्रकार एवं फल
  2.3.1 कुण्डादि प्रकार एवं फल
  2.3.2 पञ्च भू संस्कार में कुशों का महत्व
2.4 पञ्च भू संस्कारों का परिचय
  2.4.1 पञ्च भू संस्कार की विधि
2.5 अग्नि स्थापन विधि एवं अग्नियों के नाम
  2.5.1अग्नि जिह्वाओं के नाम
  2.5.2 अग्नि स्थापन विधि
  2.5.3 अग्निप्रज्वालन
2.6 सारांश
2.7 पारिभाषिक शब्दावली
2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.9 सन्दर्भ सूची ग्रन्थ
2.10 अन्य सहायक पुस्तकें
2.11 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों !

प्रस्तुत इकाई पञ्च भू संस्कार एवं अग्नि स्थापना विधि से संबंधित है । कुण्डमण्डप आदि निर्माण हेतु उचित भूमि का विचार करके पञ्च भू संस्कार पूर्वक यज्ञों को पूर्ण किया जाता है। यज्ञादि में पञ्च भू संस्कार कुण्ड अथवा स्थण्डिल में किया जाता है। यज्ञ हेतु उत्तम भूमि का ही चयन करना चाहिये । तभी उसका उत्तम फल प्राप्त होता है । शास्त्रों में उत्तम भूमि के अनेक लक्षणों के विषय में चर्चा की गई है । अग्नि स्थापन विधि में 'अग्निमुपसमाधाय'सूत्र के अनुसार अग्नि की स्थापना कैसे करनी चाहिये ? इस क्रम का निर्देश होता है । लौकिक, स्मार्त और श्रौत अग्नियों को आत्माभिमुख (अग्नि को अपनी ओर करके) स्थापित करना चाहिये । ताम्रादि पात्रों में पात्र से ढँककर अग्नि की स्थापना करनी चाहिये । या शराव अर्थात मिट्टी के पात्र से या शुभ्र कांस्य पात्र से या नवीन दृढ़ पात्र से अग्नि का प्रणयन किया जा सकता है । संस्कार भास्कर में लिखा गया है कि शराव पात्र में, कपाल पात्र में या उल्मुख पात्र में रखी हुयी अग्नि से अग्नि प्रणयन नहीं करना चाहिये क्योंकि उससे व्याधि एवं हानि का भय रहता है । इस प्रकार आप पञ्च भू संस्कार एवं अग्नि स्थापना विधि से सम्बन्धित विविध विषयों का प्रस्तुत इकाई में अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेंगे कि –

- पञ्च भू संस्कार हेतु भूमि शोधन एवं कुण्डादि प्रकार एवं फल का अध्ययन करेंगे।
- पञ्च भू संस्कार में कुशों का महत्व के बारे में जानेंगे।
- अग्नि स्थापन विधि एवं अग्नियों के नामके बारे में जानेंगे।
- अग्नि जिह्वाओं के नामों का अध्ययन करेंगे।

2.3 पञ्च भू संस्कार हेतु भूमिशोधन एवं कुण्डादि प्रकार एवंफल

कर्मकाण्डों के अंतर्गत यज्ञादि भूमि को संस्कारित करने के लिए पंच भू संस्कार करने का विधान है । कुण्डमण्डप आदि निर्माण हेतु उचित भूमि का विचार करके पञ्च भू संस्कार पूर्वक यज्ञों को पूर्ण किया जाता है। यज्ञादि में पञ्च भू संस्कार कुण्ड अथवा स्थण्डिल में किया जाता है। यज्ञ हेतु उत्तम भूमि का ही चयन करना चाहिये । तभी उसका उत्तम फल प्राप्त होता है । शास्त्रों में उत्तम भूमि के अनेक लक्षणों के विषय में चर्चा की गई है । जैसे कि उत्तम एवं सुगंधित भूमि को ब्राह्मणी कहा जाता है, रक्त वर्ण से गंध युक्त भूमि को क्षत्रिय कहा जाता है, मधु गंध से युक्त भूमि को वैश्या कहा जाता है और मद्य से युक्त गंध वाली भूमि को इन तीनों से पृथक कहा जाता है।

सुगन्धा ब्राह्मणी भूमि, रक्त गन्धा तु क्षत्रिया।
मधुगन्धा भवेद्वैश्या, मद्यगन्धा च शूद्रिका ।।

मधुर रस से युक्त भूमि को ब्राह्मणी कहा जाता है । कषाय रस से मिश्रित भूमि को क्षत्रिय कहा जाता है। अम्लरसयुक्त भूमि को वैश्य कहा जाता है। तिक्त रस युक्त भूमि को शूद्र कहा जाता है । भूमियों के फलों का भी अलग महत्व है जैसा कि ब्राह्मणी भूमि सुखदा, क्षत्रिय भूमि राज्य प्रदा, वैश्य भूमि धन धान्यकरी, और इनसे अतरिक्त भूमि त्याज्य होती है।

अम्ला भूमिर्भवेद्वैश्या तिक्ता शूद्रा प्रकीर्तिता।
मधुरा ब्राह्मणी भूमिः कषायाः क्षत्रिया मता।।

भूमि विचार के अन्तर्गत कहा गया है कि श्वेत वर्ण वाली मिट्टी की भूमि को ब्राह्मणी कहा जाता है। लाल वर्ण युक्त भूमि को क्षत्रिय कहा जाता है। हरित वर्ण से युक्त भूमि को वैश्य कहा जाता है, और काले वर्ण युक्त भूमि को इन तीनों से अतरिक्त कहा जाता है।

शुभस्य शुभदा ज्ञेया दशा पापस्य चाधमा।
शुक्ला मृत्स्ना च या भूमिर्ब्राह्मणी सा प्रकीर्तिता।
क्षत्रिया रक्तमृत्स्ना च हरिद्वैश्या।
कृष्णा भूमिर्भवेच्छूद्रा चतुर्धा परिकीर्तिता।

नारद जी के मतानुसार ब्राह्माणादि चारों वर्णों के लिये क्रमानुसार घृत , रक्त, अन्न और मद्य गंध युक्त भूमि सुखद है। पूर्व दिशा की ओर भूमि ढालदार हो तो धन की प्राप्ति, अग्नि कोण में दाह, दक्षिण में मृत्यु, नैऋत्य में धन नाश, पश्चिम में पुत्र हानि, वायव्य में प्रदेश निवास, उत्तर में धनागम, ईशान में विद्या लाभ, तथा बीच में गढ़े वाली भूमि कष्ट दायक होती है। नारायण भट्ट के मतानुसार ब्राह्मण के लिये उत्तर ढालवाली भूमि शुभ होती है। क्षत्रिय के लिए पूर्व ढालवाली भूमि शुभ कही गयी है। वैश्य के लिए दक्षिण ढालवाली भूमि शुभ होती है। अन्य लोगों के लिए पश्चिम की ओर ढालवाली भूमि शुभ कहा गया है।

पूर्वप्लवा वृद्धिकरी उत्तरा धनदा स्मृता।
अर्थक्षयकरीं विद्यात् पश्चिममप्लवना ततः।
दक्षिणा प्लवना पृथ्वीं नराणां मृत्तिदा भवेत्।

2.3.1 कुण्डादि प्रकार एवं फल –

कुण्ड के विषय में तीन पक्ष प्राप्त होते है। जिनको नवकुण्डी, पञ्चकुण्डी एवं एककुण्डी कहा जाता है। इनमे नवकुण्डी में नौ कुण्ड होते है, पञ्चकुण्डी में पाँच कुण्ड होते हैं, एवं एककुण्डी में एक कुण्ड होता है। नवकुण्डी पक्ष में नौ प्रकार के कुण्ड इस प्रकार से हैं –

प्राच्या चतुष्कोण भगेन्दुखण्ड त्रिकोणवृत्तांगभुजाम्बुजानि।
अष्टास्त्रिशशक्रेश्वरयोस्तु मध्ये वेदा स्त्रिवा वृत्तमुशन्तिकुण्डम्।।

अर्थात पूर्व की दिशा में चतुष्कोण का निर्माण चाहिये। अग्नि कोण में योनि कुण्ड का निर्माण करना चाहिये। दक्षिण कोण में अर्धचंद्र कुण्ड का निर्माण करना चाहिये। नैऋत्य कोण में त्रिकोण कुण्ड का निर्माण करना चाहिये। पश्चिम दिशा में वृत्त कुण्ड का निर्माण करना चाहिये। वायव्य कोण में षडस्त्र कुण्ड का निर्माण करना चाहिये। उत्तर में पद्यंकोण कुण्ड का निर्माण करना चाहिये। ईशान कोण में अष्टास्त्र कुण्ड का निर्माण करना चाहिये। ईशान एवं उत्तर के बीच में चतुष्कोण अथवा त्रिकोण अथवा वृत्त कुण्ड का निर्माण करना चाहिये।

कुण्ड का दूसरा पक्ष पंचकुण्डी के रूप में जाना जाता है।

आशेषकुण्डैरिहपञ्चकुण्डी चैकं यदा पश्चिमसोम शैव।

अर्थात पूर्व दिशा में चतुष्कोण कुण्ड का निर्माण करना चाहिये। दक्षिण में अर्धचंद्र कुण्ड का निर्माण करना चाहिये। पश्चिम दिशा में वृत्त कुण्ड बनाना चाहिये। उत्तर में पद्यंकोण का निर्माण करना चाहिये। ईशान कोण एवं पूर्व कोण के मध्य चतुष्कोण अथवा त्रिकोण अथवा वृत्त कुण्ड का निर्माण करना चाहिये। इससे यह ज्ञात होता है कि कोणों के कुण्डों को छोड़कर केवल

दिशाओं के कुण्डों को स्वीकार किया जाता है। तीसरा पक्ष एककुण्डी है इन्ही में से कोई एक कुण्ड बनाने का विधान है। कुण्डों के पृथक-पृथक फल भी बताए गये हैं।

सिद्धि: पुत्रा: शुभं शत्रुनाशः शान्तिर्मृतिच्छदे।
वृष्टिरारोग्यमुक्तं हि फलं प्राच्यादि कुण्डके।।

अर्थात सिद्धि कामना हेतु चतुष्कोण में हवन करना चाहिये। पुत्र की कामना हेतु योनि कुण्ड में हवन करना चाहिये। शुभ कामना हेतु अर्धचंद्र कुण्ड में हवन करना चाहिये। शत्रुनाश हेतु त्रिकोण कुण्ड में हवन करना चाहिये। शान्ति की कामना हेतु वृत्त कुण्ड में हवन करना चाहिये। मृत्युच्छेदन के लिये षट्कोण कुण्ड में हवन करना चाहिये। वर्षा हेतु पद्यंकोण कुण्ड में हवन करना चाहिये। आरोग्यता की कामना हेतु अष्टकोण कुण्ड में हवन करना चाहिये।

कुण्डों के निर्माण प्रमाण के अनुसार करना चाहिये अन्यथा यज्ञ का ठीक विपरीत फल प्राप्त होता है जैसा की शस्त्रों में कहा ही गया है कि -

खाताधिके भवेद्रोगी, हीने धेनु क्षयस्तथा।
वक्रकुण्डे च सन्तापो, मरणं छिन्नमेखले।
मेखला रहिते शोको अभ्यधिके वित्तसंक्षयः।
भार्यादिनाशनं प्रोक्तं कुण्डं योन्याविनाकृते।
कुण्डं यत्कण्ठरहितं सुतानां तन्मृतिप्रदम्।
अनात्मके मृत्युमुपैति बन्धुस्तथैवमानाधिककेस्वयंचेति।। परशरामकारिकायाम्।।

अर्थात कुण्डों के निर्माण में विशेष रूप से यह ध्यान रखना चाहिये कि प्रमाण के अनुसार ही कुण्ड में खात हो। अगर ऐसा नहीं किया जाये तो विपरीत परिणाम देखने को मिलते हैं। जैसा कि यदि कुण्ड में गड्ढा निर्धारित मान से अधिक हो तो उसका फल रोगी होना बताया गया है। जिस कुण्ड में गड्ढा मान से कम होता है तो उसका फल धेनु का क्षय होना बताया गया है। यदि कुण्ड टेढ़ा-मेढ़ा हो तो सन्ताप होता है। यदि कुण्ड में मेखला टूटी-फटी हो तो उसका फल मरण बताया गया है। यदि मेखला से रहित कुण्ड का निर्माण किया जाता है तो उससे शोक की प्राप्ति होती है, और अधिक मेखला हो तो धन का क्षय होता है। योनि रहित कुण्ड से भार्या के विनाश का फल होता है। कण्ठ रहित कुण्ड का फल पुत्र मृत्यु बतायी गयी है। इसी लिए शास्त्रोक्त कुण्ड निर्माण के पश्चात पञ्च भू संस्कार करना चाहिये।

2.3.2 पञ्च भू संस्कार में कुशों का महत्व-

पञ्च भू संस्कार कुशाओं से करने का विधान है। कुश एवं यज्ञोपवीत के बिना किया समस्त कर्म राक्षस कहलाता है और उसका फल भी प्राप्त नहीं होता है। जैसा की कहा गया है कि –

कुशेन रहिता पूजा विफला कथिता मया।
उदकेन बिना पूजा विना दर्भेण याक्रिया।।
"आज्ये च विना होमः फलं दास्यन्ति नैव ते।"

अर्थात कुश रहित जो पूजा होती है वह निष्फल कही गयी है। कुश रहित जो यज्ञादि क्रिया है, जाल के बिना जो पूजा है और घृत के बिना जो होम है वह कदापि फलप्रद नहीं होता है। यज्ञादि क्रिया में कुश की अनिवार्यता कही गई है।

कुशमूले स्थितो ब्रह्मा कुशमध्ये जनार्दनः।
कुशाग्रे शंकरो देवः त्रयो देवाः कुशे स्थिताः।।

अर्थात कुश के मूल भाग में ब्रह्मा विराजमान हैं। कुश के मध्य जनार्दन और अग्र भाग में शंकर विराजमान हैं। तीनों देवता कुश में निवास करते हैं।

कुश काशास्तथादूर्वा यवपत्राणिव्रीहयः।
बल्वजाः पुण्डरीकाश्च कुशाः सप्तप्रकीकर्तताः॥

अर्थात कुशा, काशा, दूर्वा, जौ का पत्ता, धान का पत्ता, बल्वज, और कमल ये सात प्रकार के कुश कहे गये हैं। पञ्च भू संस्कार में कुशों का विधान है और कुशों का उचित चयन कर यह संस्कार सम्पन्न करना चाहिये।

2.4 पञ्च भू संस्कारों का परिचय

यज्ञादि कर्मकाण्ड के अंतर्गत यज्ञ भूमि को संस्कारित करने के लिए पञ्च भू संस्कार करने का विधान है। पञ्च भू संस्कार केवल मुख्य पूजन करने वाले व्यक्ति से कराया जा सकता है।यदि व्यवस्था अधिक हो तो मुख्य पूजन स्थल के साथ प्रत्येक तत्ववेदी के स्थल पर अथवा प्रत्येक कुण्ड पर एक व्यक्ति द्वारा एक साथ मंत्रोच्चारण सहित यह क्रम चलाया जा सकता है। जितने स्थानों पर पञ्च भू संस्कार कराना है, उतने स्थानों पर परिसमूहन –बुहारने के लिए स्रुवा-स्फ्य या पवित्र काष्ठ का टुकड़ा तथा सिंचन के लिए जल रखना चाहिये।

परिसमुह्योपलिप्योल्लिख्योद्धृत्याभ्युक्ष्येतिपञ्चभूसंस्काराः।

1 – परिसमूहन पञ्च भू संस्कार में पहले परिसमूहन का विधान है। इस संदर्भ में हरिहर भाष्य में लिखा गया है कि तीन कुशों से स्थण्डिल के धूल को झाड़ना है।वादरायण जी ने कहा है कि कृमि, कीट, पतंग, इत्यादि पृथ्वी पर विचरते रहते हैं, उनके संरक्षण के लिये परिसमूहन कहा गया है। इसमे दर्भ की संख्या इतनी होनी चाहिये इस पर कहा गया है कि अंगुष्ठ एवं कनिष्ठा अंगुली से तीन कुशाओं के मूल को पकड़कर अग्रभाग से झाड़ना चाहिये। धूल को पूर्व की ओर सरकाना चाहिये।

2 – उपलिप्य इस सूत्रकी व्याख्या में हरिहर जी गोमय से उपलेपन का विधान करते हैं। पुराणों में कथा वर्णित है कि इन्द्र के वज्र से वृत्र नामक महा महा असुर मारा गया था। उसके मेद से यह पृथ्वी व्याप्त हो गयी इसलिए गाय के गोबर से उपलेपन कर्म किया जाता है। गाय के गोबर में लक्ष्मी का वास है, वह पवित्र एवं मंगल करने वाला होता है।यज्ञीय भूमि के संस्कारार्थ उपलेपन किया जाता है। गोमय का लक्षण करते हुए कहा गया है कि रोगी, वृद्ध, सद्यः, व्यायी हुयी, बंध्या, गाभिन, अपवित्र पदार्थों का भक्षण करने वाली एवं मृतवत्सा का गोमय, गोमूत्र, गोदुग्ध, नहीं ग्रहण करना चाहिये। स्वच्छ स्थान में स्वच्छ गोमय ऊपर एवं नीचे भाग तथा जल भाग को छोडकार गोमय स्वीकार करना चाहिये।

3 – उल्लेखन इस सूत्र की व्याख्या में हस्त मात्र खदिर के स्फ्य से प्रागग्र उदक् संस्थित तीन रेखा स्थण्डिल के परिणाम के बराबर खीचनी चाहिये। कल्पवल्ली नामक ग्रंथ में वर्णन करते हुये बतलाया गया है कि अस्थिकण्टक के उद्धरनार्थ उल्लेखन करना चाहिये। इसमें तीन रेखा उदक् संस्थ प्रागग्र स्थण्डिलावधि तक होनी चाहिये या बारह अंगुल के मान से रेखा करनी चाहिये। फल, पुष्प से श्रिय की वृद्धि होती है, पत्र से धन लाभ होता है और कुश से दीर्घ आयु की वृद्धि होती है। उलेखन में जो तीन रेखायें की जाती हैं। उनमें प्रथम रेखा सात्विक, द्वितीय

रेखा राजसी एवं तृतीय रेखा तामसी मानी जाती है। इन रेखाओं के देवता ब्रह्मा, विष्णु, और महेश क्रमशः हैं।

4 - उद्धृत्य इस सूत्र में रेखांकित किये गये स्थल के ऊपर की मिट्टी अनामिका एवं अंगुष्ठ के सहारे से कुण्ड या स्थण्डिल से बाहर कर देना चाहिये। कहा जाता है कि आकाशपथगामी पिशाचादि जो पृथ्वी तल पर विचरण किया करते हैं उनसे संरक्षण हेतु उद्धृत्य कर्म किया जाता है।

5 –अभ्युक्ष्य सूत्र में हरिहर जी व्याख्या करते हैं कि हथेली में जल भरकर अभ्युक्षण करना चाहिये। कहा जाता है कि जल में देवगण एवं पितृगण होते हैं अतः जल से अभ्युक्षण करना चाहिये। उत्तान हस्थ से अभिषिंचन प्रोक्षण, अधो हस्त से अवेक्षण एवं मुष्टिकृद्धस्त से अभ्युक्षण किया जाता है। ये अग्नि स्थापनार्थ स्थण्डिल के किये जाने वाले पञ्च भू संस्कार हैं।

2.4.1 पञ्च भू संस्कार की विधि-

सर्वप्रथम प्राङ्मुखोपविश्य आचम्य प्रणानायम्य देशकालौ स्मृत्वा कर्मांगतया पञ्च भू संस्कारान् करिष्ये इति संकल्पं कुर्यात् ।तत्राऽऽदौ प्रधान देवताया आवाहनं स्थापनञ्च कुर्यात्। ततः पाद्यादिभिः संपूज्य, स्वर्णप्रतिमाया अग्न्युत्तारणं कृत्वा, पञ्चगव्येन शुद्धिः कार्य्या। ततोऽमृतैः स्नापयेत्। आवाहनं प्राण प्रतिष्ठा च कार्य्या। ततो यथोपचारैर्गन्धाक्षत – पुष्प-धूप-दीपं-नैवेद्य, आचमनीय, तामबूलदक्षिणादिभिः सम्पूजयेत।

प्रधान देवता पूजन – प्रतिष्ठा साङ्गतासिद्धियर्थं यद्यदर्पितं, तेन कर्माङ्गदेवता प्रीयताम्॥ अथ कुश कण्डिका करणम्॥ शुद्धायां भूमौ त्रिभिर्दभैः परिसमूहनम्॥ हस्त मात्र परिमितां चतुरस्त्रां भूमिं कुशैः परिसमुह्य, तान्कुशानैशान्यां परित्यज्य, गोमयोदकेनोपलिप्य, स्फ्येन स्त्रु वमूलेन वा प्राङ्मुखः प्रागग्र प्रादेश मात्रमुत्तररोत्तरक्रमेण त्रिरुल्लिखय, उल्लेखनक्रमेणाऽनामिकाङ्गुष्ठाभ्यां कञ्चिन्मृद्धृत्य, ऐशान्यां दिशि क्षिपेत् तत उदकेनाऽभ्युक्षणम्॥

परिसमूहन- दाहिने हाथ में कुशाएं लेकर तीन बार पश्चिम से पूर्व की ओर या दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़ते हुए, निम्न मंत्र बोलते हुए बुहारें, भावना करें कि इस क्षेत्र में पहले से यदि कोई कुसंस्कार व्याप्त है, तो उन्हें मंत्र और भावना की शक्ति से बुहार कर दूर किया जा रहा है। बाद में कुशाओं को पूर्व को ओर फेंक दें।

ॐ दर्भैः परिसमूह्य, परिसमूह्य, परिसमूह्य।

उपलेपन –बुहारे हुए स्थल पर गोमय (गाय के गोबर) से पश्चिम से पूर्व की ओर को या दक्षिण से उत्तर को ओर बढ़ते हुए लेपन करें। और निम्न मंत्र बोलते रहें। भावना करें कि शुभ संस्कारों का आरोंपण और उभार इस क्रिया के साथ किया जा रहा है।

उल्लेखन –लेपन हो जाने पर उस स्थल पर स्त्रुवा मूल से तीन रेखाएं पश्चिम से पूर्व की ओर या दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़ते हुए निम्न मंत्र बोलते हुए खींचे, भावना करें कि भूमि में देवत्व की मर्यादा रेखा बनाई जा रही है।

ॐ स्त्रुवमूले उल्लिखय, उल्लिखय, उल्लिखय।

उद्धरण –रेखांकित किए गये स्थल के ऊपर की मिट्टी अनामिका और अंगुष्ठ के सहकार से निम्न मंत्र बोलते हुए पूर्व या ईशान दिशा की ओर फेंके, भावना करें कि मर्यादा में न बाँध सकने वाले तत्वों को विराट् की गोद में सौंपा जा रहा है।

ॐ अनामिकांगुष्ठेन उद्धृत्य, उद्धृत्य, उद्धृत्य।

अभ्युक्षण –पुनः उस स्थल पर निम्न मंत्र बोलते हुए जल छिड़कें, भावना करें कि इस क्षेत्र मे जाग्रत सुसंस्कारों को विकसित होने के लिए सींचा जा रहा है।

ॐ उदकेन अभ्युक्ष्य, अभ्युक्ष्य, अभ्युक्ष्य।

इस प्रकार पञ्च भू संस्कार सम्पन्न किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न 1

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिये।

1उत्तम एवं सुगंधित भूमि को कहा जाता है।

(क) ब्राह्मणी

(ख) क्षत्रिय

(ग) वैश्य

(घ) इनमे से कोई नहीं

2 रक्त वर्ण से गंध युक्त भूमि को कहा जाता है।

(क) वैश्य

(ख) क्षत्रिय

(ग) ब्राह्मणी

(घ) अन्य

3 कुण्ड के विषय में कितने पक्ष प्राप्त है ?

(क) एक

(ख) दो

(ग) तीन

(घ) चार

4 कुश के मूल भाग में कौन विराजमान हैं ?

(क) ब्रह्मा

(ख) विष्णु

(ग) शिव

(घ) इन्द्र

5 तीन कुशों से स्थण्डिल के धूल को झाड़ना पञ्च संस्कार की किस सूत्र के अंतर्गत आता है ?

(क) उपलिप्य

(ख) उल्लेखन

(ग) परिसमूहन

(घ) उद्धृत्य

(2) रिक्तस्थानों की पूर्ति कीजिये।

1 कषाय रस से मिश्रित भूमि को----------कहा जाता है।

2 कुश के मध्य----------और अग्र भाग में शंकर विराजमान हैं।

3 पुत्र की कामना हेतु ---------- कुण्ड में हवन करना चाहिये।

4 कुश एवं ---------- के बिना किया समस्त कर्म राक्षस कहलाता है और उसका फल भी प्राप्त नहीं होता है।

5 जिस कुण्ड में गड्ढा मान से कम होता है तो उसका फल ----- का क्षय होना बताया गया है।

(3) सही गलत का चयन कीजिये।

1 वादरायण जी ने कहा है कि कृमि, कीट, पतंग, इत्यादि पृथ्वी पर विचरते रहते हैं, उनके संरक्षण के लिये परिसमूहन कहा गया है। ( )

2 कुश के मूल भाग में ब्रह्मा विराजमान हैं, कुश के मध्य जनार्दन और अग्र भाग में शंकर विराजमान हैं। ( )

3 मधु गंध से युक्त भूमि को क्षत्रिय कहा जाता है। ( )

4गोमय का लक्षण करते हुए कहा गया है कि रोगी, वृद्ध, सद्यः, व्यायी हुयी, बंध्या, गोमय, गोमूत्र, गोदुग्ध, ग्रहण नहीं करना चाहिये। ( )

5 शान्ति की कामना हेतु योनि कुण्ड में हवन करना चाहिये। ( )

2.5 अग्नि स्थापन विधि एवं अग्नियों के नाम

अग्नि स्थापना से पूर्व अग्नि के नामों को जानना अति आवश्यक है। कर्म विशेष में अग्नियों के नाम इस प्रकार से हैं –

पावको लौकिके अग्निः प्रथमः सम्प्रकीर्तितः। अग्निमस्तु मारुतो नाम गर्भाधाने विधीयते। पुंसवे चन्द्र नाम शुभ कर्मणि शोभनः। सीमन्ते मंगलो नाम प्रगल्भो जात कर्मणि नाम्नि वै पार्थिवो ह्याग्निः प्राशाने तु शुचिः स्मृतः।

सभ्यो नाम स चौले तु व्रतादेशे समुद्भवः। गोदाने सूर्यनामाग्निर्विवाहे योजको मतः।

आवसथ्ये द्विजो ज्ञेयो वैश्वदेवे तु रुक्मकः। प्रायश्चिते विटश्चैव पाकयज्ञेषु पावकः।

देवानां हव्यवाहश्च पितृणां काव्यवाहनः। शान्तिके वरदः प्रोक्तः पौष्टिके बलबर्धनः।

पूर्णाहुत्यां मृडो नाम क्रोधाग्निश्चाभिचारिके। वश्यार्थे कामदो नाम वनदाहे तु दूषकः।

कुक्षौ तु जाठरो ज्ञेयः क्रव्यादौ मृतदाहके। वह्निनामा लक्षहोमे कोटिहोमे हुताशनः।

वृषोत्सर्गे ध्वरो नाम शुचये ब्राह्मणः स्मृतः। समुद्रे वाडवो ह्याग्निः क्षये संवर्तकस्तथा।

ब्रह्मा वै गार्हपत्यश्च ईश्वरो दक्षिणस्तथा। विष्णुरावहनीयः स्यात् अग्निहोत्रे त्र्योग्नयः। ज्ञात्वैवमग्निनामानि गृह्यकर्म समाचरेत्।

ग्रहहोमे विशेषः आदित्ये कपिलो नाम पिंगलः सोम उच्यते। धूमकेतुस्तथा भौमे जाठरोऽग्निर्बुधे स्मृतः।

गुरो चैव शिखी नाम शुक्रे भवति हाटकः। शनैश्चरे भवति महातेजा राहुकेत्वोर्हुताशनः।

अर्थात लौकिक अग्नियों में पावक नाम की अग्नि को प्रथम माना गया है। गर्भाधान संस्कार में मारुत नाम की अग्नि का आवाहन होता है। पुंसवन में पावमान, सीमन्त में मंगल, जातकर्म में प्रबल, अन्नप्राशन में पार्थिव चौल संस्कार में सभ्य, उपनयन में समुद्भव, गोदान में सूर्य, विवाह में योजक, वैश्वदेव में रुक्मक, प्रायश्चित्त में विट, पाकयज्ञों में पावक, देवों को हव्यवाहन, पितरों को कव्यवाहन, शान्तिक कार्यों में वरद, पौष्टिक कार्यों में बलबर्धन, पूर्णाहुति में मृड, अभिचारि कर्मों में क्रोधाग्नि, वश्यार्थ कामद, वनदाह में दूषक, कुक्षि में जठर, मृतदाह कार्य में क्रव्याद, लक्षहोम या कोटि होम में हुताशन, वृषोत्सर्ग में अध्वर, समुद्र में वाडव, क्षय में संवर्तक अग्नि। गार्हपत्याग्नि, दक्षिणाग्नि एवं आह्वानीयाग्नि ये तीन अग्निहोत्र की अग्नियाँ हैं, इनको क्रमशः

ब्रह्मा, शिव एवं विष्णु के रूप में जाना जाता है। अग्नियों के नाम की जानकारी प्राप्त कर के ही गृह्य कर्म का आचरण करना चाहिये। ग्रहों के हवन में भी अग्नियों के क्रमशः इस प्रकार से हैं – सूर्य हेतु कपिल, चंद्रमा हेतु पिंगल, भौम हेतु धूमकेतु, बुध हेतु जाठर, गुरु के लिए शिखी, शुक्र के लिए हाटक, शनि के लिए महातेजा तथा राहु एवं केतु के लिये हुताशन अग्नियों के नाम बताये गये हैं।

2.5.1 अग्नि जिह्वाओं के नाम-

अग्नि जिह्वाओं के माध्यम से प्रदत्त आहुतियों को देवताओं तक पहुँचाया जाता है। उन अग्नि जिह्वाओं के नाम इस प्रकार से हैं –

काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता चैव सुधूम्रवर्णा।
स्फुलिङ्गिनी विश्वरुचिस्तथा च चलायमाना इति सप्तजिह्वा॥

काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिंगिनी, विश्वरुचि, और चलायमाना ये सात अग्नि जिह्वायें हैं। इनका आह्वान करके विधि पूर्वक हवन करना चाहिये। बिना जानकारी के जो अग्नि में हवन करता है उसका हवन न तो हुत होता है न ही संस्कृत होता है। और न तो हवन कर्ता को यज्ञ का फल प्राप्त होता है। कहीं –कहीं स्थलों पर एक ही ऋचा में सात जिह्वाओं के एकीकरण का विधान है। समुद्रादुर्मि नामक ऋचा से कर्म के सिद्धयर्थ अवश्य हवन करना चाहिये।

सुलोहिता नैऋत्य च धूम्रवर्णा तु वारुणे।
स्फुलिङ्गिनि तु वायव्ये सौम्ये विश्वरुचिस्तथा।
काल्यां कराल्यां वा कुर्याच्छान्तिकं तथा।
मनोजवायां जिह्वायामभिचारो भिधीयते।
सुलोहितायां जिह्वायां तस्यामुच्चाटनं विदुः।
सर्वार्थसिद्धिकां विश्वरुचिं मन्त्रविदो विदुः।
अपरे वसुधारेति जिह्वां पुर्वोदितां जगुः।
उपजिह्वेति सा प्रोक्ता लक्षमीस्तत्र प्रतिष्ठिता।
कुण्डस्य मध्यमं पार्श्वमग्नेरास्यं प्रकीर्तितम्।
तस्मिन् सर्वाणि कार्याणि साधनीयानि नित्यशः।
संग्रेह विशेषः विवाहे वारुणी जिह्वा मध्यमा यज्ञकर्मसु।
उत्तरा चोपनयने दक्षिणा पितृकर्मसु।
प्राचीना सर्वकार्येषु ह्याग्नेयी ऐतानि चोग्रकार्येषु बुद्धयेतद्धोमलक्षणम्।

जिह्वा के स्थानों के विषय में यह वर्णन प्राप्त होता है कि कुण्ड के पूर्व भाग में काली, आग्नेय में कराली, दक्षिण में मनोजवा, नैऋत्य में सुलोहिता, पश्चिम में धूम्रवर्णा, वायव्य में स्फुलिंगिनी, उत्तर में विश्वरूचि, का स्थान होता है ।काली या कराली में नामक जिह्वा में पौष्टिक कर्म करना चाहिये। मनोजवा में अभिचार करना चाहिये। अन्य आचार्य पूर्व में वसुधा नाम की जिह्वा बताते हैं। इसको उपजिह्वा कहा जाता है। इस भाग में लक्ष्मी जी विराज मान रहती हैं। कुण्ड के मध्य पार्श्व में अग्नि का मुख होता है। उसमें व्यक्ति को अपने सभी कार्यों का साधन करना चाहिये। संग्रह नामक ग्रंथ में लिखा गया है कि विवाह में वारुणी जिह्वा, यज्ञ में मध्यमा, उपनयन में उत्तरा,

पितृ कर्मों में दक्षिणा, सभी कार्यों में प्राचीना तथा उग्र कामों में ऐशानी अग्नि जिह्वाओं को जानना चाहिये।

2.5.2 अग्नि स्थापन विधि -

अग्निमुपसमाधाय इति सूत्रम्।

कर्मसाधनभूतं लौकिकं स्मार्तं श्रौतं वाग्निम् आत्माभिमुखं स्थापयित्वा इति हरिहरः। पात्रन्तरेणपिहितं ताम्रपात्रादिके शुभे। अग्निप्रणयनं कुर्याच्छरावे तादृशेऽपि वा। शुभ्रं पात्रं तु कांस्यं स्यात्तेनाग्निं प्रणयेद्बुतः। तस्याभावे शरावेण नवेनापि दृढेण च। शरावे भिन्न पात्रे वा कपाले चोल्मुकेऽपि वा। नाग्निप्रणयनं कुर्याद् व्याधि हानि भयावहम्। इत्यत्र शरावनिशेधकं वचनं मुख्यपात्र संभवे वेदितव्यम्। कपालं खर्प्परम्। उल्मुकं ज्वल्दग्नेरेकदेषमित्यर्थः।संपुटेनाग्निमानीय स्थाप्याग्नेर्दिशि कुण्डतः। आमक्रव्यभुजौ तस्मात्यक्त्वा कुण्डे विनिक्षिपेत्। अग्निमानीयपात्रे तु प्रक्षिपेदक्षतोदकम्। यद्येवं नैव कुर्वीत् यजमानभयावहम्। आनीतपात्रयोरेव प्लावनं तत्क्षणे भवेत्। नो चेत्कर्तुमनस्ताप स्यात्संतापस्तयोरपि अग्निनियमः उत्तमो अरणिजन्यो अग्निर्मध्यमः सूर्यकान्तजः। उत्तमः श्रोत्रियागारान्मध्यमः स्वगृहादिजः। सूर्यकान्तादरिणितः श्रोत्रियागारतोपिऽवा पात्रेण पिहिते पात्रे वह्निमेवानयेत्ततः। अस्त्रेणादाय तत्पात्रं वर्मणोद्धाटयेत्तु तम्। अस्त्र मत्रेण नैऋत्ये क्रव्यादांशं ततस्त्यजेत्। मूलेन पुरतो धृत्वा संस्कारांश्च ततश्चरेत्। त्याजाग्निः चाण्डालाग्निरमेध्याग्निः सूतकाग्निश्च कर्हिचित्। पतिताग्निश्चिताग्निश्च न शिष्टग्रहणोचितः।

'अग्निमुपसमाधाय'सूत्र के अनुसार अग्नि की स्थापना कैसे करनी चाहिये ? इस क्रम का निर्देश होता है। लौकिक, स्मार्त और श्रौत अग्नियों को आत्माभिमुख (अग्नि को अपनी ओर करके) स्थापित करना चाहिये। ताम्रादि पात्रों में पात्र से ढँककर अग्नि की स्थापना करनी चाहिये। या शराव अर्थात मिट्टी के पात्र से या शुभ्र कांस्य पात्र से या नवीन दृढ़ पात्र से अग्नि का प्रणयन किया जा सकता है।संस्कार भास्कर में लिखा गया है कि शराव पात्र में, कपाल पात्र में या उल्मुख पात्र में रखी हुयी अग्नि से अग्नि प्रणयन नहीं करना चाहिये क्योंकि उससे व्याधि एवं हानि का भय रहता है। इनमे शराव निषेध वचन मिलता है। कपाल का अर्थ खप्पर, उल्मुक पात्र का तात्पर्य पूर्व में प्रज्वलित अग्नि वाला पात्र। संपुटपात्र में अग्नि लाकर अग्नि कोण में स्थापित करके आमक्रव्यभुक अग्नि का त्याग करके अग्नि प्रणयन करना चाहिये। कुशकण्डि का भाष्य में लिखा गया है कि जिस पात्र में अग्नि को लाया जाता है उस पात्र में प्रणयन के बाद अक्षत एवं जल डालना चाहिये नहीं तो यजमान के लिये वह भयावह होता है।

जिस पात्र में अग्नि को लाया जाय उस पात्र का प्लावन तुरंत करना चाहिये। अन्यथा कर्ता के मन में एवं कराने वाले दोनों के मन में संताप होता है। अग्नि का वर्णन करते हुए कहा गया है कि अरणी जन्य अग्नि उत्तम होती है, सूर्यकान्त जन्य मध्यम एवं श्रोत्रियागार की अग्नि उत्तम तथा अपने घर की अग्नि मध्यम होती है। सूर्यकांत से या श्रोत्रिय के घर से लायी गयी अग्नि से क्रव्यादांश निकालकर अग्नि का प्रयोग करना चाहिये। मंत्र महोदधि में कहा गया है कि सूर्यकांत से या अरणी से निःसृत अग्नि को ढँक कर यत्न पूर्वक लाना चाहिये।उसके बाद मूल मंत्र से उसका संस्कार करके स्थापित करना चाहिये। त्याज्य अग्नि का वर्णन करते हुए कहा गया है कि चांडाल की अग्नि, अमेध्य, सूतकाग्नि, चिताग्नि, और पतिताग्नि को शिष्ट ग्रहण नहीं माना है।

ॐ अग्निदूतं पुरोदधे ह्त्यवाह मुपब्रुवे। देवाँ २ आसादयादिह

इस मंत्र के द्वारा अग्नि कुण्ड की प्रदक्षिणा करके स्वात्माभिमुख करके योनि मार्ग से कुण्ड में स्थापित करें। एवं अग्नि को तीन आचमन घृत से करवायें।

तद्रक्षार्थं कचिन्काष्ठं दद्यात्। अग्नि को प्रज्वलित करें।

ॐ चित् पिङ्गल हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाऽऽज्ञापय स्वाहा।

ॐ अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनं।

सुवर्ण वर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम् ।।

सप्तजिह्वा पूजन एवं अष्टाग्नि मूर्ति पूजन भी करना चाहिये। अग्नि पुराण के अनुसार पहले अग्नि के गर्भाधान से विवाह पर्यन्त १५ संस्कार कराये जाते हैं। इसके पश्चात ही अग्नि यंत्र के देवता की आहुति दें। उसके बाद यज्ञ का अधिकार मिलता है। अतः आधार होम **" प्रजापाते स्वाहादि** क्रम होम इसके बाद करें।

2.5.3 अग्निप्रज्वालन -

प्रज्वालन का अर्थ होता है अग्नि को प्रज्वलित करना (जालना) शस्त्रों में अग्नि प्रज्वालन के नियम बताए गये हैं जिसके माध्यम से अग्नि का प्रज्वालन शास्त्र सम्मत हो सकेगा और हावनादि का उचित फल प्राप्त हो सके।

न कुर्यादग्निधमनं कदाचिद्वजनादि। मुखेनैव धमेदग्निं धमन्या वेणुजातया।
जुहुतश्चाथपर्णेन पाणि शूर्पपटादिना। कुर्याड्ग्निधमनं कदाचिद्वयजनादिना।

अर्थात पंखे से अग्नि को प्रज्वलित नहीं करना चाहिये। मुख से अथवा वेणु धमनी (बांस की धमनी) से अग्नि को प्रज्वलित किया जा सकता है। वेणु धमनी का प्रयोग उचित एवं शास्त्र सम्मत है। पत्ते से, हाथ से, सूप से, पंखे से, अग्नि को प्रज्वालन करने का निषेध है।

पर्णेनैवभवेद्व्याधिः शूर्पेणधननाशनम्। पाणिना मृत्युमाप्नोति पटेन विफलं भवेत्।
व्यजनेनातिदुःखाय आयुः पुण्यं मुखाद्धमात् । पाणिना मृत्युमाप्नोति पटेन विफलं भवेत्।

पत्ते से अग्नि जलाने से व्याधि का भय होता है, सूप से धन का नाश होता है, हाथ से मृत्यु की प्राप्ति का भय, एवं पटे से अग्नि प्रज्वालन से विफलता की प्राप्ति होती है। मुख से अग्नि का धमन करना चाहिये। क्योंकि मुख से अग्नि की उत्पति हुयी है। लौकिक में मुख से अग्नि धमन देखा जाता है। वेणु से अग्नि की उत्पत्ति हुयी है, अतः वेणु (वेणु अर्थात बांस की फोफी) से अग्नि धमन करना चाहिये।

यो अनर्चिषि जुहोत्यग्नौ व्यंगारिणि च मानवः। मन्दाग्निश्चामयावी च दरिद्रश्चैव जायते।
तस्मातसमिद्धे होतव्यं नासमिद्धे कथंचन। आरोग्यमिच्छतायुश्च श्रियमात्यन्तिकीं पराम्।

अर्थात जो अग्नि की पूजा किये बिना हवन किया करते हैं अथवा बिना अंगार वाली अग्नि में हवन करते हैं, वह मंदाग्नि वाला एवं दरिद्र होते हैं। अतः आरोग्य, आयु, श्रिय, एवं मुक्ति की इच्छा रखने वाले को ठीक ढंग से प्रज्वलित अग्नि में हवन करना चाहिये। अप्रज्वलित अग्नि में कभी भी हवन नहीं करना चाहिये।

2.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान चुके होंगे कि कुण्डमण्डप आदि निर्माण हेतु उचित भूमि का विचार करके पञ्च भू संस्कार पूर्वक यज्ञों को पूर्ण किया जाता है। यज्ञादि में

पञ्च भू संस्कार कुण्ड अथवा स्थण्डिल में किया जाता है। यज्ञ हेतु उत्तम भूमि का ही चयन करना चाहिये। तभी उसका उत्तम फल प्राप्त होता है। शस्त्रों में उत्तम भूमि के अनेक लक्षणों के विषय में चर्चा की गई है। जैसे कि उत्तम एवं सुगंधित भूमि को ब्राह्मणी कहा जाता है, रक्त वर्ण से गंध युक्त भूमि को क्षत्रिय कहा जाता है, मधु गंध से युक्त भूमि को वैश्या कहा जाता है और मद्य से युक्त गंध वाली भूमि को इन तीनों से पृथक कहा जाता है।

सुगन्धा ब्राह्मणी भूमि, रक्त गन्धा तु क्षत्रिया।
मधुगन्धा भवेद्वैश्या, मद्यगन्धा च शूद्रिका॥

मधुर रस से युक्त भूमि को ब्राह्मणी कहा जाता है। कषाय रस से मिश्रित भूमि को क्षत्रिय कहा जाता है। अम्लरसयुक्त भूमि को वैश्य कहा जाता है। तिक्त रस युक्त भूमि को शूद्र कहा जाता है। भूमियों के फलों का भी अलग महत्व है जैसा कि ब्राह्मणी भूमि सुखदा, क्षत्रिय भूमि राज्य प्रदा, वैश्य भूमि धन धान्यकरी, और इनसे अतरिक्त भूमि त्याज्य होती है। इत्यादि का आपने इस इकाई में अध्ययन किया। साथ ही आपने यह अग्नि स्थापन विधि का भी अध्ययन किया कि **'अग्निमुपसमाधाय'**सूत्र के अनुसार अग्नि की स्थापना कैसे करनी चाहिये ? इस क्रम का निर्देश होता है। लौकिक, स्मार्त और श्रौत अग्नियों को आत्माभिमुख (अग्नि को अपनी ओर करके) स्थापित करना चाहिये। ताम्रादि पात्रों में पात्र से ढँककर अग्नि की स्थापना करनी चाहिये। या शराव अर्थात मिट्टी के पात्र से या शुभ्र कांस्य पात्र से या नवीन दृढ़ पात्र से अग्नि का प्रणयन किया जा सकता है। संस्कार भास्कर में लिखा गया है कि शराव पात्र में, कपाल पात्र में या उल्मुख पात्र में रखी हुयी अग्नि से अग्नि प्रणयन नहीं करना चाहिये क्योंकि उससे व्याधि एवं हानि का भय रहता है। इनमे शराव निषेध वचन मिलता है। कपाल का अर्थ खप्पर, उल्मुक पात्र का तात्पर्य पूर्व में प्रज्वलित अग्नि वाला पात्र। संपुटपात्र में अग्नि लाकर अग्नि कोण में स्थापित करके आमक्रव्यभुक अग्नि का त्याग करके अग्नि प्रणयन करना चाहिये। कुशकण्डि का भाष्य में लिखा गया है कि जिस पात्र में अग्नि को लाया जाता है उस पात्र में प्रणयन के बाद अक्षत एवं जल डालना चाहिये नहीं तो यजमान के लिये वह भयावह होता है। एवमेव प्रकार से आपने इस इकाई में पञ्च भू संसकार, अग्निस्थापन विधि, अग्नियों के नाम एवं अग्निप्रज्वालन इत्यादि का अध्ययन किया।

2.7 पारिभाषिक शब्दावली

- प्रणयन -पूरा करना
- अक्षत - चावल
- वेणु - बांस / बांस की वंशी
- पृथक - अलग
- विफलता - निष्फल / असफल
- यत्न - प्रयास
- त्याज्य - छोड़ने योग्य
- कृमि - कीड़ा

- अरणी - लकड़ी का एक ब्लॉक की जोडी, जिसका उपयोग घर्षण द्वारा आग जलाने के लिए किया जाता है।
- निषेध - माना करना / रोकना / बाधा

अभ्यास प्रश्न 2

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिये।

1 लौकिक अग्नियों में किस नाम की अग्नि को प्रथम माना गया है ?

(क) पावक
(ख) जठर
(ग) दक्षिणाग्नि
(घ) आह्वानीयाग्नि

2 अग्नि की जिह्वाओं की संख्या हैं।

(क) दो
(ख) चार
(ग) तीन
(घ) सात

3 घर की अग्नि होती है।

(क) उत्तम
(ख) मध्यम
(ग) अधम
(घ) इनमे से कोई नहीं

4 जिस पात्र में यज्ञ हेतु अग्नि को लाया जाता है उस पात्र में प्रणयन के बाद क्या रखना चाहिये।

(क) तेल, दूध
(ख) आटा, नमक
(ग) अक्षत, चावल
(घ) इनमे से कोई नहीं

5 पत्ते से अग्नि जलाने से किस का भय होता है ?

(क) व्याधि
(ख) धन हानि
(ग) कुष्ट रोग
(घ) इनमे से कोई नहीं

(2) रिक्तस्थानों की पूर्ति कीजिये।

1 लौकिक, स्मार्त और श्रौत अग्नियों को----------स्थापित करना चाहिये।

2 संस्कार भास्कर में लिखा गया है कि शराव पात्र में, कपाल पात्र में या ----------पात्र में रखी हुयी अग्नि से अग्नि प्रणयन नहीं करना चाहिये।

3 काली या कराली में नामक जिह्वा में ---------- कर्म करना चाहिये।

4 गर्भाधान संस्कार में ---------- नाम की अग्नि का आवाहन होता है।

5 गार्हपत्याग्नि, दक्षिणाग्नि एवं आह्वानीयाग्नि ये तीनों----------की अग्नियाँ हैं।

(3) सही गलत का चयन कीजिये।

1 मुख से अग्नि का धमन करना चाहिये। क्योंकि मुख से अग्नि की उत्पति हुयी है। ( )

2 वेणु धमनी का प्रयोग उचित एवं शास्त्र सम्मत है। ( )

3 कि जिस पात्र में अग्नि को लाया जाता है उस पात्र में प्रणयन के बाद अक्षत एवं जल डालना चाहिये नहीं तो यजमान के लिये वह भयावह होता है। ( )

4 संस्कार भास्कर में लिखा गया है कि शराव पात्र में, कपाल पात्र में या उल्मुख पात्र में रखी हुयी अग्नि से अग्नि प्रणयन करना चाहिये। ( )

5 पत्ते से, हाथ से, सूप से, पंखे से, अग्नि को प्रज्वालन करने का विधान है। ( )

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1 - (क), (ख), (ग), (क), (ग)

2- क्षत्रिय, जनार्दन, योनि, यज्ञोपवीत, धेनु

3- सही, सही, गलत, सही, गलत

अभ्यास प्रश्न 2

1- (क), (घ), (ख), (ग), (क)

2- आत्माभिमुख, उल्मुख, पौष्टिक, मारुत, अग्निहोत्र

3- सही, सही, सही, गलत, गलत

2.9 संदर्भ सूची ग्रंथ

1. सर्वकर्म अनुष्ठान प्रकाश – पं रमेश चंद्र शर्मा 'मिश्र'

2. कर्मकाण्ड भास्कर – श्रीराम शर्मा आचार्य

3. स्तोत्र पाठ एवं होम विधि, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

2.10 अन्य सहायक पुस्तकें

1. नित्य कर्म पूजा प्रकाश

2. बृहद कर्मकाण्ड

3. कर्मकाण्ड प्रदीप

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. पञ्च भू संस्कार का विस्तार से वर्णन कीजिये।

2. अग्नि स्थापन विधि का वर्णन कीजिये।

2. अग्निप्रज्वालन से आप क्या समझते हैं ? विस्तार से वर्णन कीजिये।

इकाई 3 कुश कण्डिका विधि

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 कुश कण्डिका में प्रयुक्त पात्र एवं समिधाएँ
3.3.1 कुश कण्डिका विचार
3.4 कुश कण्डिका विधि
3.5 सारांश
3.6 पारिभाषिक शब्दावली
3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.8 संदर्भ सूची ग्रंथ
3.9 अन्य सहायक पुस्तकें
3.10 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों !

प्रस्तुत इकाई कुश कण्डिका विधि से संबंधित है । इस इकाई में आप कर्मकाण्ड में अनुष्ठान इत्यादि की सम्पन्नता हेतु हवन का विधान के विषय में अध्ययन करेंगे । हवन कार्य का प्रारंभ अग्नि स्थापना से होता है। अग्नि स्थापना के पश्चात् कुश कण्डिका कृत्य किया जाता है । कुश कण्डिका का अर्थ है कुश से की जाने वाली पवित्र क्रिया। पारस्कर गृह्यसूत्र में भी कहा गया है कि— **"एष एव विधिर्यत्र क्वचिद्धोमः"** जहाँ कहीं भी हवन होता है वहाँ कुश कण्डिका विधि का प्रयोग करना चाहिये। इस विधि के माध्यम से अग्नि एवं अग्नि में डाले जाने वाले समस्त पदार्थों को सुसंस्कृत किया जाता है । जैसे कि चरु स्थाली के लिए कहा गया है कि- चरुस्थली दृढ हो, प्रादेश मात्र ऊँची हो, ताम्र पात्र अथवा मिट्टी की होनी चाहिये परंतु बृहद्मुख वाली का निषेध माना गया है । सम्मार्जन कुशा- स्रुवा सम्मार्जन हेतु पाँच अथवा तीन कुशाओं का प्रादेश मात्र लंबा परिमाण ग्रहण करना चाहिये । कुश कण्डिका विधान में सर्वप्रथम आज्यादि विचार पर चर्चा करते हैं । पूजन, यज्ञादि में गाय का घृत उत्तम माना गया है, महिष का घृत मध्यम माना गया है, बकरी का घृत अधम बताया गया है।— **"उत्तमं गोघृतं प्रोक्तं मध्यमं महिषी भवम् । अधमं छागलीजातं तस्माद् गव्यं प्रशस्यते ।"** पूजन यज्ञादि में गाय के घृत का प्रयोग ही सर्वत्र देखा जाता है, भारतीय कर्मकाण्ड पद्धति में गौ पूजन, गौ दान इत्यादि के विशिष्ट महत्व भी है । इसके बाद चरु विचार में कहा गया है कि—

"त्रिभिः प्रक्षालितं दैवे सकृत्पित्र्ये च कर्मणि ।
पात्रासादनकाले च तेषां प्रक्षालनं भवेत् ।"
"हविष्येषु युवा मुख्यास्तदनु ब्रीहयः स्मृता ।
यथेक्तवस्त्वसंपत्तौ ग्राह्यौ तदनुकारि यत् ।
यवानामिवगोधूमा ब्रीहिणमिवशालयः।
अभावे ब्रीहियवयोः दध्ना वा पयसापि वा ।"

देव कार्य में तीन बार और पितृ कार्य में एक बार पात्रासादन काल में चरु द्रव्यों का प्रक्षालन होता है । हविर्द्रव्यों में यव को प्रमुख माना गया है । उसके बाद ब्रीहि मुख्य है । यव के समान ही गेंहू एवं ब्रीहि के समान चावल है । यदि ब्रीहि और यव के अभाव हो तो ऐसे में दधि अथवा दूध का प्रयोग भी कर सकते हैं । पूर्णपात्र के संदर्भ में कहा गया है कि— अकृते पूर्णपात्रे च छिद्रयज्ञः प्रजायते । पूर्णपात्रे च सम्पूर्णे सर्वं संपूर्णता भवेत् । पूर्णपात्र रहित यज्ञ छिद्र वाला होता है । अतः संपूर्णता के लिए पूर्णपात्र अनिवार्य रूप से होना चाहिये । पूर्णपात्र कैसा होना चाहिये ? इस विषय में कहा गया है कि पूर्णपात्र यव अथवा ब्रीहि से पूर्ण होना चाहिये इत्यादि । यज्ञ में दी जाने वाली आहुतियाँ हमारे द्वारा आवाहित देवताओं को प्राप्त होती हैं । देवता इन आहुतियों को गृहण करते हैं । अतः हवन की अग्नि में डालने वाले पदार्थों का सुसंस्कृत होना नितांत आवश्यक है। इसलिए कुश कण्डिका विधि की जाती है ।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप–

- कुश कण्डिका के सम्पादनार्थ शास्त्रीय विधि निरूपण के विषय में जान सकेंगे ।

- कुश कण्डिका में प्रयुक्त पात्र एवं समिधाओं का उचित चयन कर सकेंगे।
- कुश कण्डिका के सम्पादन में व्याप्त अंधविश्वास एवं भ्रांतियों को दूर करने में समर्थ होंगे।
- कुश कण्डिका विधि को सरलता से समझना एवं समाज में व्याप्त भ्रांतियों का निवारण कर सकेंगे।
- यज्ञादि के विधि विधान के जान सकेंगे।

3.3 कुश कण्डिका में प्रयुक्त पात्र एवं समिधाएँ

कुश पवित्रता और प्रखरता के प्रतीक माने जाते हैं। कुश कण्डिका के अंतर्गत निर्धारित क्षेत्र के चारों दिशाओं में कुश बिछाये जाते हैं। बड़े यज्ञों और विशिष्ट कर्मकाण्डों में यज्ञशाला, यज्ञकुण्ड अथवा पूजा क्षेत्र के चारों ओर मंत्रों के साथ कुश स्थापित किये जाते हैं। कुश कण्डिका में प्रयुक्त होने वाले पत्रों और वृक्षों का परिचय इस प्रकार से है–

चरुस्थाली— चरुस्थाली दृढा प्रादेशमात्रोर्ध्वम् तिर्यंग नाति बर्हन्मुखी। मृन्मयौदुम्बरी वापि चरुस्थाली प्रशस्यते।

चरु स्थाली के लिए कहा गया है कि -चरुस्थली दृढ हो , प्रादेश मात्र ऊँची हो , ताम्र पात्र अथवा मिट्टी की होनी चाहिये परंतु बृहद्मुख वाली का निषेध माना गया है।

सम्मार्जन कुशा— सम्मार्जनकुशानाह बादरायणः स्रुवसम्मार्जनार्थाय पंच वाथ त्रयोऽपि वा। प्रादेशमात्रान्गृह्णीयात्सम्मार्जन कुशं संज्ञकान्।

सम्मार्जन कुशा— स्रुवा सम्मार्जन हेतु पाँच अथवा तीन कुशाओं का प्रादेश मात्र लंबा परिमाण ग्रहण करना चाहिये।

उपयमन कुशा – उपयमन कुशाः सप्त पञ्च वाथ त्रयोऽपि वा।

उपयमन कुशा— उपयमन कुशा में सात, पाँच या तीन कुशाओं का समूह होता है।

समिद्दृक्षा: - समिद्दृक्षानाह मरीचिः पलाशः खदिरोऽश्वत्थ शमी वट उदुम्बरः। अपामार्गार्क दूर्वाश्च कुशाश्चेत्यपरे विदुः। शमीपलाशन्यग्रोधप्लक्षवैकंकतोद्भवा:। अश्वत्थोदुम्बरौ बिल्वश्चन्दनस्सरलस्तथा। सालश्चदेवदारुश्च खदिरश्चैव यज्ञियाः।

समिधा— समिधा हेतु मरीच ने पलाश, खैर, पीपल, शमी, वड़, गूलर, चिचिड़ी, दूर्वा, कुशा, को बताया है। अन्य आचार्यों ने इनके अतरिक्त पाकड़, बिल्व, चन्दन, आम, साल, देवदारु, को भी समिधा हेतु माना है।

स्रुव स्रुवलक्षणम्— खदिरादेः स्रुवः कार्यो हस्तमात्रप्रमाणतः। अङ्गुष्ठपर्वखातं तत्रिभागं दीर्घपुष्करम् शमीमयः स्रुवः कार्यस्तदलाभेऽन्यवृक्षजः। खादिरस्तु स्रुवः कार्यः सर्वकामार्थ सिद्धये।

स्रुवा— स्रुवा का विचार करते हुए कहते हैं कि स्रुवा खैर की लकड़ी का एक हाथ का हो और अंगुष्ठ पर्व के बराबर गड्ढा वाला होना चाहिये। खैर के अभाव में शमी की लकड़ी का बनाया जाना चाहिये। यदि शमी की लकड़ी न हो तो अन्य लकड़ियों का भी बनाया जा सकता है। परंतु सभी कामनाओं की सिद्धि हेतु खैर का स्रुवा उचित माना गया है।

स्रुवे देवता विचार— स्रुवोन्तष्चतुर्विंशः स्यात्षड्देवास्तत्र संस्थिता:। अग्निरुद्रौ यमश्चैव विष्णुः शक्रः प्रजापतिम्। विष्णु स्थाने च हूयेत एवं कर्म शुभप्रदम्।

स्रुवा में देवता का विचार— देवता का विचार करते हुए कहा गया है कि अंगुल के स्रुव मे अग्नि, रुद्र, यम, विष्णु, इन्द्र, प्रजापति इन छः देवताओं का निवास बताया गया है। विष्णु जी के स्थान में धारण करना शुभप्रदायक माना गया है।

स्रुवधारणफलम्— अग्रे धृत्वा तु वैधव्यं मध्ये धृत्वा प्रजाक्षयः। मूले च म्रियते होता स्रुवस्थानं कथं भवेत्। अग्रान्मध्यस्तु यन्मध्यं मूलान्मध्यस्तु मध्यमः। स्रुवः च धारयेद्विद्वानायुरारोग्यदं सदा।

स्रुवा धारण का फल— स्रुवा धारण करने के फलों के अंतर्गत बताया गया है कि स्रुवा को आगे से पकड़ने से वैधव्य की प्राप्ति, मध्य में पकड़ने से सन्तान क्षय और मूल में धारण कर आहुतियाँ देने से हवन करने वाले की मृत्यु का भय। अतः अग्र एवं मध्य का मध्य भाग तथा मध्य एवं मध्य का भाग स्रुव का धारण कर हवन करने से आयु एवं आरोग्यता की प्राप्ति होती है। अग्नि, सूर्य, सोम, ब्रह्मा, वायु, एवं यम चार-चार अंगुल के अंतर पर स्रुव में पाये जाते हैं। अग्नि से अर्थनाश होता है, सूर्य भाग से व्याधि, सोम भाग से निष्फलता, ब्रह्मा से सर्व कामना की प्राप्ति, वायु भाग से रोग एवं यम् भाग से मृत्यु का भय होता है

अरत्निमात्रकः स्रुवः— खादिरेण स्रुवः कार्यः पालाशेन जुहूर्भवेत्। तदभावे पलाशस्य पर्णाभ्यां हूयते हविः। पलाशपर्णाभावे तु पर्णैर्वा पिप्पलोद्भवैः। पलाशपर्णं मध्यमं ग्राह्यम् मध्यमेन पर्णेन जुहोति इति श्रुति।

खदिर का स्रुवा एवं पलाश का जुहू बनाना चाहिये यदि उसका अभाव हो तो पलाश के पत्ते से हवन करना चाहिये। पलाश के पत्ते के अभाव में पीपल आदि किसी भी पत्ते का प्रयोग किया जा सकता है।

स्रुचिधारणे कारिका— अग्निः सोमो हरिर्ब्रह्मा वायुः कीनाश एव च। षडंगुलविभागेन स्रुचि देवा व्यवस्थिताः।

स्रुचि धारण कारिका— अग्नि, सोम, हरि, ब्रह्मा, वायु, एवं यमराज छः अंगुल के विभाग में स्रुचि में देवता के रूप में व्यवस्थित होते हैं।

स्रुचिस्वरूपम् —

षट्त्रिंशांगुलं स्रुचं कारयेद् खदिरादिभिः। कर्दमे गोपदाकारं पुष्करं तद्वदेव हि।
पुष्कराग्रं षडंशं तु खातं द्वयंगुलविस्तृतम्। अंगुष्ठैकं स्थूलतरे दण्डे तस्य च कंकणम्।

स्रुचि का स्वरूप— स्रुचि के स्वरूप के क्रम में कहा गया है कि खदिर की समिधा से छतीस अंगुल का स्रुचि बनाना चाहिये। एक अंगुष्ठ के बराबर दण्ड के षष्ठांश में दो अंगुल का विस्तृत खात होना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न 1

अधोलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिये।

1. कुश ---------- के प्रतीक माने जाते हैं।

(क) दया, (ख) प्रेम, (ग) पवित्रता, (घ) धन

2. स्रुचि के स्वरूप के क्रम में कहा गया है कि खदिर की समिधा से----------अंगुल का स्रुचि बनाना चाहिये।

(क) छतीस, (ख) पैंतीस, (ग) चालीस, (घ) पैंतालीस

3. चारुस्थली के अंतर्गत ---------- का निषेध है।

(क) ताम्र, (ख) बृहद्मुख, (ग) मिट्टी, (घ) पीतल

4. उपयमन कुशाः ----------वाथ त्रयोऽपि वा।

(क) सप्त पञ्च, (ख) त्रयः चत्वारः, (ग) एकादश, (घ) अस्ठ नव

5. ---------- कुशा में सात, पाँच या तीन कुशाओं का समूह होता है।

(क) चरुस्थली, (ख) उपयमन, (ग) सम्मार्जन, (घ) दूर्वा

6. स्रुवसम्मार्जनार्थाय ---------- वाथ त्रयोऽपि वा।

(क) पञ्च, (ख) दश, (ग) एकादश, (घ) द्वादश

7. स्रुवा खैर की लकड़ी का एक हाथ का हो और-------- के बराबर गड्ढा वाला होना चाहिये।

(क) तर्जनी, (ख) मध्यमा, (ग) अनामिका, (घ) अंगुष्ठ

8. अग्निः सोमो हरिर्ब्रह्मा वायुः कीनाश एव च। षडंगुलविभागेन ----------व्यवस्थिताः।

(क) स्रुचि देवा, (ख) शमीमयः, (ग) उपयमन (घ) दूर्वाश्च

9. खादिरेण स्रुवः कार्यः ---------जुहूर्भवेत्।

(क) दूर्वाश्च, (ख) पालाशेन, (ग) शमी, (घ)पीपलादि

10. ----------दृढा प्रादेशमात्रोर्ध्वम् तिर्यंग नाति बर्हन्मुखी।

(क) चारुस्थाली, (ख) उपयमन, (ग) सम्मार्जन, (घ) दूर्वाश्च

3.3.1 कुश कण्डिका विचार–

कुश कण्डिका विधान में सर्वप्रथम आज्यादि विचार पर चर्चा करते हैं।पूजन, यज्ञादि में गाय का घृत उत्तम माना गया है, भैंस का घृत मध्यम माना गया है, बकरी का घृत अधम बताया गया है। **उत्तमं गोघृतं प्रोक्तं मध्यमं महिषी भवम्। अधमं छागलीजातं तस्माद् गव्यं प्रशस्यते।** पूजन,यज्ञादि में गाय के घृत का प्रयोग ही सर्वत्र देखा जाता है, भारतीय कर्मकाण्ड पद्धति में गौ पूजन, गौ दान इत्यादि के विशिष्ट महत्व भी है। इसके बाद चरु विचार में कहा गया है कि –

त्रिभिः प्रक्षालितं दैवे सकृत्पित्र्ये च कर्मणि। पात्रासादनकाले च तेषां प्रक्षालनं भवेत्। हविष्येषु युवा मुख्यास्तदनु ब्रीहयः स्मृता। यथेक्तवस्त्वसंपत्तौ ग्राह्यौ तदनुकारि यत्। यवानामिवगोधूमा ब्रीहिणमिवशालयः। अभावे ब्रीहियवयोः दध्ना वा पयसापि वा।

देव कार्यमें तीन बार और पितृ कार्य में एक बार पात्रासादन काल में चरु द्रव्यों का प्रक्षालन होता है। हविर्द्रव्यों में यव को प्रमुख माना गया है। उसके बाद ब्रीहि मुख्य है। यव के समान ही गेंहू एवं ब्रीहि के समान चावल है। यदि ब्रीहि और यव के अभाव हो तो ऐसे में दधि अथवा दूध का प्रयोग भी कर सकते हैं। पूर्णपात्र के संदर्भ में कहा गया है कि- **अकृते पूर्णपात्रे च छिद्रयज्ञः प्रजायते। पूर्णपात्रे च सम्पूर्णे सर्वं संपूर्णता भवेत्।** पूर्णपात्र रहित यज्ञ छिद्र वाला होता है। अतः संपूर्णता के लिए पूर्णपात्र अनिवार्य रूप से होना चाहिये। पूर्णपात्र कैसा होना चाहिये ? इस विषय में कहा गया है कि पूर्णपात्र यव अथवा ब्रीहि से पूर्ण होना चाहिये।

अष्टमुष्टिर्भवेत्किञ्चित् किंचिदष्टौ च पुष्कलम्। पूर्णपात्रे च संपूर्णे सर्वं संपूर्णता भवेत्। यावतान्ने भोक्तुस्तु तृप्तिः पूर्णैव जायते। तद्वरार्थमतः कुर्यात् पूर्णपात्रमिति स्थितिः।। यवैर्वा ब्रीहिभिर्पूर्णम् भवेत्पूर्णपात्रकम्। वराभिलषितं द्रव्यं सारभूतं तदुच्यते।

एक किंचित् आठ मुठ्ठी का होता है, आठ किंचित् का एक पुष्कल होतो है, और चार पुष्कल से युक्त एक पूर्णपात्र होता है। जितने अन्न से मात्र से भोजन करने वाले की तृप्ति हो जाती है, उतने ही अन्न को पूर्णपात्र कहा जाता है। पवित्र करण के संदर्भ में कहा गया है कि – **पवित्रे कृत्वा इति सूत्रम्। प्रथमं त्रिभिः कुशतरुणैरग्रतः प्रादेशमात्रं विहाय द्वे कुशतरुणे**

प्रतिच्छिद्य इति हरिहरः ।एवमासादनं कृत्वा पवित्रिच्छेदने कुशैः । अङ्गुष्ठागुलिपर्वभ्यां छिन्द्यात्प्रादेशसम्मितम् । इति अङ्गुलिरनामिकापर्व ।पवित्रकनिर्माण हेतु हरिहर जी का कथन है कि प्रथम तीन तरुण कुशों के आगे से प्रादेश मात्र छोड़कर दो कुशों से छेदन करना चाहिये। पवित्रिच्छेदन हेतु अंगूठे और अनामिका अंगुलि से विधान बताया गया है। प्रोक्षणी के संस्कार के विषय में कहा गया है कि-

प्रोक्षणीपात्रं प्रणीता सन्निधौ निधाय तत्र पात्रान्तरेण हस्तेन वा प्रणीतोदकमासिच्य पवित्राभ्यामुत्पूय पवित्रे प्रोक्षणीषु निधाय दक्षिणेन हस्तेन प्रोक्षणीपात्रमुत्थाप्य सव्ये कृत्वा तदुदकं दक्षिणेनोच्छाल्य प्रणीतोदकेन प्रोक्ष्य इति । हरिहरभाष्यम् प्रोक्षणी पात्र को प्रणीता के समीप में रखकर दायें हाथ से प्रोक्षणी पात्र को उठाकर बायें हाथ में रखकर उसके जल को दायें हाथ से ऊपर उछालकर प्रणीता के जल से प्रोक्षणी का प्रोक्षण किया जाता है।

प्रोक्षण के विषय में कहा गया है कि-

अथर्वत्प्रोक्ष्य इति सूत्रम्। अर्थवन्ति प्रयोजनवन्ति आज्यस्थाल्यादीनि पूर्णपात्रपर्यन्तानि प्रोक्षणीभिरद्भिरासादनक्रमेणैकैकशः प्रोक्ष्य असंचरे प्रणीताग्न्योरन्तराले प्रोक्षणीपात्रं निधाय इति हरिहर भाष्यम् । कारिकायां पत्राणि क्रमशः प्रोक्ष्य निदध्यात्तामसंचरे । असंचरः प्रणीताग्न्ययोरन्तरेण प्रकीर्तितः ।

यज्ञ निमित वहाँ पर जितने भी पदार्थ हों उन सभी पदार्थों या वस्तुओं का प्रोक्षणी के जल से प्रोक्षण किया जाना चाहिये। सर्वप्रथम प्रोक्षणी का प्रोक्षण करके उसे अग्नि और प्रणिता के बीच स्थापित कर अन्य यज्ञ पात्रों का एवं पदार्थों का प्रोक्षण करना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न 2

अधोलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिये।

1. पूजन, यज्ञादि में गाय के घृत को ---------- माना गया है।

(क) अधम (ख) मध्यम (ग) त्याज्य (घ) उत्तम

2. ----------प्रक्षालितं दैवे सकृत्पित्र्ये च कर्मणि।

(क) पञ्च (ख) त्रिभिः(ग) चतुर्थः (घ) प्रथमं

3. यदि ब्रीहि और यव के अभाव हो तो ऐसे में----------का प्रयोग भी कर सकते हैं।

(क) दधि अथवा दूध (ख) तेल (ग) आटा (घ) धान

4. अकृते पूर्णपात्रे च छिद्रयज्ञः प्रजायते। पूर्णपात्रे च सम्पूर्णे सर्वं----------भवेत्।

(क) छिद्र (ख) संपूर्णता (ग) हविः (घ) अल्पज्ञता

5. पूर्णपात्र रहित यज्ञ ---------- वाला होता है।

(क) उत्तम (ख) छिद्र (ग) आयुवर्द्धक (घ) यशवर्धक

6. एक किंचित् आठ मुट्ठी का होता है, आठ किंचित् का एक पुष्कल होतो है, और चार पुष्कल से युक्त एक ---- होता है।

(क) प्रोक्षणी (ख) प्रणीता (ग) पूर्णपात्र (घ) कुण्ड

7. यज्ञ निमित वहाँ पर जितने भी पदार्थ हों उन सभी पदार्थों या वस्तुओं का---------- के जल से प्रोक्षण किया जाना चाहिये।

(क) कुशा (ख) पूर्णपात्र (ग) प्रोक्षणी (घ) कलश

8. उत्तमं गोघृतं प्रोक्तं मध्यमं महिषी भवम्। अधमं छागलीजातं तस्माद् ---------- प्रशस्यते।

(क) गव्यं (ख) प्रोक्षणी (ग) पूर्णपात्र (घ) ब्रीहः

9. उत्तमं गोघृतं प्रोक्तं मध्यमं ---------- भवम्।

(क) अजा (ख) मृग: (ग) उष्ट्र: (घ) महिषी

10. यवानामिवगोधूमा ब्रीहिणमिवशालयः। अभावे ब्रीहियवयोः ----------वा पयसापि वा।

(क) दध्ना (ख) प्रणिता (ग) प्रोक्षणी (घ) यव

3.4 कुश कण्डिका विधि

कुशकण्डिका का अर्थ है कुश से की जाने वाली पवित्र क्रिया। इस क्रिया को कैसे ठीक ढंग से संपादित किया जाये उसी के लिये शास्त्रों में विधान बताये गये हैं। उसकी एक व्यवस्थित विधि का क्रम है जिसे कुशकण्डिका विधि कहा जाता है।कुशकण्डिका कृत्य में "**दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तीर्य इति सूत्रम्**" के अनुसार अग्नि के दक्षिण दिशा में ब्रह्मा हेतु यज्ञ की समिधाओं से निर्मित आसन बिछाना चाहिये। उस आसन पर तत्वज्ञ ब्रह्मा विराजमान हों। यदि ब्रह्मा का अभाव हो तो हरिहर जी के कथनानुसार **"ब्राह्मणं तदभावे पञ्चासतकुशनिर्मितमुपवेश्य इति हरिहर भाष्यम्"**पचास कुशाओं से निर्मित ब्रह्मा को विराजमान किया जा सकता है। अग्नि के दक्षिण में ब्रह्मा का आसन विराजित कर उस पर कुश बिछायें। ब्रह्मा का आसन वारण या विकंकत अर्थात कंटाई की लकड़ी का निर्मित होना चाहिये।यह आसन एक हाथ का चतुरस्र हो, छब्बीस आँगुल विकंकत का भी निर्मित किया जा सकता है। इसके पश्चात "**ब्रह्मा भवामि चेत्युक्त्वा गच्छेदग्नेस्तु पूर्वत:**"ब्रह्मा होऊँ ऐसा कहकर ब्रह्मा अपने आसन पर विराजमान हो जायें। ब्रह्मा को दक्षिण दिशा में विराजमान क्यों किया जाता है ? इस संदर्भ में कहा गया है कि –

दक्षिणे दानवाः प्रोक्ता: पिशाचो रगराक्षसाः। तेषां संरक्षनार्थाय ब्रह्मा तिष्ठति दक्षिणे। अर्थात् दक्षिण में दानव, पिशाच, एवं राक्षस इत्यादि रहते हैं। अतः उनसे रक्षा हेतु ब्रह्मा को दक्षिण में विराजमान किया जाता है। ब्रह्मा के विषय में कहा गया है **" वेदैकनिष्ठं धर्मज्ञं कुलीनं श्रोत्रियं शुचिम्। स्वशाखाठयमनालस्यं विप्रं कर्तारमीप्सितम्**। ब्रह्मा ऐसा हो जो वेद में एक निष्ठ, धर्मज्ञ कुलीन श्रोत्रिय पवित्र एवं अपने शाखाध्ययन में आलस्य न करने वाला विप्र होना चाहिये। ब्रह्मा के वरणार्थ अलंकार इत्यादि के क्रम में कहा गया है कि दो वस्त्र, केयूर, कर्णभूषण, अंगुलिभूषण, मणिबंध, भूषण कंठाभरण इत्यादि होनाचाहिये। विप्र के अभाव में बताया गया है **"कुशग्रन्थिमयं विप्रं ब्रह्माणमुपवेशयेत्।"** यदि विप्र का अभाव हो तो कुश या दर्भ का ब्रह्मा बनाने का विधान बताया गया है, इस कुश को ग्रन्थियुक्त करके निर्मित किया जाता है। कहा गया है कि पचास कुशे का ब्रह्मा निर्मित होता है तथा उसके आधे का विष्टर बनाया जाता है। **"उर्ध्वकेशो भवेद् ब्रह्मा लम्बकेशस्तु विष्टर:"** उर्ध्वकेश ब्रह्मा एवं लम्बकेश विष्टर होता है। दक्षिणावर्त ब्रह्मा एवं वामावर्त विष्टर होता है। इसके अनंतर **"प्रणीय इति सूत्रम् अप इति शेष:"** इस सूत्र में अप शेष रहता है अर्थात जल। अग्नि के उत्तर प्रागग्र दो कुशों को आसन हेतु रखकर बारह अंगुल लम्बा, चार अंगुल चौड़ा एवं चार अंगुल गहरा चमस को बायें हाथ में करके दाहिने हाथ में स्थित जल पात्र सर पूरित कर पश्चिम के आसन पर रखकर पूर्व के आसन पर रखना चाहिये। **परिस्तीर्य इति सूत्रम्। अग्निं बर्हि मुष्टिमादाय ईशानादिप्रागग्रैर्बार्होमरुदक्संस्थमग्ने: परिस्तरणम् इति हरिहरभाष्यम्।**

अर्थात् अग्नि कुण्ड के चारों तरफ मुष्टि में कुशों को एकत्रित करके प्रागग्र करके बिछाना चाहिये। परिस्तरण हेतु बताया गया है कि दर्भहीन वेदिका को नग्न वेदिका माना जाता

है। दर्भ को वेदिका का परिधान विशेष माना गया है। एक मेखला वाले अग्नि कुण्ड में मेखला के आधे भाग में परिस्तरण करना चाहिये। दो मेखला वाले कुण्ड में दूसरी के परिस्तरण करना चाहिये तथा त्रिमेखला वाले कुण्ड में तीसरी मेखला के नीचे कुशों का आस्तरण करना चाहिये। **एकैकस्यां दिशि चत्वारो चत्वारि एवं षोडश। तच्च प्रागुदगग्रे: दक्षिणतः प्रागग्रै:, प्रत्यगुदगग्रे:, उत्तरतः प्रागग्रैरिति संस्कार भास्कारे।**

सोलाह कुशाओं का परिस्तरण यानि एक-एक दिशा में चार-चार कुशाओं को बिछाना चाहिये। पूर्व दिशा में उदग्रग, दक्षिण दिशा में प्रागग्र, पश्चिम दिशा में उदगग्र एवं उत्तर दिशा में परागग्र इस प्रकार से संस्कार भास्कर में कहा गया है। **बर्हिर्लक्षणम् कात्यायनेनोक्तम् कुशा दीर्घाश्च बर्हिष:। उपमूललूनबर्हिषां मुष्टिबर्हिः इति कुशकण्डिकाटीकाकरः।** बर्हि के लिये कहा है कि दीर्घ कुशा ब्रहि है। जिसका मूल छिन्न हो उस कुशा को भी बर्हि कहा गया है। मुष्टि में जितना कुशा आ जाता है उसे बर्हि कहा जाता है। **अर्थवादासाद्य इति सूत्रम्। यावद्धिः पदार्थेरर्थ: प्रयोजनं तावतः पदार्थान् द्वन्द्वं प्राक्संस्थान् उदगग्रानग्नेरुत्तरतः पश्चाद्वा आसाद्य इति हरिहरः।** अर्थवदासाद्य इस सूत्र की व्याख्या करते हुये आचार्य हरिहर जी कहते हैं कि यज्ञ हेतुजितने पदार्थों की तत्कार्य के लिये आवश्यकता है उतने ही पदार्थों को अग्नि के उत्तर में प्राक्संस्थ, उदक्संस्थ या पश्चिमसंस्थ रखने चाहिये। **"अंगुलद्वयमानेन द्वन्द्वं द्वन्द्वान्तरे न्यसेत्"** पदार्थों को दो-दो अंगुलों के उचित दूरी पर रखा जाता है। विद्वान लोग पात्रों का आसादन प्रादेश मात्र में कराने का निर्देश किया करते हैं।

पवित्र के लक्षण करते हुये कहते है **"अनन्तगर्भिनणम् साग्रं कौशं द्विदलमेव च। प्रादेशमात्रं विज्ञेय पवित्रं यत्र कुत्रचित्। पवित्र प्रयोजनम् इन्द्रवज्रं हरेश्चक्रं त्रिशूलं शंकरस्य च। दर्भेरूपेण त्रीणि पवित्रच्छेदनानि च।**

अनंतगर्भी कुशाओं के दलों के अग्र भाग से प्रादेश मात्र परिमाण से सर्वत्र पवित्र बनाना चाहिये। पवित्र के लिये कहा गया है कि इन्द्र का वज्र , भगवान हरि का चक्र एवं भगवान शंकर के त्रिशूल के रूप में तीन दर्भ होते हैं। जिससे पवित्री करण किया जाता है।वृत्रासुर के वध के समय यह पृथ्वी रक्त मय हो गई थी। और फिर पृथ्वी को पवित्र करणार्थ दर्भों की उत्पत्ति हुई। प्रोक्षणी के विचार में कहा गया है कि- **"प्रोक्षणी विचारः वारणं पाणिपात्रं च द्वादशांगुलविस्तृतम्।"** प्रोक्षणी वारण का बारह अंगुल विस्तृत होनी चाहिये।आज्या थाली के विचार में कहा गया है कि आज्या थाली कांस्य की हो या ताम्र की होनी चाहिये। प्रादेश मात्र दीर्घा और छिद्र रहिता होनी चाहिये। अन्य धातु की आज्या स्थाली बनाई जा सकती है, और मिट्टी की भी आज्या स्थाली बनाई जा सकती है। आज्या स्थाली में आज्या रखना चाहिये तथा चरु स्थाली में आसादित चरु पदार्थों को डालकर अधिश्रयण करना चाहिये।

तत्राज्यं ब्रह्माधिश्रयति तदुत्तरतः स्वयं चरुमेवं युग्पदग्नावारोप्य ज्वलदुल्मुकं प्रदक्षिणमाज्यचर्वोः समन्ताद्भ्रामयेत् अर्द्धश्रिते चरौ। आज्या के उत्तर में चरु को अग्नि पर चढ़ाकर जलते हुए उल्मुक से प्रदक्षिण क्रम से आज्य एवं चरु का पर्याग्निकरण करके इतरथावृति करनी चाहिये। पश्चात **"द्वयोः पर्यग्निकरणं कृत्वा दक्षिणहस्तेन स्रुवमादाय प्रांचमधोमुखमग्नौ ताप्यित्वा सव्ये पणौ कृत्वा दक्षिणेन निदध्यात्।"** दायें हाथ से स्रुव को अधो मुख अग्नि में तपाना है उसके बाद बायें हाथ रखकर दायें हाथ से सम्मार्जन कुशा के अग्र भाग से स्रुव के अग्र भाग का मध्य भाग से स्रुव के मध्य भाग का एवं अन्त्य भाग का अन्त्य भाग से मार्जन करना चाहिये। इसके पश्चात स्रुव का प्रतपन कर दक्षिण स्थान में रखना चाहिये।

इसके पश्चात आज्य को उठाकर चरु के पूर्व से लाकर अग्नि के उत्तर में स्थापित करें फिर चरु को लाकर आज्य के उत्तर में स्थापित करें। आज्य का सावधानी पूर्वक निरीक्षण करना चाहिये। यदि आज्य में कुछ भी अपद्रव्य हों तो उन्हें निकाल देना चाहिये। उपमयन कुशाओं को बायें हाथ में रखकर तीन समिधाओं को अग्नि में प्रक्षिप्त करना चाहिये। **"कुशानादाय समिधोभ्याधाय तिष्ठन्समिधः अग्नौ प्रक्षिपेत्। लाजहोमे समिद्धोमे उर्ध्वहोमे तथैव च।"** लाज होम में,समिद्धहोम और ऊर्ध्व होम में खड़े होकर हवन करना चाहिये। पश्चात सपवित्रक प्रोक्षणी के जल को चुलू में लेकर अग्नि कोण से प्रदक्षिण क्रम से ईशानादि तक सिंञ्चित करना चाहिये। पारासरगृह सूत्र में लिखा गया है कि -

अग्निमुपसमाधाय दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तीर्य प्रणीय परिस्तीर्यार्थवदासाद्य पवित्रे कृत्वा प्रोक्षणी: संस्कृत्यार्थवत् प्रोक्ष्य निरुप्याज्यमधिश्रित्य पर्यग्नि कुर्यात्। स्रुवं प्रतप्य समृज्याभ्युक्ष्य पुनः प्रतप्य निदध्यादाज्यमुद्वास्योत्पूयावेक्ष्य प्रोक्षणीश्च पूर्ववदुपयमनकुशानादाय समिधो-भ्यादाय पर्युक्ष्य जुहुयादेष एव विधिर्यत्र क्वचिद्धोमः।

अर्थात् प्रणीता के जल को प्रोक्षणी पात्र में तीन बार डालना हैं। पश्चात प्रणीता के जल से प्रोक्षणी का मार्जन करना चाहिये। इसके बाद प्रोक्षणी पात्र को प्रणीता पात्र वाले आसन पर रखकर प्रणीता का जल सभी आसादित वस्तुओं पर छिड़कना चाहिये। फिर यज्ञ की अग्नि एवं प्रणीता के बीच प्रोक्षणी पात्र को रख दें। इसके पश्चात घी को देखें, यज्ञ अग्नि के पृष्ट में रखे आज्य स्थाली में डालकर अग्नि में घी को पिघलाना चाहिये। उसके बाद प्रयग्नि हेतु जलती हुयी समिधा की लकड़ी को चरुपात्र आच्य स्थाली के चारों ओर घुमाकर पिघलाना चाहिये। अधोमुख स्रुव को होमाग्नि में तपाकर मूल भाग से अंत तक संम्मार्जन कुशा से उसे झाड़कर, प्रणीता के जल से उसे अभि सिंचित करके पूर्व की ही भांति अग्नि में तपाकर वेदी के दाहिने ओर रख देना चाहिये। घी के पात्र को भी अग्नि से उतार कर जाँच कर लेनी चाहिये कि घी में कोई अपद्रव्य तो नहीं है यदि हो तो उसे निकाल देना चाहिये। उपयमन नामक कुशों को दायें हाथ से उठाकर बायें हाथ में लेकर आग में समिधायें डालकर जल छिड़कना चाहिये। इन सभी पवित्र कर्मों के पश्चात हवनकरना चाहिये।

3.5 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों !

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान चुके होंगे किकुश कण्डिका के अंतर्गत निर्धारित क्षेत्र के चारों दिशाओं में कुश बिछाये जाते हैं। बड़े यज्ञों और विशिष्ट कर्मकाण्डों में यज्ञशाला, यज्ञकुण्ड अथवा पूजा क्षेत्र के चारों ओर मंत्रों के साथ कुश स्थापित किये जाते हैं। पूजन,यज्ञादि में गाय के घृत का प्रयोग ही सर्वत्र देखा जाता है, भारतीय कर्मकाण्ड पद्धति में गौ पूजन, गौ दान इत्यादि के विशिष्ट महत्व भी है। और आपने यह भी जाना कि- देव कार्य में तीन बार और पितृ कार्य में एक बार पात्रासादन काल में चरु द्रव्यों का प्रक्षालन होता है। हविर्द्रव्यों में यव को प्रमुख माना गया है। उसके बाद ब्रीहि मुख्य है। यव के समान ही गेंहू एवं ब्रीहि के समान चावल है। यदि ब्रीहि और यव के अभाव हो तो ऐसे में दधि अथवा दूध का प्रयोग भी कर सकते हैं। पूर्णपात्र के संदर्भ में आपने अध्ययन किया कि "अकृते पूर्णपात्रे च छिद्रयज्ञ: प्रजायते। पूर्णपात्रे च सम्पूर्णे सर्वं संपूर्णता भवेत्।" पूर्णपात्र रहित यज्ञ छिद्र वाला होता है। अतः संपूर्णता के लिए पूर्णपात्र अनिवार्य रूप से होना चाहिये। पूर्णपात्र कैसा होना चाहिये ? इस

विषय में कहा गया है कि पूर्णपात्र यव अथवा व्रीहि से पूर्ण होना चाहिये। पूर्ण पात्र किसे कहा जाता है ? एक किंचित् आठ मुट्ठी का होता है, आठ किंचित् का एक पुष्कल होतो है, और चार पुष्कल से युक्त एक पूर्णपात्र होता है। जितने अन्न से मात्र से भोजन करने वाले की तृप्ति हो जाती है, उतने ही अन्न को पूर्णपात्र कहा जाता है। पूर्णपात्र, पवित्री, इत्यादि के पश्चात आपने जाना कि ब्रह्मा का यदि अभाव हो तो क्या करना चाहिये ? इस विषय में आपने जाना कि आचार्य हरिहर जी के कथनानुसार "ब्राह्मणं तदभावे पञ्चासतकुशनिर्मितमुपवेश्य इति हरिहर भाष्यम्"पचास कुशाओं से निर्मित ब्रह्मा को विराजमान किया जा सकता है। अग्नि के दक्षिण में ब्रह्मा का आसन विराजित कर उस पर कुश बिछायें। ब्रह्मा का आसन वारण या विकंकत अर्थात कंटाई की लकड़ी का निर्मित होना चाहिये। यह आसन एक हाथ का चतुरस्र हो, छब्बीस आँगुल विकंकत का भी निर्मित किया जा सकता है। इसके पश्चात "ब्रह्मा भवामि चेत्युक्त्वा गच्छेदग्नेस्तु पूर्वतः" ब्रह्मा होऊँ ऐसा कहकर ब्रह्मा अपने आसन पर विराजमान हो जायें। ब्रह्मा को दक्षिण दिशा में विराजमान क्यों किया जाता है ? इस संदर्भ में कहा गया है कि "दक्षिणे दानवाः प्रोक्ता: पिशाचो रगराक्षसाः। तेषां संरक्षनार्थाय ब्रह्मा तिष्ठति दक्षिणे।"

अर्थात् दक्षिण में दानव, पिशाच, एवं राक्षस इत्यादि रहते हैं। अतः उनसे रक्षा हेतु ब्रह्मा को दक्षिण में विराजमान किया जाता है। ब्रह्मा के विषय में कहा गया है " वेदैकनिष्ठं धर्मज्ञं कुलीनं श्रोत्रियं शुचिम्। स्वशाखाठयमनालस्यं विप्रं कर्तारमीप्सितम्।"ब्रह्मा ऐसा हो जो वेद में एक निष्ठ, धर्मज्ञ कुलीन श्रोत्रिय पवित्र एवं अपने शाखाध्ययन में आलस्य न करने वाला विप्र होना चाहिये। ब्रह्मा के वरणार्थ अलंकार इत्यादि के क्रम में कहा गया है कि दो वस्त्र, केयूर, कर्णभूषण, अंगुलिभूषण, मणिबंध, भूषण कंठाभरण इत्यादि होना चाहिये। उर्ध्वकेश ब्रह्मा एवं लम्बकेश विष्टर होता है। दक्षिणावर्त ब्रह्मा एवं वामावर्त विष्टर होता है। इसके अनंतर "प्रणीय इति सूत्रम् अप इति शेष:" इस सूत्र में अप शेष रहता है अर्थात जल। अग्नि के उत्तर प्रागग्र दो कुशों को आसन हेतु रखकर बारह अंगुल लम्बा, चार अंगुल चौड़ा एवं चार अंगुल गहरा चमस को बायें हाथ में करके दाहिने हाथ में स्थित जल पात्र सर पूरित कर पश्चिम के आसन पर रखकर पूर्व के आसन पर रखना चाहिये । "परिस्तीर्य इति सूत्रम् । अग्निं बर्हि मुष्टिमादाय ईशानादिप्रागग्रैर्बार्होमरुदक्संस्थमग्ने: परिस्तरणम् इति हरिहरभाष्यम् ।"अर्थात अग्नि कुण्ड के चारों तरफ मुष्टि में कुशों को एकत्रित करके प्रागग्र करके बिछाना चाहिये। परिस्तरण हेतु बताया गया है कि दर्भहीन वेदिका को नग्न वेदिका माना जाता है। दर्भ को वेदिका का परिधान विशेष माना गया है। विधि विधान से कुशकण्डिका कृत्य को करने के पश्चात हवन कार्य किया जाता है। इस प्रकार से आपने कुशकण्डिका विधि के बारे में इस इकाई में अध्ययन किया।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

- मुष्टि - मुठ्ठी
- परिधान - वस्त्र
- उर्ध्व - ऊपर
- शुचि - पवित्र
- प्राग्रं - पूर्व की ओर अग्र भाग हो जिसका
- प्रणीता - पात्र का नाम है

- अधः - नीचे
- केयूर - आभूषण
- द्विमेखले - दो मेखला वाले में
- पूरयित्वा - पूरा करके
- पंचाशत - पचास
- दर्भहीन - कुशा से हीन
- धर्मज्ञम् - धर्म को जानने वाले
- बुधै: - विद्वान
- हस्त - हाथ
- ब्रह्मासनम् - ब्रह्मा का आसन
- विप्र - ब्राह्मण

अभ्यास प्रश्न 3

अधोलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिये।

1. अग्नि के दक्षिण दिशा में ब्रह्मा हेतु यज्ञ की समिधाओं से निर्मित आसन बिछाना चाहिये।

(क) दक्षिण (ख) पूर्व (ग) उत्तर (घ) पश्चिम

2. ब्रह्मा का अभाव हो तो हरिहर जी के कथनानुसार ----------कुशाओं से निर्मित ब्रह्मा को विराजमान किया जा सकता है।

(क) बीस (ख) पचास (ग) तीस (घ) चालीस

3. दक्षिण में दानव, पिशाच, एवं राक्षस इत्यादि रहते हैं। इसलिए उनसे रक्षा हेतु -------- को दक्षिण में विराजमान किया जाता है।

(क) शिव (ख) इन्द्र (ग) हरि (घ) ब्रह्मा

4. दक्षिणावर्त ब्रह्मा एवं वामावर्त --------- होता है।

(क) विष्टर (ख) प्रणीता (ग) स्रुव (घ) कुण्ड

5. दर्भ को वेदिका का ----------विशेष माना गया है।

(क) परिधान (ख) शुभ (ग) कवच (घ) रक्षा

6. प्रोक्षणी वारण का ---------- अंगुल विस्तृत होनी चाहिये।

(क) एकादश (ख) द्वादश (ग) त्रयोदश (घ) चतुर्दश

7. लाज होम में,समिद्धहोम और----------में खड़े होकर हवन करना चाहिये।

(क) प्रायश्चित होम (ख) पितृ होम (ग) ऊर्ध्व होम (घ) गायत्री होम

8. कुशानादाय समिधोभ्याधाय तिष्ठन्समिधः---------- प्रक्षिपेत्।

(क) अग्नौ (ख) भूमौ (ग) जलौ (घ) अंतरिक्षे

9. द्वयो: पर्यग्निकरणं कृत्वा----------स्रुवमादाय प्रांचमधोमुखमग्नौ ताप्यित्वा सव्ये पणौ कृत्वा दक्षिणेन निदध्यात्।

(क) दक्षिणहस्तेन (ख) वामहस्तेन (ग) भूमौ (घ) अग्निकुण्डे

10. दक्षिणे दानवाः प्रोक्ता: पिशाचो रगराक्षसाः। तेषां----------ब्रह्मा तिष्ठति दक्षिणे।

(क) पूजनार्थाय (ख) संरक्षनार्थाय(ग) सम्मानार्थाय (घ) धारणार्थाय

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 - 1- ग, 2-क, 3-ख, 4-क, 5-ख, 6-क, 7-घ, 8-क, 9-ख, 10-क

अभ्यास प्रश्न 2 - 1-घ, 2-ख, 3-क, 4-ख, 5-ख, 6-ग, 7-ग, 8-क, 9-घ, 10-क

अभ्यास प्रश्न 3 - 1-क, 2-ख, 3-घ, 4-क, 5-क, 6-ख, 7-ग, 8-क, 9-क, 10-ख

3.8 संदर्भ सूची ग्रंथ

1. स्तोत्र पाठ एवं होम विधि, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

2. कर्मकाण्ड भास्कर, श्रीराम शर्मा आचार्य

3. सर्वकर्म अनुष्ठान प्रकाश – पं रमेश चंद्र शर्मा 'मिश्र'

4. पारस्कर गृह्य सूत्र

3.9 अन्य सहायक पुस्तकें

1. नित्य कर्म पूजा प्रकाश

2. बृहद कर्मकाण्ड

3. कर्मकाण्ड प्रदीप

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. कुश कण्डिका में प्रयुक्त पात्र एवं समिधाओं का विस्तार से वर्णन कीजिये।

2. कुश कण्डिका विधि का वर्णन कीजिये।

इकाई 4 कुण्ड निर्माण एवं होम विधि

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 कुण्ड निर्माण हेतु भूमि शोधन एवं मण्डप विचार
4.3.1 कुण्डनिर्माण हेतु मण्डपादि विचार
4.4 कुण्डादि प्रकार एवं फल
4.5 कुण्ड निर्माण विधान
4.6 होम में मुद्राविचार
4.7 होम में आहुति विचार
4.7.1 होम में अग्नि पूजा का विचार
4.8 सारांश
4.9 पारिभाषिक शब्दावली
4.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.11 संदर्भ सूची ग्रंथ
4.12 अन्य सहायक पुस्तकें
4.13 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों !

प्रस्तुत इकाई कुण्ड निर्माण एवं होम विधि से संबंधित है। कर्मकाण्ड एवं अनुष्ठान की सम्पन्नता हेतु हवन किया जाता है। हवन करने के लिये कर्मकाण्ड में दो ही स्थान निर्धारित किये गये हैं जिसमें एक कुण्ड हैं तथा दूसरा स्थण्डिल। हवन के अभाव में किसी भी अनुष्ठान की पूर्णता नहीं हो पाती। यज्ञ को किस प्रकार व्यवस्थित ढंग सम्पन्न किया जाय इसके लिए शास्त्रों में विधान का वर्णन है। जैसे कि सर्वप्रथम यज्ञ हेतु उत्तम भूमि का ही चयन करना चाहिए। तभी उसका उत्तम फल भी प्राप्त होता है । कुण्ड के विषय में तीन पक्ष प्राप्त होते है। जिनको नवकुण्डी, पञ्चकुण्डी एवं एककुण्डी कहा जाता है। इनमे नवकुण्डी में नौ कुण्ड होते है, पञ्चकुण्डी में पाँच कुण्ड होते हैं एवं एककुण्डी में एक कुण्ड होता है। इस प्रकार आप कुण्ड निर्माण एवं होम विधि आदि का इस इकाई में भली– भांति अध्ययन करेंगे ।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेंगे कि –

- कर्मकाण्ड को लोकोपकारक बनाना ।
- कुण्ड निर्माण हेतु भूमि शोधन एवं मण्डप आदि के विषय में जान सकेंगे ।
- कुण्डनिर्माण हेतु मण्डपादिके विषय में जानेंगे।
- कुण्डादि प्रकार एवं फल के बारे में भली-भांति जाना सकेंगे ।
- कर्मकाण्ड एवं अनुष्ठान में हवन को कैसे व्यवस्थित ढंग से किया जाय यह आप जानेंगे।

4.3 कुण्ड निर्माण हेतु भूमि शोधन एवं मण्डप विचार

यज्ञ हेतु उत्तम भूमि का ही चयन करना चाहिये। तभी उसका उत्तम फल प्राप्त होता है। शास्त्रों में उत्तम भूमि के अनेक लक्षणों के विषय में चर्चा की गई है। जैसे कि उत्तम एवं सुगंधित भूमि को ब्राह्मणी कहा जाता है, रक्त वर्ण से गंध युक्त भूमि को क्षत्रिय कहा जाता है, मधु गंध से युक्त भूमि को वैश्या कहा जाता है और मद्य से युक्त गंध वाली भूमि को इन तीनों से पृथक कहा जाता है ।

सुगन्धा ब्राह्मणी भूमि, रक्त गन्धा तु क्षत्रिया ।
मधुगन्धा भवेद्वैश्या, मद्यगन्धा च शूद्रिका ।।

मधुर रस से युक्त भूमि को ब्राह्मणी कहा जाता है। कषाय रस से मिश्रित भूमि को क्षत्रिय कहा जाता है। अम्लरसयुक्त भूमि को वैश्य कहा जाता है। तिक्त रस युक्त भूमि को शूद्र कहा जाता है। भूमियों के फलों का भी अलग महत्व है जैसा कि ब्राह्मणी भूमि सुखदा, क्षत्रिय भूमि राज्य प्रदा, वैश्य भूमि धन धान्यकरी, और इनसे अतरिक्त भूमि त्याज्य होती है।

अम्ला भूमिर्भवेद्वैश्या तिक्ता शूद्रा प्रकीर्तिता ।
मधुरा ब्राह्मणी भूमिः कषायाः क्षत्रिया मता ।।

भूमि विचार के अन्तर्गत कहा गया है कि श्वेत वर्ण वाली मिट्टी की भूमि को ब्राह्मणी कहा जाता है।लाल वर्ण युक्त भूमि को क्षत्रिय कहा जाता है।हरित वर्ण से युक्त भूमि को वैश्य कहा जाता है, और काले वर्ण युक्त भूमि को इन तीनों से अतरिक्त कहा जाता है।

शुभस्य शुभदा ज्ञेया दशा पापस्य चाधमा।
शुक्ला मृत्स्ना च या भूमिर्ब्राह्मणी सा प्रकीर्तिता।
क्षत्रिया रक्तमृत्स्ना च हरिद्वैश्या।
कृष्णा भूमिर्भवेच्छूद्रा चतुर्धा परिकीर्तिता।

नारद जी के मतानुसार ब्राह्माणादि चारों वर्णों के लिये क्रमानुसार घृत , रक्त, अन्न और मद्य गंध युक्त भूमि सुखद है। पूर्व दिशा की ओर भूमि ढालदार हो तो धन की प्राप्ति, अग्नि कोण में दाह, दक्षिण में मृत्यु, नैऋत्य में धन नाश, पश्चिम में पुत्र हानि, वायव्य में प्रदेश निवास, उत्तर में धनागम, ईशान में विद्या लाभ, तथा बीच में गढ़े वाली भूमि कष्ट दायक होती है। नारायण भट्ट के मतानुसार ब्राह्मण के लिये उत्तर ढालवाली भूमि शुभ होती है। क्षत्रिय के लिए पूर्व ढालवाली भूमि शुभ कही गयी है। वैश्य के लिए दक्षिण ढालवाली भूमि शुभ होती है। अन्य लोगों के लिए पश्चिम की ओर ढालवाली भूमि शुभ कहा गया है।

पूर्वप्लवा वृद्धिकरी उत्तरा धनदा स्मृता।
अर्थक्षयकरीं विद्यात् पश्चिममप्लवना तत:।
दक्षिणा प्लवना पृथ्वीं नराणां मृत्तिदा भवेत्।

4.3.1 कुण्डनिर्माण हेतु मण्डपादि विचार –

कुण्ड निर्माण हेतु मण्डप के विषय में कहा गया है कि मण्डप 10 से 12 हाथ अधम माना जाता है।12 से 14 हाथ मध्यम व 16 से 18 हाथ का मण्डप उत्तम माना जाता है। मण्डप चौकोर बनाया जाना चाहिये।

द्वार – चारों दिशाओं के मध्य में 2 हाथ 4 अंगुल चौड़ा, मध्यम में तथा 2 हाथ 8 अंगुल चौड़ा उत्तम मण्डप में बनाया जाता है। ऊंचाई दोनों में 5 हाथ रखनी चाहिये।16 स्तम्भ गाड़ने के लिए दक्षिण उत्तर व पूर्व पश्चिम के तीन भाग से सूत्र डालें संधि स्थलों पर निशान करें।प्रथम अग्नि कोण में स्तम्भ गाड़ना जिसका पाँचवाँ हिस्सा भूमि में रहे।शेष चार स्तम्भ मध्य भाग में 8 हाथ ऊंचे 8 आँगुल चौड़े मध्य भाग अग्नि कोण से गाड़ें। काष्टवल्लियाँ लगाकर मण्डप निर्माण करें। 48 बल्लियाँ होगी।शिखर बनाना चाहिए, बांस की साहयता से द्वार बनाएं। मण्डप द्वार से एक हाथ दूर तोरण द्वार बनायें।

ध्वजारोहण– यज्ञ प्रारम्भ से पहले भूमि, कूर्म, अन्नत, स्वामी, कार्तिक, व इन्द्र, की पूजा करके स्तम्भ रोपण कर ध्वजा रोहण करें।2 हाथ या 3 हाथ चौड़ी 5 हाथ लम्बी होनी चाहिये।

मुहूर्त के हिसाब से कूर्मवास व शिववास भी देखना चाहिये –

शिववास- वर्तमान तिथि को दुगुना करके पाँच मिलाये, सात का भाग देने पर यदि 1 बचे तो शिववास कैलाश में श्रेष्ठ, 2 बचे तो गैरपारश्वे श्रेष्ठ, 3 बचे तो वृषारूढ़ श्रेष्ठ, 4 बचे तो सभायां सम, 5 शेष हो तो ज्ञान बेला में श्रेष्ठ, 6 शेष में क्रीडा में दुख, 7 शेष हो तो श्मशान, फल मृत्यु जाने।

कूर्मवास- वर्तमान तिथि को 5 से गुणा करे और कृतिका से वर्तमान नक्षत्र तक की संख्या को उसमें मिलाये, पुनः उसमें 12 जोड़कर 9 का भाग दें, 1,4,7 में कूर्मवास जल में शुभ होता है। 2,5,8 स्थल में वास हानि, 3,6,9 शेष बचे तो आकाश में मृत्यु जाने।

स्तम्भचक्र- सूर्य नक्षत्र से दिन नक्षत्र तक गिने, प्रथम 2 का वास स्तंभ मूल में धनक्षय, आगे 20 नक्षत्र लक्ष्मी प्राप्ति वास मध्य में।शेष 6 नक्षत्र स्तंभ के अग्रभाग में फल मृत्यु पीड़ा देता है।सभी ध्वजा त्रिकोण, पताका चौकोर होती है।महा ध्वजा ईशान और मध्य में पाँच वर्ण का होता है।

कुण्ड प्रमाण- आहुति संख्यानुसार 50 आहुति से 100 आहुति तक 21 अंगुल।100 आहुति से हजार के लिए 22 अंगुल। एक हजार से 10 हजार तक 1 हाथ = 24 अंगुल, 5 यव।एक लक्ष में 4 हाथ = 48 अंगुल। एक से अधिक दश लाख में 6 हाथ = 48 अंगुल 6 यव।कोटि होम में 8 हाथ = 67 अंगुल 7 यव। कहीं कहीं कोटी होम में 16 हाथ का कुण्ड बनाया जाता है ।

हस्त प्रमाण- खड़े होकर हाथ को ऊपर करें पैर के अंगूठे से मध्यमा तक की लंबाई के 5 भाग करें।एक भाग का मान 1 हाथ है।24 अंगुल से कुछ भिन्न रहता है।माना कि किसी की लंबाई 84-85 इंच है तो 5 वाँ भाग 17 इंच है।हस्त प्रमाण से 19 इंच 24 अंगुल से 18 इंच है।अतः हम कौन सा प्रमाण लें, 'सर्वकर्म अनुष्ठान प्रकाश' में मध्यमान 1 हाथ=18 इंच के मान से सभी कुंण्डों का निर्माण क्रिया का उल्लेख किया गया है।1 अंगुल में 8 यव, 1 यव में 8 यूका, 1 इंच में 8 सूत, और 1 इंच में 10 मिलीमीटर, 1 इंच में 2 सेंटीमीटर $5\frac{1}{2}$ मिलीमीटर होते हैं ।

4.4 कुण्डादि प्रकार एवं फल

कुण्ड के विषय में तीन पक्ष प्राप्त होते है।जिनको नवकुण्डी, पञ्चकुण्डी एवं एककुण्डी कहा जाता है।इनमे नवकुण्डी में नौ कुण्ड होते है, पञ्चकुण्डी में पाँच कुण्ड होते हैं, एवं एककुण्डी में एक कुण्ड होता है। नवकुण्डी पक्ष में नौ प्रकार के कुण्ड इस प्रकार से हैं –

प्राच्या चतुष्कोण भगेन्दुखण्ड त्रिकोणवृत्तांगभुजाम्बुजानि ।
अष्टास्त्रिशशक्रेश्वरयोस्तु मध्ये वेदा स्त्रिवा वृत्तमुशन्तिकुण्डम् ।।

अर्थात् पूर्व की दिशा में चतुष्कोण का निर्माण चाहिये।अग्नि कोण में योनि कुण्ड का निर्माण करना चाहिये।दक्षिण कोण में अर्धचंद्र कुण्ड का निर्माण करना चाहिये।नैऋत्य कोण में त्रिकोण कुण्ड का निर्माण करना चाहिये।पश्चिम दिशा में वृत्त कुण्ड का निर्माण करना चाहिये।वायव्य कोण में षडस्त्र कुण्ड का निर्माण करना चाहिये।उत्तर में पद्यंकोण कुण्ड का निर्माण करना चाहिये। ईशान कोण में अष्टास्त्र कुण्ड का निर्माण करना चाहिये। ईशान एवं उत्तर के बीच में चतुष्कोण अथवा त्रिकोण अथवा वृत्त कुण्ड का निर्माण करना चाहिये।

कुण्ड का दूसरा पक्ष पंचकुण्डी के रूप में जाना जाता है ।

आशेषकुण्डैरिहपञ्चकुण्डी चैकं यदा पश्चिमसोम शैव ।

अर्थात् पूर्व दिशा में चतुष्कोण कुण्ड का निर्माण करना चाहिये।दक्षिण में अर्धचंद्र कुण्ड का निर्माण करना चाहिये।पश्चिम दिशा में वृत्त कुण्ड बनाना चाहिये। उत्तर में पद्यंकोण का निर्माण करना चाहिये। ईशान कोण एवं पूर्व कोण के मध्य चतुष्कोण अथवा त्रिकोण अथवा वृत्त कुण्ड का निर्माण करना चाहिये।इससे यह ज्ञात होता है कि कोणों के कुण्डों को छोड़कर केवल दिशाओं के कुण्डों को स्वीकार किया जाता है । तीसरा पक्ष एककुण्डी है इन्ही में से कोई एक कुण्ड बनाने का विधान है। कुण्डों के पृथक-पृथक फल भी बताए गये हैं ।

सिद्धि: पुत्रा: शुभं शत्रुनाश: शान्तिर्मृतिच्छदे ।
वृष्टिरारोग्यमुक्तं हि फलं प्राच्यादि कुण्डके ।।

अर्थात् सिद्धि कामना हेतु चतुष्कोण में हवन करना चाहिये। पुत्र की कामना हेतु योनि कुण्ड में हवन करना चाहिये। शुभ कामना हेतु अर्धचंद्र कुण्ड में हवन करना चाहिये। शत्रुनाश हेतु

त्रिकोण कुण्ड में हवन करना चाहिये। शान्ति की कामना हेतु वृत्त कुण्ड में हवन करना चाहिये। मृत्युच्छेदन के लिये षट्कोण कुण्ड में हवन करना चाहिये। वर्षा हेतु पद्यंकोण कुण्ड में हवन करना चाहिये। आरोग्यता की कामना हेतु अष्टकोण कुण्ड में हवन करना चाहिये।

कुण्डों के निर्माण प्रमाण के अनुसार करना चाहिये अन्यथा यज्ञ का ठीक विपरीत फल प्राप्त होता है जैसा की शस्त्रों में कहा ही गया है कि -

खाताधिके भवेद्रोगी, हीने धेनु क्षयस्तथा।
वक्रकुण्डे च सन्तापो, मरणं छिन्नमेखले।
मेखला रहिते शोको अभ्यधिके वित्तसंक्षयः।
भार्यादिनाशनं प्रोक्तं कुण्डं योन्याविनाकृते।
कुण्डं यत्कण्ठरहितं सुतानां तन्मृतिप्रदम्।
अनात्मके मृत्युमुपैति बन्धुस्तथैवमानाधिककेस्वयंचेति।। परशरामकारिकायाम्।।

अर्थात् कुण्डों के निर्माण में विशेष रूप से यह ध्यान रखना चाहिये कि प्रमाण के अनुसार ही कुण्ड में खात हो। अगर ऐसा नहीं किया जाये तो विपरीत परिणाम देखने को मिलते हैं। जैसा कि यदि कुण्ड में गड्ढा निर्धारित मान से अधिक हो तो उसका फल रोगी होना बताया गया है।जिस कुण्ड में गड्ढा मान से कम होता है तो उसका फल धेनु का क्षय होना बताया गया है।यदि कुण्ड टेढ़ा-मेढ़ा हो तो सन्ताप होता है।यदि कुण्ड में मेखला टूटी-फटी हो तो उसका फल मरण बताया गया है। यदि मेखला से रहित कुण्ड का निर्माण किया जाता है तो उससे शोक की प्राप्ति होती है, और अधिक मेखला हो तो धन का क्षय होता है। योनि रहित कुण्ड से भार्या के विनाश का फल होता है। कण्ठ रहित कुण्ड का फल पुत्र मृत्यु बतायी गयी है।इसी लिए शास्त्रोक्त कुण्ड निर्माण के पश्चात पञ्च भू संस्कार करना चाहिये।

4.5 कुण्ड निर्माण विधान

कर्मकाण्ड एवं अनुष्ठान की सम्पन्नता हेतु हवन किया जाता है। हवन करने के लिये कर्मकाण्ड में दो ही स्थान निर्धारित किये गये हैं जिसमें एक कुण्ड हैं तथा दूसरा स्थण्डिल। सर्वप्रथम कुण्डों के विधान के बारे में विचार करते हैं।

चतुरस्रादि कुण्ड निर्माण-

चतुरस्र कुण्ड निर्माण के बारे में कहा गया है कि-

द्विघ्नं व्यासं तुर्यचिन्हं सपाशं सूत्रं शंकौ पश्चिमे पूर्वगेपि।
दत्वा कर्षेत्कोणयोः पाशतुर्यं स्यादेवं वा वेदकोणं समानम्।।

अर्थात् एक हाथ के व्यास को दुगुना करने पर अर्थात जितने व्यास का कुण्ड बनाना हो उसका दुगुना कर पाश के चार चिन्ह बनाने चाहिये। पश्चात दोनों पाशों को पूर्व एवं पश्चिम की कील में फंसाकर दोनों की चतुर्थांश गाँठ को पकड़कर अग्नि तथा नैऋत्य की तरफ खींचे।उसी प्रकार वायव्य तथा ईशान कोण की ओर भी खींचे तो चतुस्रकुण्ड का निर्माण हो जाता है। इसी प्रकार सभी प्रकार के कुण्डोंमें सबसे पहले चतुरस्र का क्षेत्र निर्धारित करना चाहिये।इसी के आधार पर अन्य कुण्डों का निर्माण किया जा सकता है।

योनिकुण्ड निर्माण-

क्षेत्रे जिनांशे पुरतः शरांशान् संवर्ध्य च स्वीयरदांश युक्तान्।
कर्णांघ्रिमानेन लिखेण्डुखण्डं प्रत्यंकुरो अङ्काद् गुणतो भगाभम्।।

अर्थात् क्षेत्रका चौबीस भाग कर उसके पाँच भाग को लें।और उसका बत्तीसवाँ हिस्सा से युक्त करने पर पाँच अंगुल एक यव दो यूका हुआ।इतने को प्रकृतक्षेत्र के बीच में आगे बढ़ना और पीछे के दोनों भाग चतुरस्रमें चारों कोण से रेखा देकर कर्णाघ्रि में परकाल रखकर दो आधार वृत्त तैयार करें। पार्श्व से आगे चिन्ह से रेखा देने पर योनि कुण्ड का निर्माण होता है।

अर्धचंद्रकुण्ड निर्माण –

स्वशतांशयुतेषु भागहीन:स्वधरित्रिमितकर्कटेन लब्ध्यात् ।
कृत्तवृत्तदले अग्रतश्च जीवां विदधात्विन्दुदलस्य साधु सिद्ध्यै ।।

अर्थात्– प्रकृत क्षेत्र का पाँचवाँ अंश लेकर उसमें शतांश को युत कराने पर 4 अंगुल, 6 यव, 6 यूका, 2 लिक्षा, 1 बालाग्र, को 24 अंगुल के क्षेत्र में से घटाने पर 19 अंगुल, 1 यव, 1 यूका, 6 लिक्षा, 4 बालाग्र इतने से चतुरस्र के बीच में परकाल रखकर वृत्त का आधा भाग खींचें।वृत्तार्धा के आगे सूत्र देने पर अर्धचंद्र कुण्ड का निर्माण होता है।

त्रिकोण एवं वृत्त कुण्ड का निर्माण-

वह्वयंशं पुरतो निधाय चपुन: श्रोण्यश्चतुर्थांशक: ।
चिन्हेषु त्रिषु सूत्रदानत इदं स्यात्त्यस्त्रिकष्टोज्झितम् ।
विश्वांशै: स्वजिनांशकेन सहितै: क्षेत्रे जिनांशे कृते ।
व्यासार्धेन मितेन मण्डलमिदं स्यात् वृत्तसंज्ञम् शुभम् ।

अर्थात्– प्रकृति क्षेत्र का 24 भाग करें, उसमें से तृतीयांश अंगुल लेकर प्रकृत क्षेत्र जो चतुरस्र उसमे आगे पूर्व की ओर बढ़ावें। 24 का चौथा हिस्सा छः अंगुल चतुरस्रकी दोनों श्रेणी में दक्षिण उत्तर की ओर बढ़ायें। पश्चात तीनों चिन्ह से मिलाकर सूत्र देने से त्रिकोण कुण्ड का निर्माण हो जाता है। वृत्त कुण्ड के लिये प्रकृत क्षेत्र को चौबीस भाग करके उसमे 13 अंगुल की अपने चौबीसवें हिस्से के सहित हो तब चतुरस्रके बीच में परकाल रखकर वृत्त बनाने से वृत्त कुण्ड का निर्माण होता है।

षट्कोण कुण्ड निर्माण-

भक्तेक्षेत्रे जिनांशैर्धृतिमितलवकै: स्वाक्षिशैलांशयुक्ते ।
व्यासार्द्धान्मण्डले तन्मितधृतगुणके कर्कटे चेन्दुदिक्त: ।
षट् चिन्हेषु प्रदद्याद्रसमितगुणकानेकमेकं तु हित्वा ।
नाशे सन्ध्यर्तुदोषामपि च वृत्तिकृतंर्नेत्ररम्यं षडस्त्रम् ।।

अर्थात् –प्रकृत क्षेत्र 24 अंगुल में से 18 अंगुल लें।उस 18 अंगुल का 72 वां हिस्सा युक्त करना हो तो 2 यव हुआ। अर्थात् 18 अंगुल 2 यव के परकाल से उत्तर की ओर से वृत्त करना चाहिये।उसी परकाल से वृत्त में 6 चिन्ह करने चाहिये। एक – एक चिन्ह को छोड़कर तीसरे चिन्ह पर सूत्र देने से और सब संधि की रेखा को मिटाने से षट्कोण का निर्माण होता है।

पद्मंकुण्ड निर्माण –

अष्टांशाच्च यतश्चवृत्तशरके तत्रादिमं कर्णिका ।
युग्मेषोडशके पराणि चरमेस्वाष्टत्रिभागेनिते ।
भक्ते षोडशधा शरान्तरधृते स्यु: कर्कटे अष्टौ छदा: ।
सर्वां तां खनकर्णिकां त्यज निजायामोच्चकां स्यात्कजम् ।।

अर्थात् –प्रकृत क्षेत्र 24 के अष्टमांश से एक-एक वृत्त में अष्टमांश बढ़ा – बढ़ा कर पाँच वृत्त बनायें। परंतु पांचवें वृत्त में वह अष्टमांश अपने 38 वें हिस्से से हीन करके उस अष्टमांश के व्यासार्ध से 2 अंगुल, 6 यव, 2 यूका, 1 लिक्षा, 2 बालाग्र से पंचवां वृत्त करें। पहला वृत्त 3 अंगुल, दूसरा वृत्त 6 अंगुल, तीसरा वृत्त 9 अंगुल, चौथा वृत्त 12 अंगुल, पाँचवां वृत्त 14 अंगुल, 6 यव, 2 यूका, 1 लिक्षा, 2 बालाग्र के परकाल से करके अन्तिम वृत्त में 16 चिन्ह करें। दिशा विदिशा एवं विदिशा दिशा के बीच में पांचवें चिन्ह पर परकाल रखकर दिशा विदिशा में आठ पत्र करें।पत्र के मध्य तथा केसर को छोड़कर कर्णिका के मध्य में रखें इस प्रकार पद्यम्कुण्ड का निर्माण हो जायेगा।

अष्टकोण कुण्ड निर्माण –

क्षेत्रे जिनांशेगजचन्द्रभागैः स्वाश्लिष्टभागेन युतैस्तु वृत्ते।
विदिग्विशोरन्तरतो अष्टसूतैस्तृतीययुक्तैरिदमष्टकोणम्॥

अर्थात्- प्रकृत क्षेत्र 24 उसमें से 10 हिस्सों को अपने 28 वें हिस्से के सहित लें, तो अंगुल 5 यव, 1 यूका, 1 लिक्षा, एक बालाग्र हुआ। इतने के व्यासार्द्ध को परकाल से वृत्त करें।और दिशा–विदिशा के मध्य में आठ चिन्ह करें। बाद में दो – दो चिन्ह के मध्य में छोड़कर तीसरे चिन्हों को मिलाकर आठ चिन्ह देंने पर अष्ट कोण कुण्ड का निर्माण होता है।

खात विषय- यदि 24 अंकुल कुण्ड हो तो 24 अंगुल गहरा करें।अन्य मत यह है कि 15 अंगुल खात, 9 अंगुल मेखला हो। अर्थात् 24 अंगुल मेखला सहित या मेखला रहित बना सकते हैं। परंतु आहुति संख्या का भी ध्यान रखना चाहिये। पूर्णाहुति तक कुण्ड खाली नहीं दिखाई दे।कुण्ड का भराव कंठ तक होना चाहिये।

कंठ- 1 अंगुल या 2 अंगुल चौड़ा करना चाहिये। (प्रकृति क्षेत्र व मेखला की दूरी)

ओष्ठ- ऊपरी मेखला कुण्ड की ओर की किनार हल्की सी ऊर्ध्व कर दें।ओष्ठ के नहीं बनाने पर यजमान के लिये अशुभ बताया गया है।

मेखला खाता को बाहर 1 या 2 अंगुल की जगह (कंठ) छोड़कर मेखला बनायें 1,2,3,5 मेखला बना सकते हैं। मेखला 4-4-4 अंगुल की समान और चौड़ाई भी 4-4 अंगुली होनी चाहिये।या 3-3-3 अंगुली की ऊंची व 3 अंगुली चौड़ी बनायें।

तीसरा प्रकार प्रथम मेखला ऊपर के कुण्ड का 6 भाग = 4 अंगुल की ऊंचाई व चौड़ाई। बीच की मेखला 8 वाँ भाग = 3 अंगुली ऊंची व 3 अंगुल चौड़ी। नीचे की मेखला 12 वान भाग = 2 अंगुल ऊंची व 2 अंगुल चौड़ी प्रमाण से बनाये। एक मेखला में चौथाई भाग = 6 अंगुल चौड़ी 6 अंगुल ऊंची बनाये।

नाभि कुण्ड मध्य में **'म'** बिन्दु पर (प्रकृति क्षेत्र का मध्य बिन्दु) बनाये। 12 वाँ भाग = 2 अंगुल ऊंचाई, छठा भाग = 4 अंगुल चौड़ाई की कुण्ड के आकार की बनावें।पद्यम्कुण्ड में नाभि केवल कर्णिका मात्र है।एक हाथ के कुण्ड में 6 अंगुल ऊंची व 6 अंगुल चौड़ी होती है। अर्द्धवृत्त कुण्ड में **'म'** केंद्र से $2\frac{1}{2}$ अंगुल नीचे जगह छोड़कर बनायें।

योनि योनि कुण्ड का अर्ध 12 अंगुल = 9 इंच लम्बी।चौड़ाई 3 भाग 8 अंगुल = 6 इंच चौड़ाई होती है।व 12 अंगुल। नीचे से चौड़ी ऊपर 1 अंगुल संकुचित।पीछे छिद्रनाल सहित एवं आगे।अंगुल झुकी हुई, 1 अंगुल कंठ के बाहर निकली हुई पीपल के पत्ते की बनाये। योनि के किनारे 1 अंगुल उठे हुये हों।अग्रभाग में 1 अंगुल चौड़ा गड्डा छिद्रनाल युक्त बनायें। दो मिट्टी के

गोले दोनों पृष्ठों पर रखें।लाल वस्त्र से आच्छादित करें।कुण्ड को जनेऊ पहनने के लिए योनि पृष्ठ में छिद्र बनाने हेतु एक मोटा तिनका या रस्सी मध्य मेखला के पास लगायें।थोड़ी देर बाद हिलाते रहें। जिस समय जनेऊ कुण्ड को पहनावें रस्सी के एक सिर पर बांधकर खींच लें फिर मेखला के जनेऊ बाँध दें। एक मेखला के नीचे छिद्र होता है। दो मेखला में दूसरी मेखला में छिद्र होता है। तीन मेखला में मध्य में छिद्र होता है।पाँच मेखला में चौथी (नीचे से) छिद्र होता है।

स्थण्डिल निर्माण विधि–

कर्मकाण्ड एवं अनुष्ठान में हवन करने हेतु कुण्ड और स्थण्डिल का विधान है।

अथवापि मृदा सुवर्णभाषा करमानं चतुरंगुलोच्चमलपे ।
हवने विदधीत वांगुलोच्चं बिबुधः स्थण्डिलमेव वेदकोणम् ।।

सुवर्ण जैसी मृतिका लेकर एक हाथ लम्बी, एक हाथ चौड़ी, चार अंगुल ऊंची अथवा एक अंगुल ऊंची चौकोर वेदी बनायें। थोड़े हवन में या स्थण्डिल में भी योनि व मेखला करने का विधान है। (सूतसंहितायाम्)

स्थण्डिले मेखला कार्या कुण्डोक्तस्थण्डिलाकृतिः ।
योनिस्तत्र प्रकर्तव्या कुण्डवत्तत्रवेदिभिः ।।
सममेखलं स्थण्डिलं तु प्रशस्तं होमकर्मणि ।
कण्ठं तु वर्जयस्तत्र खाते तत्र कण्ठः प्रकीर्तितः ।

उक्त श्लोकानुसार स्थण्डिल में मेखला करनी चाहिये और उसकी आकृति कुण्डोक्त स्थण्डिल आकृति के समान होनी चाहिये। कुण्ड के समान ही योनि बनाने का भी विधान है।मेखला युक्त स्थण्डिल होम प्रशस्त माना गया है।कंठ वर्जित है। खात में ही उसको विहित किया गया है।इस प्रकर से कुण्ड अथवा स्थण्डिल निर्माण करके होम करने का विधान है।

4.6 होम में मुद्राविचार

होम मुद्राविचार अर्थात हम हवन कुण्ड में आहुतियों को उचित ढंग से कैसे डालें, इसलिए मुद्रा इत्यादि का उचित ज्ञान होना नितांत आवश्यक है। मुख्य रूप से होम की तीन मुद्राएं हैं। **"होममुद्रा त्रिधा ज्ञेया मृगी हंसी च सूकरी"** होम मुद्रा के तीन प्रकार की होती है मृगी, हंसी, और सूकरी।

सूकरीसर्वांगुलीभिर्हंसीमुक्तकनिष्ठा।मृगी कनिष्ठतर्जन्योर्मुद्रात्रयमुदाहृतम् ।
यज्ञे शान्ति कल्याणे मृगी हंसी प्रकीर्तिता।अभिचारादिके होमे सूकरी कथिता बुधैः ।

सभी अंगुलियों के साथ हवन में प्रयुक्त मुद्रा को सूकरी कहा जाता है। और कनिष्ठिका को छोड़कर की गई हवन की मुद्रा हंसी कहलाती है।कनिष्ठा और तर्जनी को छोड़कर अन्य अंगुलियों से की गई हवन की मुद्रा मृगी कहलाती है। सुख– शान्ति एवं कल्याण हेतु मृगी एवं हंसी मुद्रा को उचित माना गया है।अभिचार आदि कर्मों में सूकरी मुद्रा को स्थान प्राप्त है।

"मयूरी कुक्कुटु हंसी सूकरी च मृगी तथा।पञ्चमुद्राविजानीयाद्धोमद्रव्यग्रहे बुधैः ।"

कुशकण्डिका भाष्य के अनुसार मयूरी , कुक्कुटी, हंसी, सूकरी, और मृगी ये पाँच मुद्रायें बतलायी गयी हैं । तर्जनी अंगुली को छोड़कर न्युब्ज हाथ से दि जाने वाली हवन मुद्रा का नाम मयूरी विद्वान लोग कहते हैं। अंगुष्ठयंत्रिक समस्त अंगुलियों से दी जाने वाली हवन मुद्रा का नाम कुक्कुटी है।बिना कनिष्ठा के दी जाने वाली हवन मुद्रा का नाम हंसी है। एवं मुकुल आभा सदृश्य मुद्रा से दी जाने वाली हवन मुद्रा का नाम सूकरी है। मध्यमा, अनामिका, एवं अंगुष्ठ से दी जाने

वाली हवन मुद्रा को मृगी कहा गया है। फल मूलों की आहुति के लिये शिखण्डिनी मुद्रा का प्रयोग करना चाहिये। जार या मारण के लिए कुक्कुटी मुद्रा का प्रयोग करना चाहिये। वश्य एवं उच्चाटन के लिये सूकरी एवं शांतिक, पौष्टिक कार्यों हेतु मृगी तथा हंसी मुद्राओं का प्रयोग करणीय है, ऐसा विद्वानों का मानना है ।

4.7 होममें आहुति विचार

आहुति का विचार करते हुए कारिका में अग्नि के स्वभाव का वर्णन करते हुए कहा गया हिय कि-

अधोमुख उर्ध्वपाद: प्राङ्मुखो हव्यवाहन:।तिष्ठत्येव स्वभावेन आहुति: कुत्र दीयते ।
सपवित्राम्बुहस्तेन ब्रह्मे: कुर्यात् प्रदक्षिणाम्।हव्यवाट् सलिलं दृष्ट्वा विभेति सम्मुखो भवेत् ।
आघारौ नासिका ज्ञेया आज्यभागौ च चक्षुकी।वक्त्रश्चोदरकुक्षी कटीव्याहृतिभि: स्मृता।

अर्थात् अग्नि का मुख नीचे की ओर रहता है, पैर ऊपर की ओर रहता है एवं दिशा उसकी प्राङ् मुख होती है।इस प्रकार अग्नि का स्वभाव है, अब अग्नि को आहुति कहाँ दिया जाय यह प्रश्न उठता है। निवारण यह है कि सपवित्रिक जल से अग्नि की प्रदक्षिणा करने पर हव्यवाट् अग्नि को देखकर सम्मुख हो जाता है । आघार संज्ञक आहुतियों को नासिका, आज्य संज्ञक आहुतियों को आँख तथा व्याहृतियों को मुख, उदर, कुक्षि एवं कटि माना गया है।

शिरौ हस्तौ च पदौ च पञ्चवारुणका: स्मृता:। पप्रजापति स्विष्टकृतं श्रोत्रे द्वे परिकीर्तते।
सधूमो अग्नि: शिरो ज्ञेय: निर्धूमश्चक्षुरेव च। ज्वलत्कृशो भवेत्कर्ण: काष्ठमग्नेर्मनस्तथा ।
अग्निर्ज्वालायते यत्र शुद्धस्फटिकसन्निभ:। तन्मुखं तस्य विज्ञेयं चतुरंगुलमानत: ।
प्रज्वलो अग्निस्तथा जिह्वा एतदेवाग्निलक्षणम्। आस्यान्तर्जुहुयादग्नेर्विपश्चित्सर्वकर्मसु।

पाँच वरुण संज्ञक मंत्रों को शिर, हाथ एवं पादुका कहा गया है।प्रजापति एवं स्विष्टकृत् आहुतियों को कान माना गया है। सधूम अग्नि को शिर एवं निर्धूम अग्नि को चक्षु माना गया है। मन्द ज्वाला को कर्ण एवं काष्ठ को अग्नि का मन माना गया है। जहाँ अग्नि की ज्वाला शुद्ध स्फटिक के समान हो उसके चार अंगुल के मान तक को अग्नि का मुख माना गया है। प्रज्वलित अग्नि एवं जिह्वा को अग्नि का लक्षण कहा गया है।विद्वात जनों को सभी कर्मों में इन्हीं के अंतर्गत हवन कार्य का सम्पादन करना चाहिये ।

अग्नि के कान में हवन करने से व्याधि का भय होता है, नेत्र में करने से अंधत्वा नाक में करने से मन में पीड़ा एवं मस्तक में करने से धन का क्षय होता है।अग्नि के कान में हवन करने से निश्चित रूप से दुर्भिक्ष एवं मरण की प्राप्ति होती है। नासिका में हवन करने से मन में दुख एवं नेत्र में करने से ग्राम का विनाश का फल बताया गया है। अधिक काष्ठ को प्रज्वलित करके दाहिने हाथ से हवन करना चाहिये।स्रुव से आज्य ग्रहण कर अग्नि के प्रत्यग् उत्तर की ओर से हवन करना चाहिये। आग्नेय कोण से आरम्भ कर सीधी आज्य धारा देनी चाहिये। प्रजापति को आहुति देते समय मन से स्मरण कर स्वाह करना चाहिये। नैऋत्य दिशा से ईशान तक आज्य प्रक्षेपण करना चाहिये।इन्द्र के लिये उपांशु वाचन पूर्वक हवन करना चाहिये।स्वाह कहते हुए आघार दिया जाता है यही करण है कि इस आहुति को आघार की उपमा दी गयी है। और पूर्व दिशा में भी ये आहुतियाँ दी जा सकती हैं।आघार संज्ञक आहुतियों के पश्चात अग्नि एवं सोम के

लिये आहुतियाँ देनी चाहिये। इसमें प्रथम आहुति ईशान कोण के अग्र भाग में तथा दूसरी आहुति अग्नि कोण में होगी। सुसमिद्ध अग्नि में सविष्टकृत् नवाहुति एवं चारों आहुतियाँ देनी चाहिये।

4.7.1 होम में अग्नि पूजा का विचार-

लौकिक, स्मार्त और श्रौत अग्नियों को आत्माभिमुख (अग्नि को अपनी ओर करके) स्थापित करना चाहिये। ताम्रादि पात्रों में पात्र से ढँककर अग्नि की स्थापना करनी चाहिये। या शराव अर्थात मिट्टी के पात्र से या शुभ्र कांस्य पात्र से या नवीन दृढ़ पात्र से अग्नि का प्रणयन किया जा सकता है।संस्कार भास्कर में लिखा गया है कि शराव पात्र में, कपाल पात्र में या उल्मुख पात्र में रखी हुयी अग्नि से अग्नि प्रणयन नहीं करना चाहिये क्योंकि उससे व्याधि एवं हानि का भय रहता है। इनमे शराव निषेध वचन मिलता है।कपाल का अर्थ खप्पर, उल्मुक पात्र का तात्पर्य पूर्व में प्रज्वलित अग्नि वाला पात्र। संपुटपात्र में अग्नि लाकर अग्नि कोण में स्थापित करके आमक्रव्यभुक अग्नि का त्याग करके अग्नि प्रणयन करना चाहिये। कुशकण्डि का भाष्य में लिखा गया है कि जिस पात्र में अग्नि को लाया जाता है उस पात्र में प्रणयन के बाद अक्षत एवं जल डालना चाहिये नहीं तो यजमान के लिये वह भयावह होता है।

जिस पात्र में अग्नि को लाया जाय उस पात्र का प्लावन तुरंत करना चाहिये। अन्यथा कर्ता के मन में एवं कराने वाले दोनों के मन में संताप होता है। अग्नि का वर्णन करते हुए कहा गया है कि अरणी जन्य अग्नि उत्तम होती है, सूर्यकान्त जन्य मध्यम एवं श्रोत्रियागार की अग्नि उत्तम तथा अपने घर की अग्नि मध्यम होती है।सूर्यकांत से या श्रोत्रिय के घर से लायी गयी अग्नि से क्रव्यादांश निकालकर अग्नि का प्रयोग करना चाहिये। मंत्र महोदधि में कहा गया है कि सूर्यकांत से या अरणी से निःसृत अग्नि को ढँक कर यत्न पूर्वक लाना चाहिये। उसके बाद मूल मंत्र से उसका संस्कार करके स्थापित करना चाहिये। त्याज्य अग्नि का वर्णन करते हुए कहा गया है कि चांडाल की अग्नि, अमेध्य, सूतकाग्नि, चिताग्नि, और पतिताग्नि को शिष्ट ग्रहण नहीं माना है।

ॐ अग्निदूतं पुरोदधे ह्त्यवाह मुपब्रुवे।देवाँ २ आसादयादिह

इस मंत्र के द्वारा अग्नि कुण्ड की प्रदक्षिणा करके स्वात्माभिमुख करके योनि मार्ग से कुण्ड में स्थापित करें।एवं अग्नि को तीन आचमन घृत से करवायें।

तद्रक्षार्थं कचिन्काष्ठं दद्यात्। अग्नि को प्रज्वलित करें।

ॐ चित् पिङ्गल हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाऽऽज्ञापय स्वाहा।

ॐ अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनं।

सुवर्ण वर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम् ।।

सप्तजिह्वा पूजन एवं अष्टाग्नि मूर्ति पूजन भी करना चाहिये। अग्नि पुराण के अनुसार पहले अग्नि के गर्भाधान से विवाह पर्यन्त १५ संस्कार कराये जाते हैं। अग्नि की पूजा हेतु अग्नि के बीच में गंध, पुष्प दिया जा सकता है इसमें संशय कथमपि नहीं है नैवेद्य बारह रखने चाहिये ऐसा निश्चय किया गया है। इसके पश्चात ही अग्नि यंत्र के देवता की आहुति दें। उसके बाद यज्ञ का अधिकार मिलता है। अतः आधार होम **" प्रजापाते स्वाहादि"** क्रम होम इसके पश्चात करें।

4.8 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों !

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान चुके होंगे कि कर्मकाण्ड एवं अनुष्ठान की सम्पन्नता हेतु हवन किया जाता है। हवन करने के लिये कर्मकाण्ड में दो ही स्थान निर्धारित किये

गये हैं जिसमें एक कुण्ड हैं तथा दूसरा स्थण्डिल। यज्ञ को किस प्रकार व्यवस्थित ढंग सम्पन्न किया जाय इसके लिए शास्त्रों में विधान का वर्णन है। सर्व प्रथमयज्ञ हेतु उत्तम भूमि का ही चयन करना चाहिये।तभी उसका उत्तम फल प्राप्त होता है। शास्त्रों में उत्तम भूमि के अनेक लक्षणों के विषय में चर्चा की गई है। कुण्डों के विषय में आपने जाना कि शास्त्रों में कुण्ड के विषय में तीन पक्ष प्राप्त होते है। जिनको नवकुण्डी, पञ्चकुण्डी एवं एककुण्डी कहा जाता है। इनमे नवकुण्डी में नौ कुण्ड होते है, पञ्चकुण्डी में पाँच कुण्ड होते हैं, एवं एककुण्डी में एक कुण्ड होता है । कुण्ड निर्माण हेतु मण्डप के विषय में कहा गया है कि मण्डप 10 से 12 हाथ अधम माना जाता है। 12 से 14 हाथ मध्यम व 16 से 18 हाथ का मण्डप उत्तम माना जाता है। मण्डप चौकोर बनाया जाना चाहिये। इसी क्रम मेंकुण्ड, मेखला ,योनि इत्यादि के विषय में आपने भली–भांति जाना। आहुतियों के विषय में आपने जाना कि अग्नि का मुख नीचे की ओर रहता है, पैर ऊपर की ओर रहता है एवं दिशा उसकी प्राङ् मुख होती है। इस प्रकार अग्नि का स्वभाव है, अब अग्नि को आहुति कहाँ दिया जाय यह प्रश्न उठता है। निवारण यह है कि सपवित्रिक जल से अग्नि की प्रदक्षिणा करने पर हव्यवाट् अग्नि को देखकर सम्मुख हो जाता है। आघार संज्ञक आहुतियों को नासिका, आज्य संज्ञक आहुतियों को आँख तथा व्याहृतियों को मुख, उदर, कुक्षि एवं कटि माना गया है।अग्नि के कान में हवन करने से व्याधि का भय होता है, नेत्र में करने से अंधत्वा नाक में करने से मन में पीड़ा एवं मस्तक में करने से धन का क्षय होता है। अग्नि के कान में हवन करने से निश्चित रूप से दुर्भिक्ष एवं मरण की प्राप्ति होती है। नासिका में हवन करने से मन में दुख एवं नेत्र में करने से ग्राम का विनाश का फल बताया गया है। अधिक काष्ठ को प्रज्वलित करके दाहिने हाथ से हवन करना चाहिये।स्रुव से आज्य ग्रहण कर अग्नि के प्रत्यग् उत्तर की ओर से हवन करना चाहिये। आग्नेय कोण से आरम्भ कर सीधी आज्य धारा देनी चाहिये। प्रजापति को आहुति देते समय मन से स्मरण कर स्वाह करना चाहिये। नैऋत्य दिशा से ईशान तक आज्य प्रक्षेपण करना चाहिये। इन्द्र के लिये उपांशु वाचन पूर्वक हवन करना चाहिये। स्वाह कहते हुए आघार दिया जाता है यही करण है कि इस आहुति को आघार की उपमा दी गयी है। और पूर्व दिशा में भी ये आहुतियाँ दी जा सकती हैं।आघार संज्ञक आहुतियों के पश्चात अग्नि एवं सोम के लिये आहुतियाँ देनी चाहिये। इसमें प्रथम आहुति ईशान कोण के अग्र भाग में तथा दूसरी आहुति अग्नि कोण में होगी। सुसमिद्ध अग्नि में सविष्टकृत् नवाहुति एवं चारों आहुतियाँ देनी चाहिये इत्यादि का आपने भली- भांति अध्ययन किया।

4.9 पारिभाषिक शब्दावली

- पृथक - अलग
- कुटुम्ब - परिवार
- आहुति - हवन में अग्नि को समर्पित की जाने वाली वस्तु
- शुक्ल - सफेद
- मृत्स्ना - मिट्टी
- सा - वह
- धनदा - धन देने वाली

- नवकुण्डी - नौ कुण्ड
- पञ्चकुण्डी - पाँच कुण्ड
- शत्रुनाशः - शत्रु का नाश
- तिक्त - तीखी
- प्रोक्तं - कहा गया है
- कण्ठ रहितं - कण्ठ से रहित
- पश्चात - बाद
- निवारण - दूर करना / हटाना
- नासिका - नाक
- कर्ण - कान

अभ्यास प्रश्न 1

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिये।

1. उत्तम एवं सुगंधित भूमि को क्या कहा जाता है ?
   (क) क्षत्रिय
   (ख) ब्राह्मणी
   (ग) वैश्य
   (घ) इनमे से कोई नहीं
2. 16 से 18 हाथ के मण्डप को माना जाता है।
   (क) उत्तम
   (ख) मध्यम
   (ग) अधम
   (घ) उत्तमोत्तम
3. शस्त्रों में कुण्ड के विषय में कितने पक्ष प्राप्त होते है।
   (क) एक
   (ख) दो
   (ग) तीन
   (घ) चार
4. कुण्ड में मेखला टूटी-फटी हो तो उसका क्या फल बताया गया है ?
   (क) धेनु क्षय
   (ख) अंधपन
   (ग) धनहानि
   (घ) मरण
5. कर्मकाण्ड एवं अनुष्ठान में हवन करने हेतु कुण्ड और किसका का विधान है ?
   (क) स्थण्डिल
   (ख) मेखला

(ग) योनि

(घ) इनमे सी कोई नहीं

(2) रिक्तस्थानों की पूर्ति कीजिये।

1. पञ्चकुण्डी में कुण्डों की संख्या----------होती हैं।
2. कि कर्मकाण्ड एवं अनुष्ठान की सम्पन्नता हेतु----------किया जाता है।
3. हवन करने के लिये कर्मकाण्ड में दो ही स्थान निर्धारित किये गये हैं जिसमें एक कुण्ड हैं तथा दूसरा---------है।
4. इन्द्र के लिये--------वाचन पूर्वक हवन करना चाहिये।
5. कुण्ड निर्माण हेतु मण्डप के विषय में कहा गया है कि 10 से 12 हाथ के मण्डप को --------- माना जाता है।

(3) सही गलत का चयन कीजिये।

1. पाँच वरुण संज्ञक मंत्रों को शिर, हाथ एवं पादुका कहा गया है। प्रजापति एवं स्विष्टकृत् आहुतियों को कान माना गया है। ( )
2. होम मुद्रा तीन प्रकार की होती है मृगी, हंसी, और सूकरी। ( )
3. वैश्य के लिए दक्षिण ढालवाली भूमि अशुभ होती है। ( )
4. अग्नि के कान में हवन करने से मरण का भय होता है ( )
5. अग्नि पुराण के अनुसार पहले अग्नि के गर्भाधान से विवाह पर्यन्त १५ संस्कार कराये जाते हैं। ( )

4.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 1 ख, 2 क, 3 ग, 4 घ, 5 क
2. 1 पाँच, 2 हवन, 3 स्थण्डिल, 4 उपांशु, 5 अधम
3. 1 सही, 2 सही, 3 गलत, 4 गलत, 5 सही

4.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. स्तोत्र पाठ एवं होम विधि, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
2. सर्वकर्म अनुष्ठान प्रकाश – पं रमेश चंद्र शर्मा 'मिश्र'
3. कर्मकाण्ड भास्कर, श्रीराम शर्मा आचार्य

4.12 अन्य सहायक पुस्तकें

1. नित्य कर्म पूजाप्रकाश
2. बृहद् कर्मकाण्ड
3. कर्मकाण्ड प्रदीप

4.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. कुण्ड निर्माण हेतु भूमि शोधन विचार का विवेचन किजिये।
2. 'होम में मुद्रा विचार'का वर्णन कीजिये।
3. कुण्ड निर्माण विधान का वर्णन कीजिये।

इकाई 5 पूर्णाहुति विधान

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 होमान्त कृत्य विचार
5.4 पूर्णाहुति विचार
5.5 पूर्णाहुति में मंत्र संस्कार
5.6 पूर्णाहुति में मुद्रा विचार
5.7 सारांश
5.8 पारिभाषिक शब्दावली
5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.10 संदर्भ सूची ग्रंथ
5.11 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों !

प्रस्तुत इकाई पूर्णाहुति विधान से संबंधित है । कर्मकाण्ड एवं अनुष्ठान इत्यादि की सम्पन्नता हेतु बलि विधान एवं पूर्णाहुति का विधान सर्वविदित है । शास्त्र कहता है – **"पूर्णाहुत्या सर्वान् कामानवाप्नोति"** अर्थात पूर्णाहुति से सभी कामनाओं की प्राप्ति होती है । इस इकाई में आप पूर्णाहुति में प्रयुक्त विधान को जानेंगे जैसे कि होमावसान में पुष्प धूप इत्यादि से बलि की पूजा करके लोकपतियों को आवाहित कर बलिदान देना चाहिये ।पश्चात पूर्णाहुति प्रदान कर बर्हिहोम करना चाहिये । बर्हिहोम करने के पश्चात प्राशन करने का विधान है । सर्वदा पूर्णाहुति दोनों हाथों से देनी चाहिये । एक हाथ से दी गई पूर्णाहुति निरर्थक मानी जाती है । शंख के समान मुद्रा बनाकर स्रुचि को वामस्तनान्त तक रखना चाहिये । सप्तते अनुवाक, आग्नेय सूक्त, वैष्णव, रौद्र, एंदव, महावैश्वानर एवं चमक मंत्रों को पढ़ना चाहिये । विवाहादि क्रिया में शालापूजन मे, नित्य होम में और वृषोत्सर्ग में पूर्णाहुति नहीं देनी चाहिये । पूर्णाहुति में मृडनाम की अग्नि का पूजन किया जाता है । इत्यादि का आप इस इकाई में अध्ययन करने जा रहे हैं ।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेंगे कि –

- कर्मकाण्ड को लोकोपकार कैसे बनाया जाय ?
- होमान्त कृत्य विचार के बारे में जान पायेंगे ।
- पूर्णाहुति विचार के बारे में भली-भांति जानेंगे ।
- मुद्राओं के बारे में भली- भांति जानेंगे ।

5.3 होमान्त कृत्य विचार

होमावसाने कृत् तूर्यनादौ गुरुर्गृहीत्वा बलिपुष्प धुपम् ।
आवाहयेल्लोकपतीन् क्रमेण मन्त्रैरमीभिर्यजमानयुक्तः ।

होमावसान में पुष्प धूप इत्यादि से बलि की पूजा करके लोकपतियों को आवाहित कर बलिदान देना चाहिये । पश्चात पूर्णाहुति प्रदान कर बर्हिहोम करना चाहिये। बर्हिहोम करने के पश्चात प्राशन करने का विधान है । हरिहर जी ने लिखा है – **"सर्वेषामाहुतीनां होमद्रव्यं स्रवेऽवशेषितं संस्रवत्वेन प्रसिद्धं पात्रान्तरे प्रक्षिप्यते तत्प्राश्यम् ।"**सभी आहुतियों का होमावशेष संस्रवके रूप में जो पात्रान्तर में रखा गया है उसे प्राशन करना चाहिये ।

ऐशान्यामाहरेद्भस्म स्रुचा वाथ स्रुवेण वा ।
अंकनं कारयेत्तेन शिरः कण्ठांसकेषु च ।

स्रुचि या स्रुव से ईशान कि ओर से भस्म लेकर शिर, कंठ, एवं कंधे में धारण करनी चाहिये । उसके बाद श्रेय का दान संपादित करके अभिषेक एवं विसर्जन करना चाहिये । तदन्तर विप्र से आशीष ग्रहण करके उनको मिष्ठान का भोजन कराना चाहिये । ब्राह्मण भोजन संख्या पर विचार करते हुए कहा गया है कि –

शान्तौ वक्ष्ये भोजयेत् होमाद्विप्रान्दशांशतः ।
उत्तमं तद्भवेद् कर्म तत्वांशेन तु मध्यमम् ।

होमाच्छतांशतो विप्रभोजनं त्वधाममं तु तत् ।
शान्तेर्द्विगुणितं विप्रं भोजनं स्तम्भने मतम् ।

हवन का दशांश ब्राह्मण भोजन कराना शान्ति के कार्यों में उत्तम माना गया है । चौबीसवाँ अंश मध्यम माना गया है । और शतांश अधम माना गया है । शांति कर्म का दुगूना स्तम्भन कर्म में ब्राह्मण भोजन का विधान है । द्वेषण , उच्चाटन एवं मारण में तिगुना भोजन की व्यवस्था बतायी गई है ।

एकं एकाहुतौ विप्रं होमं त्वन्नेन भोजयेत् ।
अत्यर्थो मध्यमश्चापि विप्रमेकं शताहुतौ ।
सहस्रस्याहुतेर्वैकं जघन्योऽप्रभाजयेत् ।
अन्यथा दहति क्षिप्रं तद्राष्ट्रं नात्र संशयः ।

अर्थात् हवन में एक आहुति करने पर एक ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिये । सौ आहुतियाँ देकर एक ब्राह्मण को भोजन कराना मध्यम पक्ष है । एक हजार आहुतियाँ देकर एक ब्राह्मण को भोजन कराने का पक्ष जघन्य पक्ष कहलाता है । ऐसा नहीं करने करने पर वह राष्ट्र नष्ट हो जाता है । दक्षिणा या अन्न का दान देने में जो असमर्थ होते हैं उन्हें चाहिये कि जप से, प्रमाण से, स्तोत्र से, अपने आचार्य को तृप्त करें । दक्षिणा के बारे में कहा गया है कि –

यज्ञो दक्षिणया सार्द्धं पुत्रेण च फलेन च । कर्मीणां फलदाता चेत्येवं वेदविदो विदुः ।
कृत्वा कर्म च तस्यैव तूर्णं दद्याच्च दक्षिणाम् । तत्कर्मफलमाप्नोतिवेदैरुक्तमिदं मुने ।

सदक्षिणा वाला यज्ञ पुत्र एवं फल को देने वाला होता है । मुनि जनों का कथन है कि कर्म सम्पन्न कर तुरंत दक्षिणा देनी चाहिये । एक मुहूर्त बीत जाने पर सौ गुना बढ़ जाती है । तीन रात व्यतीत होने पर दश गुना, सात दिवस बीतने पर उसका दुगुना, एक मास बीतने पर लाख गुना, एक वर्ष बीतने पर तीन करोड़ गुना दक्षिणा हो जाती है । और यजमान के द्वारा किया गया सारा कर्म निष्फल हो जाता है । वह यजमान ब्रह्म धन का अपहर्ता और समस्त कर्मों के लियेअपवित्र माना जाता है ।

अभ्यास प्रश्न 1

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिये ।

1. बर्हिहोम करने के पश्चात किसका का विधान है ?
   (क) प्राशन
   (ख) होम
   (ग) पूर्णाहुति
   (घ) इनमे से कोई नहीं
2. हवन का दशांश ब्राह्मण भोजन कराना शान्ति के कार्यों में माना गया है ।
   (क) मध्यम
   (ख) (उत्तम)
   (ग) अधम
   (घ) इनमे से कोई नहीं
3. चौबीसवाँ अंश माना गया है ।
   (क) अधम
   (ख) उत्तम

(ग) मध्यम

(घ) इनमे से कोई नहीं

4. द्वेषण , उच्चाटन एवं मारण में भोजन की व्यवस्था बतायी गई है ।

(क) द्विगुना

(ख) चार गुना

(ग) पाँच गुणा

(घ) तिगुना

5. एक हजार आहुतियाँ देकर एक ब्राह्मण को भोजन कराने का पक्ष कहलाता है ।

(क) जघन्य

(ख) सामान्य

(ग) मध्यम

(घ) इनमे से कोई नहीं

(2) रिक्तस्थानों की पूर्ति कीजिये ।

1. सभी आहुतियों का होमावशेष संस्रव के रूप में जो पात्रान्तर में रखा गया है उसे ---------- करना चाहिये ।

2. स्रुचि या स्रुव से ईशान कि ओर से भस्म लेकर शिर, कंठ, एवं --------में धारण करनी चाहिये।

3. द्वेषण , उच्चाटन एवं मारण में---------- भोजन की व्यवस्था बतायी गई है ।

4. हवन में एक आहुति करने पर---------- ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिये ।

5. दक्षिणा या अन्न का दान देने में जो असमर्थ होते हैं उन्हें चाहिये कि जप से, प्रमाण से, स्तोत्र से, ---------- को तृप्त करें ।

(3) सही गलत का चयन कीजिये ।

1. श्रेय का दान संपादित करके अभिषेक एवं विसर्जन करना चाहिये । ( )

2. मुनि जनों का कथन है कि कर्म सम्पन्न कर तुरंत दक्षिणा देनी चाहिये । ( )

3. एक वर्ष बीतने पर तीन करोड़ गुना दक्षिणा हो जाती है । ( )

4. एक मुहूर्त बीत जाने पर दक्षिना दो गुना बढ़ जाती है । ( )

5. सौ आहुतियाँ देकर एक ब्राह्मण को भोजन कराना उत्तम पक्ष है । ( )

5.4 पूर्णाहुति विचार

चतुर्गृहीतमाज्यं तद्गृहीत्वा स्रुचि मध्यतः ।
व्स्त्रतांबूलपूंगादिफलपुष्पसमन्विताम् ।
अधोमुखस्रुवच्छन्नां गन्धाक्षतसमन्विताम् ।
पूर्व दक्षिणहस्तेन पश्चाद्वामेन पाणिना ।
अग्रमध्यममध्यस्तं मूलमध्यममध्यतः ।
पाणिद्वयेन होतव्य पाणिरेको निरर्थकः ।
गृहीत्वाथस्रुवं कर्ता शंखसन्निभमुद्रया ।
वामस्तनान्तमानीय नाभिमूलात्स्रुचं ततः ।
सप्तेत्यनुवाकान्ते मखे सूक्तान्विशेषतः ।

श्रावयेत्सूक्तमाग्नेयं वैष्णवं रौद्रमैन्दवम्।
महावैश्वानरं चापि चमकानि ततः पठेत्।
विवाहादि क्रियायां च शालायां वास्तुपूजने।
नित्यहोमे वृषोत्सर्गे न पूर्णाहुतिमाचरेत्।

पूर्णाहुति हेतु स्रुचि के मध्य में आज्य रखकर उसमे वस्त्र, ताम्बूल, पुंगीफल, पुष्प समन्वित पूर्णाहुति रखनी चाहिये। उसको अधोमुख स्रुव से आच्छन्न करके गन्धाक्षत से समन्वित करके दाहिना हाथ पूर्व में बायाँ हाथ उसके पश्चात होना चाहिये। ये हाथ स्रुचि के आगे एवं मध्य के मध्य में तथा मूल एवं मध्य के मध्य में होना चाहिये। सर्वदा पूर्णाहुति दोनों हाथों से देनी चाहिये। एक हाथ से दी गई पूर्णाहुति निरर्थक मानी जाती है। शंख के समान मुद्रा बनाकर स्रुचि को वामस्तनान्त तक रखना चाहिये। सप्तते अनुवाक, आग्नेय सूक्त, वैष्णव, रौद्र, एंदव, महावैश्वानर एवं चमक मंत्रों को पढ़ना चाहिये। विवाहादि क्रिया में शालापूजन मे, नित्य होम में और वृषोत्सर्ग में पूर्णाहुति नहीं देनी चाहिये। पूर्णाहुति में मृडनाम की अग्नि का पूजन किया जाता है। यदि यह पूजन पहले नहीं किया हो तो पूर्णाहुति के समय किया जाना चाहिये। **ॐ मृडानाम्ने वैश्वनराय नमः। इति मंत्रेण** पूर्णाहुति से पहले स्रुव स्रुक को तपाया जाता है। और कुशाओं से मार्जन करें। प्रणीता के जल से प्रोक्षण करके पुनः तपायें। इसके पश्चात विनियोग करें–

अद्य पर्वोच्चारित तिथौ कृतस्य इदं यज्ञ हवनाख्यस्य सम्पूर्णता सिद्धयर्थं वसोर्द्धारा समन्वित पूर्णाहुति होमं चाहं करिष्ये।

इसके पश्चात स्रुव से चार बार घी भरें उस पर नारिकेल में छेद करके रखें,उसमें घी भरें तथा लाल वस्त्र लपेंटे , मोली बाँधें, सुपारी रखें एवं स्रुव को उल्टा रखें। स्रुक को बाँय हाथ में व स्रुव को दाहिने हाथ में पकड़ें। उनमें मरुदगणों का पूजन करें। कहीं-कहीं स्रुक में घी भरकर उसमें सुपारी रखकर वस्त्र मोली से वेष्ठिकरउस पर नारिकेल रखते हैं। तिलादि द्रव्य रखें। अवशेष को अन्य होताओं को दें।

विनियोग- ॐ मूर्द्धानमिति मन्त्रस्य भारद्वाज ऋषि वैश्वानरोदेवता त्रिष्टुपछंदः पूर्णाहुति होमे विनियोगः।

ॐ मूर्द्धानं दिवो अरति पृथिव्या वैश्वानरमृत आजातमग्निम्।
कवि ठं साम्राज्यमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः।।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥ॐ शान्ति, शान्ति, शान्तिः

वसोर्द्धराहोम- औदुम्बर की बनी वसोर्द्धर पर स्रुक का अग्रभाग रखें, आज्या पात्र से स्रुचि में घी डालते हुये वसोर्द्धारा देवें।

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्।
देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः स्वाहा।

स्रुक डाल देवें। पश्चात अग्नि की प्रदक्षिणा करें। एवं अपने स्थान पश्चिम दिशा में खड़े होकर प्रार्थना करें –

त्राहिमां पुण्डरीकाक्ष न जाने परमं पदम्।
कालष्वपि च सर्वेषु दिक्षु सर्वासु चाच्युत।
अकाल कलुषं चित्तं मम ते पादयोः स्थितम्।

कामये विष्णुपादौ तु सर्व जन्मसु केवलम्।

अभ्यास प्रश्न 2

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिये।

1. सर्वदा पूर्णाहुति कैसे देनी चाहिये ?

एक हाथ से

दोनों हाथों से

केवल दायें हाथ से

इनमे से कोई नहीं

2. पूर्णाहुति में कौन सी अग्नि का पूजन किया जाता है ?

पावमान

काव्य

मृडानाम

इनमे से कोई नहीं

3. पूर्णाहुति से पहले किसे अग्नि में तपाया जाता है ?

कुशा को

स्रुव स्रुक को

हवन को

जल को

4. पूर्णाहुति मे मार्जन किससे किया जाता है ?

कुशाओं से

घी से

अग्नि से

पुष्प से

5. पूर्णाहुति नहीं देनी चाहिये।

भगवात में

देवी के अनुष्ठान में

नवग्रह हवन में

विवाह में

(2) रिक्तस्थानों की पूर्ति कीजिये।

1. ॐ मृडानाम्ने ---------- नमः। इति मंत्रेण

2. वसोः ---------- शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्।

3. कामये ---------- तु सर्व जन्मसु केवलम्।

4. पूर्णाहुति से पहले स्रुव स्रुक को तपाया जाता हैकु, शाओं से मार्जन करें। ---------- के जल से प्रोक्षण करके पुनः तपायें।

5. पूर्णाहुति से पहले ---------- को तपाया जाता है।

(3) सही गलत का चयन कीजिये।

1. औदुम्बर की बनी वसोर्द्धर पर स्रुक का अग्रभाग रखें, आज्या पात्र से स्रुचि में घी डालते हुये वसोर्द्धारा देनी चाहिये। ( )
2. पूर्णाहुति से पहले स्रुव स्रुक को तपाया जाता है। और कुशाओं से मार्जन कर। प्रणीता के जल से प्रोक्षण करके पुनः तपाया जाता है। ( )
3. सर्वदा पूर्णाहुति दोनों हाथों से देनी चाहिये। एक हाथ से दी गई पूर्णाहुति निरर्थक मानी जाती है। ( )
4. पूर्णाहुति में मृडनाम की अग्नि का पूजन किया जाता है। यदि यह पूजन पहले नहीं किया हो तो पूर्णाहुति के समय किया जाना चाहिये। ( )
5. पूर्णाहुति में मार्जन चावल से किया जाता है। ( )

5.5 पूर्णाहुति में मंत्र संस्कार

मन्त्राणां दश कथ्यन्ते संस्काराः सिध्ददायिनः।
जननं जीवनं पश्चात् ताडनं बोधनं तथा।
अभिषेको विमलीकारणाप्यायने पुनः।
तर्पणं दीपनं गुप्तिर्दशैता मन्त्रसंस्क्रियाः।

मंत्रों के दश संस्कारों के बारे में कहा गया है। इन दश संस्कारों से मंत्रों को सिद्धि प्राप्त होती है ऐसा बताया गया है। यह दश संस्कार इस प्रकार से हैं – जनन , जीवन, ताड़न, बोधन, अभिषेक, विमलीकरण, आप्यायन, तर्पण, दीपन, व गुप्ति।

मन्त्राणां मातृकायन्त्रादुध्दारो जननं स्मृतम्।
प्रणवान्तरितान्कृत्वा मन्त्रवर्णांजपेत्सुधीः।
एतज्जीवनमित्याहुर्मन्त्रतन्त्रविशारदाः।

मातृकाओं के बीच से मंत्रों का उद्धार जनन संस्कार कहलाता है। विशेष – भोज पत्र पर गोरोचन आदि से समत्रिभुज लिखना चाहिये। पश्चिम के कोण से प्रारंभ कर उसे सात समान भागों में विभक्त करना चाहिये। इसी प्रकार ईशान एवं आग्नेय कोण से भी उसे सात – सात समान भागों में विभक्त करना चाहिये। इस प्रकार से इसमें 49 योनियों का निर्माण होगा। इस चक्र में ईशान कोण से आरंभ कर पश्चिम तक आकार से हकार पर्यंत समस्त वर्णों को लिखना चाहिये। उस पर मातृका देवी का आवाहन कर चंदन आदि से उसका पूजन करना चाहिये। फिर उसमे मंत्र के एक- एक वर्ण का उद्धार करना चाहिये। इस विधि को जनन संस्कार कहा जाता है। प्रणवान्तरित मंत्रवर्णों का जप जीवन के नाम से जाना जाता है। मंत्र वर्णों को लिखकर चंदन एवं जल से ताडन किया जाता है। मंत्र जप कर्ता उस मंत्र को करवीर के पुष्पों से लिखकर मंत्राक्षर संख्या के अनुसार बोधन करे। मंत्र की ऋण संख्या के हिसाब से अश्वत्थ पल्लवों से विशुद्धि हेतु अभिषेक करें। ज्योतिर्मंत्र से दोहन कर विमलीकरण करें। उसी तरह आप्यायन, तर्पण, दीपनादिमंत्रों का किया जाता है।

कलौ सिद्धिप्रदा मन्त्राः –

सिद्धिप्रदा: कलियुगे ये मन्त्रास्तान्वदाम्यतः।
त्र्यर्णएकाक्षरो अनुष्टुप् त्रिविधो नरकेसरी।
एकाक्षरो अर्जुनोनुष्टुप् द्विविधस्तुरगाननः।
चिन्तामणिः क्षेत्रपालो भैरवो यक्षनायकः।
गोपालो गजवक्त्रश्च चेटका यक्षिणी तथा।

मातंगी सुन्दरी श्यामा तारा कर्णपिशाचिनी।
शबर्येकजटावामा काली नीलसरस्वती।
त्रिपुरा कालरात्रिश्च कलाविष्टप्रदा इमे।
शापरहिता मन्त्राः –
भीष्मपर्वणि या गीता सा प्रशस्ता कलौ युगे।
विष्णोः सहस्रनामाख्यं स्तोत्रं पापप्रणाशनम्।
गजेन्द्रमोक्षणं चैव तथा कारुण्यकः स्तवः।
नारसिंहं तथा स्तोत्रं श्रीरामसंज्ञकम्।
देव्याः सप्तशती स्तोत्रं तथानामसहस्रकम्।
श्लोकाष्टकं नीलकण्ठं शैवं नामसहस्रकम्।
त्रिपुरायाः प्रसादाख्यं सूर्यस्य स्तवराजकम्।
पैत्रोरुचिस्तवो यश्च इन्द्राक्षीस्तोत्रमेव च।
वैष्णवं च महालक्ष्म्याः स्तोत्रमिन्द्रेणभाषितम्।
भार्गवाख्येन रामेण शप्तान्यन्यानि कारणात्।

कलियुग में सिद्धिदायक मंत्रों के बारे में मंत्रमहोदधि में कहा गया है कि नृसिंह का त्र्यक्षर मंत्र, एकाक्षर मंत्र, एवं अनुष्टुप् इस तरह के तीन प्रकार के नृसिंह मंत्र, एकाक्षर एवं अनुष्टुप् दो प्रकार के अर्जुन मंत्र, दो प्रकार के हयग्रीव मंत्र, चिन्तामणि मंत्र, तथा क्षेत्रपाल मंत्र, भैरव मंत्र, यक्षराज मंत्र, गोपाल मंत्र, गणपति मंत्र, चेटका यक्षणी मंत्र, मातंगी मंत्र, सुंदरी मंत्र, श्यामा मंत्र, तारा मंत्र, कर्ण पिशाचिनी मंत्र, शबरी मंत्र, एकजटा मंत्र, वामाकाली मंत्र, नीलसरस्वती मंत्र, त्रिपुरा मंत्र, एवं काल रात्री मंत्र, ये सभी कलियुग में इष्ट प्रदान करने वाले मंत्र बताये गये हैं। शाप रहित मंत्रों का मंत्रों का वर्णन करते हुए बताया गया है कि गीता कलयुग में प्रशस्त है। विष्णु सहस्रनाम स्तोत्र पापनाशक है । गजेन्द्र मोक्ष, कारण्यकस्तव, नरसिंहस्तोत्र, श्रीरामस्तोत्र, दुर्गासप्तशती स्तोत्र, सहस्रनाम स्तोत्र, श्लोकाष्टकनीलकंठ, शिवसहस्रनामस्तोत्र, त्रिपुराप्रसादस्तोत्र, सूर्यस्तराज, पैत्र्यरुचिस्तोत्र, इंद्राक्षी स्तोत्र, विष्णु स्तोत्र, इन्द्रप्रोक्तमहा लक्ष्मी स्तोत्र, ये सभी स्तोत्र शाप रहित हैं एवं सिद्धिप्रद हैं।

अभ्यास प्रश्न 3

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिये।

1. पूर्णाहुति में मंत्रों के कितने संस्कार माने गये हैं ?
   - (**क**) दो
   - (**ख**) तीन
   - (**ग**) सात
   - (**घ**) दश
2. दश संस्कारों से मंत्रों को क्या प्राप्त होती है ?
   - (**क**) सिद्धि
   - (**ख**) ऊर्जा
   - (**ग**) शांति
   - (**घ**) इनमे से कोई नहीं
3. किस पत्र पर गोरोचन आदि से समत्रिभुज लिखना चाहिये ?

(**क**) पीपल
(**ख**) भोज
(**ग**) कदली
(**घ**) बट

4. मंत्र की ऋण संख्या के हिसाब से अश्वत्थ पल्लवों से विशुद्धि हेतु क्या करना चाहिये ?
(**क**) अभिषेक
(**ख**) हवन
(**ग**) विसर्जन
(**घ**) पूर्णाहुति

5. किसके के बीच से मंत्रों का उद्धार जनन संस्कार कहलाता है ?
(**क**) हवन
(**ख**) पूर्णाहुति
(**ग**) अभिषेक
(**घ**) मातृकाओं

(2) रिक्तस्थानों की पूर्ति कीजिये।

1. सिद्धिप्रदा: ---------- ये मन्त्रास्तान्वदाम्यतः।
2. चिन्तामणिः क्षेत्रपालो -------- यक्षनायकः।
3. कलियुग में सिद्धिदायक मंत्रों के बारे में----------में कहा गया है
4. एक हाथ से दी गई पूर्णाहुति--------मानी जाती है।
5. पूर्णाहुति हेतु ---- के मध्य में आज्य रखकर उसमे वस्त्र, ताम्बूल, पुंगीफल, पुष्प समन्वित पूर्णाहुति रखनी चाहिये।

(3) सही गलत का चयन कीजिये।

1. सर्वदा पूर्णाहुति दोनों हाथों से देनी चाहिये, एक हाथ से दी गई पूर्णाहुति निरर्थक मानी जाती है। ( )
2. विवाहादि क्रिया में शालापूजन मे, नित्य होम में और वृषोत्सर्ग में पूर्णाहुति नहीं देनी चाहिये। ( )
3. मातृकाओं के बीच से मंत्रों का उद्धार जीवन संस्कार कहलाता है। ( )
4. कलियुग में सिद्धिदायक मंत्रों के बारे में मंत्रमहोदधि में कहा गया है ( )
5. विष्णु सहस्रनाम स्तोत्र को पापनाशक नहीं माना गया है। ( )

5.6 पूर्णाहुति में मुद्रा विचार

आवाहनादिका मुद्राः प्रवक्ष्यामि यथाक्रमम्।
याभिर्विरचिताभिस्तु मोदन्ते सर्वदेवताः।
सम्यक संपूरितः पुष्पैः कराभ्यां कल्पितोंजलिः।
आवाहनी समाख्याता मुद्रा देशिकसत्तमैः।
अधोमुखी कृता सैव प्रोक्ता स्थापनकर्मणि।
आश्लिष्टयुगला प्रोन्नतांगुष्ठयुग्मका।

सन्निधाने समुद्दृष्टि मुद्रेयं तन्त्रवेदिभिः ।
अंगुष्ठगर्भिणी सैव सन्निरोधे समीरिता ।
उत्तानौ द्वौ कृतौ मुष्टि सम्मुखीकरणी स्मृता ।
देवताङ्गे षडंगानां न्यासः स्यात् संकलीकृतिः ।
सव्यहस्तकृता मुष्टिर्दीर्घाधोमुखतर्जनी ।
अवगुंठनमुद्रेयमभितो भ्रामिता सती ।
अन्योन्याभिमुखाश्लिष्ट कनिष्ठानामिका पुनः ।
तथा च तर्जनी मध्या धेनुमुद्रा समीरिता ।
अमृतीकरणं कुर्यात्तया देशिकसत्तमः ।
अन्योन्यग्रथितांगुष्ठा प्रसारिता करांगुलि ।
महामुद्रेयमुदिता परमीकरणे बुधैः ।
योजनात्सर्वदेवानां द्रावणात्पापसंहतेः ।
तस्मान्मुद्रेति सा ख्याता सर्वकामार्थसाधिनी ।
कुम्भमुद्रा- दक्षांगुष्ठे परांगुष्ठे खिप्त्वा हस्तद्वयेन च ।
सावकाशामेकमुष्टिं कुर्यात्सा कुम्भमुद्रिका ।
कूर्ममुद्रा- वामहस्ते च तर्जन्यां दक्षिणस्य कनिष्ठिका ।
तथा दक्षिणतर्जन्यां वामांगुष्ठं नियोजयेत् ।
उन्नतं दक्षिणांगुष्ठं वामस्य मध्यमादिकाः ।
अङ्गुलीर्योजयेत्पृष्ठे दक्षिणस्य करस्य च ।
वामस्य पितृतीर्थेन मध्यमानामिके तथा ।
अधोमुखे च ते कुर्याच्छदक्षिणस्य करस्य च ।
कूर्मपृष्ठसमं कुर्यात् दक्षपाणिं च सर्वतः कूर्ममुद्रेयमाख्याता देवताध्यानकर्मणि ।

अर्थात्-आवाहनादि मुद्रा का वर्णन कर रहा हूँ । इनके करने से सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं । दोनों हाथों से अंजली बांधकर दोनों अंगूठों को अपनी - अपनी अनामिकाओं के मूल पर्वों पर लगाना चाहिये । इस मुद्रा को आवाहनी मुद्रा कहा जाता है । और आवाहनी मुद्रा को अधोमुखी बना देने से यह स्थापनी मुद्रा बन जाती है ।दोनों हाथों से मुठ्ठी बांधकर दोनों के अंगूठों को खड़ा करने से सन्निधापनी मुद्रा बन जाती है । यदि इस इस मुद्रा की मुठियों को ऊपर घुमा दें तो यह संमुखीकरणमुद्रा बन जाती है । देवताओं के षडंगन्यास में सकलीकृत मुद्रा को भी दिखाना चाहिये । बायाँ हाथ की मुठ्ठी बांधकर तर्जनी को अधोमुख करके उसे नियमित रूप से आगे पीछे करने से अवगुंठन मुद्रा बनती है । दाहिने हाथ की अंगुलियों को बायें हाथ की अंगुलियों पर रखकर दाहिने तर्जनी को मध्यमा के मध्य में लगायें । बायें हाथ की अनामिका को दाहिने हाथ की कनिष्ठिका से लगायें ।इसी प्रकार सभी अंगुलियों को योजित करने के बाद हाथों को उलट देने से धेनु मुद्रा बनती है । अमृतीकरण भी इसी प्रकार किया जाता है । अमृतीकरण के समय अमृत बीज वं का उच्चारण किया जाता है । दोनों अंगूठों को एक – दूसरे के साथ ग्रंथित कर दोनों हाथों की अंगुलियों को प्रसारित कर देने से महामुद्रा बन जाती है । यह मुद्रा साधक को सभी देवताओं से जोड़ने के लिए और पापों के समूहों को नष्ट दे ऐसे सर्वकार्य साधनी प्रक्रिया को मुद्रा कहा जाता है । दायें अंगूठे को बायें के ऊपर रखे और इसी अवस्था में दोनों हाथों की मुठ्ठीयाँ बांधे ।दोनों मुठ्ठीयों के बीच में थोड़ी जगह होनी चाहिये । इस मुद्रा को कुम्भ मुद्रा कहते हैं

। बायीं तर्जनी को दाहिनी कनिष्ठिका से मिलायें । दोबारा दाहिनी तर्जनी को बायें अंगूठे से मिलायें और दाहिने अंगूठे को ऊपर उठा दें । अब बायँ हाथ की मध्यमा और अनामिका को दाहिने हाथ की हथेली से लगायें । दाहिने हाथ को कछुए की पीठ की तरह बनायें । देवताओं के ध्याम एवं कर्म में होने वाली यह कूर्म मुद्रा है ।

प्रार्थना मुद्रा-

प्रसतांगुलिकौ हस्तौ मिथः श्लिटौ च संमुखौ ।
कुर्यात्स्वे हृदये सेयं मुद्रा प्रार्थन संज्ञिका ।
पङ्कज मुद्रा–संमुखीकृत्य हस्तौ द्वौ किंचित्संकुचितांगुली ।
मुकुली तु समाख्याता पंकजा प्रसृतैव सा ।
दक्षस्य तर्जनी मध्ये सव्ये करतले क्षिपेत् ।
अभिघातेन शब्दः स्यादस्त्रमुद्रा समीरिता ।

अर्थात दोनों हाथों को बाण के सामन विस्तृत करके तर्जनी एवं अंगूठे के घर्षण से चुटकी बजाने को अस्त्र मुद्रा कहा जाता है ।

मत्स्यमुद्रा-

दक्षपाणेः पृष्ठदेशे वामपाणितलं न्यसेत् ।
अंगुष्ठौ चालयेत्सम्यक् मुदेयं मत्स्यरूपिणी ।

अर्थात बाई हथेली को दाहिने भाग के पृष्ट भाग पर रख दें और फिर दोनों अंगूठों को हथेली को पार करते हुए मिलाएं । इस प्रकार से यह मत्स्य मुद्रा है ।

शंखमुद्रा –

वामांगुष्ठां तु संगृह्य दक्षिणेन तु मुष्टिना ।
कृत्वोत्तानं ततो मुष्टिमंगुष्ठं तु प्रसारयेत् ।
वामांगुल्यस्तथाश्लिष्टाः संयुताः सुप्रसारिताः ।
दक्षिणांगुष्ठ स्पृष्टा ज्ञेयैषा शंखमुद्रिका ।

बायें हाथ के अंगूठे को दाहिनी मुट्ठी में रखें, दाहिनी मुट्ठी को उर्ध्वमुख रखकर उसके अंगूठे को फैलायें । बायें हाथ की सभी अंगुलियों को परस्पर सटाकर फैला दें । इसके बाद बायें हाथ की फैली उंगुलियों को दाहिनी ओर घुमाकर दाहिने हाथ के अंगूठे का स्पर्श करें । यह शंख मुद्रा कहलाती है ।

गरुडमुद्रा- मिथस्तर्जनिके श्लिष्टे श्लिष्टावंगुष्ठौ तथा ।
मध्यमानामिके तु द्वौ पक्षाविव विचालयेत् ।
एषा गरुडमुद्रा स्याद्विष्णोः संतोषवर्धिनी ।

गरुड मुद्रा के लिए कहा गया है कि – दोनों हाथों के पृष्ट भाग को एक दूसरे से मिलाकर नीचे की ओर लटके हुयेदोनों हाथों को तर्जनी और कनिष्ठा को एक दूसरे के साथ ग्रथित किजिये । इसी स्थिति में दोनों हाथों की अनामिका एवं मध्यमिका को उल्टी दिशाओं में किसी पक्षी के पंखों की भांति ऊपर नीचे कीजिये । इस प्रकार से यह गरुड मुद्रा कहलाती है ।

योनि मुद्रा- मध्ये कुटिले कृत्वा तर्जन्युपरिसंस्थिते ।
अनामिके मध्यगते तथैव हि कनिष्ठिके ।
सर्वा एकत्र संयोज्या अङ्गुष्ठपरिपीडिताः ।
एषा तु प्रथमा मुद्रा योनि मुद्रा संज्ञिता ।

योनि मुद्रा के बारे में कहा गया है कि दोनों कनिष्ठकाओं को तथा तर्जनी एवं अनमिकाओं को बाँधें अनामिका को मध्यमा से पहले किंचित् मिलायें और फिर उन्हें सीधा कर दें। और फिर दोनों अंगूठों को एक दूसरे पर रखें। इस प्रकार यह योनि मुद्रा कहलाती है।दोनों हाथों को फैलाते हुये हृदय पर रखें। यह प्रार्थना मुद्रा कहलाती है। दोनों हाथों को सम्मुख करके हथेलियाँ ऊपर करें, अंगुलियों को बंद कर मुठ्ठी बांधे। फिर दोनों अंगूठों को उंगलियों के ऊपर से परस्पर स्पर्श कराये।

5.7 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों !

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान चुके होंगे कि होमावसान में पुष्प धूप इत्यादि से बलि की पूजा करके लोकपतियों को आवाहित कर बलिदान देना चाहिये।पश्चात पूर्णाहुति प्रदान कर बर्हिहोम करना चाहिये। बर्हिहोम करने के पश्चात प्राशन करने का विधान है। सर्वदा पूर्णाहुति दोनों हाथों से देनी चाहिये। एक हाथ से दी गई पूर्णाहुति निरर्थक मानी जाती है। शंख के समान मुद्रा बनाकर स्रुचि को वामस्तनान्त तक रखना चाहिये। सप्रते अनुवाक, आग्नेय सूक्त, वैष्णव, रौद्र, एंदव, महावैश्वानर एवं चमक मंत्रों को पढ़ना चाहिये। विवाहादि क्रिया में शालापूजन मे, नित्य होम में और वृषोत्सर्ग में पूर्णाहुति नहीं देनी चाहिये। पूर्णाहुति में मृडनाम की अग्नि का पूजन किया जाता है। साथ ही आपने जाना कि कलियुग में सिद्धिदायक मंत्रों के बारे में मंत्रमहोदधि में कहा गया है कि नृसिंह का त्र्यक्षर मंत्र, एकाक्षर मंत्र, एवं अनुष्टुप् इस तरह के तीन प्रकार के नृसिंह मंत्र, एकाक्षर एवं अनुष्टुप् दो प्रकार के अर्जुन मंत्र, दो प्रकार के हयग्रीव मंत्र, चिन्तामणि मंत्र, तथा क्षेत्रपाल मंत्र, भैरव मंत्र, यक्षराज मंत्र, गोपाल मंत्र, गणपति मंत्र, चेटका यक्षणी मंत्र, मातंगी मंत्र, सुंदरी मंत्र, श्यामा मंत्र, तारा मंत्र, कर्ण पिशाचिनी मंत्र, शबरी मंत्र, एकजटा मंत्र, वामाकाली मंत्र, नीलसरस्वती मंत्र, त्रिपुरा मंत्र, एवं काल रात्री मंत्र, ये सभी कलियुग में इष्ट प्रदान करने वाले मंत्र बताये गये हैं। मुद्राओं के बारे में आपने जाना कि आवाहनादि मुद्रा इनके करने से सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं। दोनों हाथों से अंजली बांध कर दोनों अंगूठों को अपनी - अपनी अनामिकाओं के मूल पर्वों पर लगाना चाहिये। इस मुद्रा को आवाहनी मुद्रा कहा जाता है। और आवाहनी मुद्रा को अधोमुखी बना देने से यह स्थापनी मुद्रा बन जाती है। दोनों हाथों से मुठ्ठी बांधकर दोनों के अंगूठों को खड़ा करने से सन्निधापनी मुद्रा बन जाती है। यदि इस इस मुद्रा की मुठियों को ऊपर घुमा दें तो यह संमुखीकरणमुद्रा बन जाती है। देवताओं के षडंगन्यास में सकलीकृत मुद्रा को भी दिखाना चाहिये। बायाँ हाथ की मुठ्ठी बांधकर तर्जनी को अधोमुख करके उसे नियमित रूप से आगे पीछे करने से अवगुंठन मुद्रा बनती है। दाहिने हाथ की अंगुलियों को बायें हाथ की अंगुलियों पर रखकर दाहिने तर्जनी को मध्यमा के मध्य में लगायें। बायें हाथ की अनामिका को दाहिने हाथ की कनिष्ठिका से लगायें।इसी प्रकार सभी अंगुलियों को योजित करने के बाद हाथों को उलट देने से धेनु मुद्रा बनती। इत्यादि मुद्राओं का भी आपने भली - भांति अध्ययन किया।

5.8 पारिभाषिक शब्दावली

- त्रिरात्रे - तीन रात
- मासे - एक महिना

- क्षिप्रं - शीघ्र
- तद्राष्ट्र - वह देश
- द्विगुणा – दुगुना
- लक्षगुणा – लाख गुना
- निष्फलं भवेत् – निष्फल हो जाता है
- सप्ताहे - एक हफ्ता
- एकाहुतौ - एक आहुति
- नात्र संशय - इसमें संशय नहीं है
- सं वत्सरे व्यतीते – एक वर्ष व्यतीत होना
- उत्तमं - उत्तम
- भवेत् - होता है
- हरण - चुराना

अभ्यास प्रश्न 4

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिये।

1. आवाहनादि मुद्रा को करने से कौन प्रसन्न होते हैं ?
   (क) नर
   (ख) असुर
   (ग) देवता
   (घ) इनमे से कोई नहीं

2. दोनों हाथों से अंजली बांध कर दोनों अंगूठों को अपनी - अपनी अनामिकाओं के मूल पर्वों पर लगाकर कौन सी मुद्रा बनती है ?
   (क) आवाहनी मुद्रा
   (ख) शंख मुद्रा
   (ग) मत्स्य मुद्रा
   (घ) इनमे से कोई नहीं

3. दोनों हाथों को बाण के सामन विस्तृत करके तर्जनी एवं अंगूठे के घर्षण से चुटकी बजाने को कौन सी मुद्रा कहा जाता है ?
   (क) शंख मुद्रा
   (ख) मत्स्य मुद्रा
   (ग) आवाहनी मुद्रा
   (घ) अस्त्र मुद्रा

4. बाई हथेली को दाहिने भाग के पृष्ट भाग पर रख दें और फिर दोनों अंगूठों को हथेली को पार करते हुए मिलाएं इस प्रकार मुद्रा बनती है।
   (क) मत्स्य मुद्रा
   (ख) शंख मुद्रा

(ग) आवाहनी मुद्रा

(घ) अस्त्र मुद्रा

5. देवताओं के षडंगन्यास में कौन सी मुद्रा दिखानी चाहिये।

(क) शंख मुद्रा

(ख) मत्स्य मुद्रा

(ग) सकलीकृत मुद्रा

(घ) इनमे से कोई नहीं

(2) रिक्तस्थानों की पूर्ति कीजिये।

1. दोनों हाथों से मुठ्ठी बांधकर दोनों के अंगूठों को खड़ा करने पर ---------- मुद्रा बन जाती है।

2. दोनों हाथों से अंजली बांध कर दोनों अंगूठों को अपनी - अपनी अनामिकाओं के मूल पर्वों पर लगाने से ---------- मुद्रा बनती है।

3. प्रसतांगुलिकौ ह्स्तौ मिथः श्लिटौ च संमुखौ। कुर्यात्स्वे हृदये सेयं मुद्रा ------ संज्ञिका।

4. संमुखीकृत्य ह्सतौ द्वौ किंचित्संकुचितांगुली। मुकुली तु समाख्याता---------- प्रसृतैव सा।

5. आवाहनादिका मुद्राः प्रवक्ष्यामि यथाक्रमम्। याभिर्विरचिताभिस्तु---------सर्वदेवताः।

(3) सही गलत का चयन कीजिये।

1. आवाहनादि मुद्रा को करने से सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं। ( )

2. आवाहनी मुद्रा को अधोमुखी बना देने से यह स्थापनी मुद्रा बन जाती है। ( )

3. दोनों हाथों के पृष्ट भाग को एक दूसरे से मिलाकर नीचे की ओर लटके हुये दोनों हाथों को तर्जनी और कनिष्ठा को एक दूसरे के साथ ग्रथित करने से योनि मुद्रा बन जाती है। ( )

4. बाई हथेली को दाहिने भाग के पृष्ट भाग पर रख दें और फिर दोनों अंगूठों को हथेली को पार करते हुए मिलाने से मत्स्य मुद्रा बन जाती है। ( )

5. दाहिने हाथ की अंगुलियों को बायें हाथ की अंगुलियों पर रखकर दाहिने तर्जनी को मध्यमा के मध्य में लगायें। बायें हाथ की अनामिका को दाहिने हाथ की कनिष्ठिका से लगायें। इसी प्रकार सभी अंगुलियों को योजित करने के बाद हाथों को उलट देने से धेनु मुद्रा बनती है। ( )

5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1- 1 क , 2 ख, 3 ग, 4 घ, 5 अ

2- 1 प्राशन , 2 कंधे, 3 तिगुना, 4 एक, 5 आचार्य

3- 1 सही, 2 सही, 3 सही, 4 गलत , 5 गलत

अभ्यास प्रश्न 2

1- 1 ख, 2 ग, 3 ख, 4 क, 5 घ

2- 1 वैश्वनराय , 2 पवित्रमसि, 3 विष्णु पदौ, 4 प्रणीता, 5 स्रुव स्रुक

3- 1 सही, 2 सही, 3 सही , 4 सही, 5 गलत

अभ्यास प्रश्न 3

1- 1 घ, 2 क, 3 ख, 4 क, 5 घ

2- 1 कलियुगे, 2 भैरव, 3 मंत्र महोदधि, 4 निरर्थक, 5 स्रुचि

3- 1 सही, 2 सही, 3 गलत, 4 सही, 5 गलत

अभ्यास प्रश्न 4

1- 1 ग, 2 क, 3 घ, 4 क, 5 ग
2- 1 सन्निधापनि, 2 आवाहनी मुद्रा, 3 प्रार्थना, 4 पंकजा, 5 मोदन्ते
3- 1 सही, 2 सही, 3 गलत, 4 सही, 5 सही

5.10 संदर्भ सूची ग्रंथ

1. स्तोत्र पाठ एवं होम विधि, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय
2. सर्वकर्म अनुष्ठान प्रकाश – पं रमेश चंद्र शर्मा 'मिश्र'
3. नित्य कर्म पूजा प्रकाश
4. बृहद कर्मकाण्ड
5. कर्मकाण्ड प्रदीप

5.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. पूर्णाहुति विचार लिखिए ।
2. पूर्णाहुत का महत्व लिखिए।
3. मुद्रा विचार लिखिए।
4. होमान्त कृत्य विचार लिखिए।

खण्ड- तीन (Section-C)
संस्कारों का स्वरूप एवं महत्व

इकाई.1 संस्कार अर्थ एवं परिभाषा

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 संस्कार का अर्थ और परिभाषा
1.3.1 संस्कार का अर्थ
1.3.2 संस्कार की परिभाषा
1.4 संस्कार के सन्दर्भ में समाजशास्त्रीय मान्यता
1.5 संस्कारों का नैतिक उद्देश्य
1.6 व्यक्तित्व के निर्माण में संस्कारों का योगदान
1.7 संस्कार के प्रकार
1.8 सारांश
1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में आप संस्कार शब्द का अर्थ, महत्व एवं उसके उद्देश्यों एवं सोलह संस्कारों का सामान्य अध्ययन करेंगे। हिन्दू व्यवस्था में इन संस्कारों का विधान व्यक्ति के शरीर को पवित्र बनाने के उद्देश्य से किया गया ताकि वह व्यक्तिगत व सामाजिक विकास के लिए उपयुक्त बन सके। यह वह क्रिया है जिसके सम्पन्न होने पर कोई वस्तु किसी उद्देश्य के योग्य बनती है।

हम भारत में है इसलिए भारतीय है। जो हममें है वही हमारी संस्कृति है, जो हमारे पास है, वही हमारी सभ्यता है। क्या आपने कभी सोचा है कि भारतीय संस्कृति की सुरक्षा किस प्रकार सम्भव है? किस प्रकार पद्धति के आश्रय से प्राप्त किए गये ज्ञान हम अपनी संस्कृति को लगातार बनाये रख सकते हैं? भारत में ज्ञान प्राप्त करने की कौन सी परम्परा रही है? परम्परा का अर्थ है बिना किसी व्यवधान के, श्रृंखला के रूप में किसी भी कार्य का होते रहना। भारतीय संस्कृति में गुरू के पास रहकर विद्या का अध्ययन होता रहा है, शिक्षा ग्रहण की जाती रही है, इसे गुरु शिष्य परम्परा ' कहते है। इसी परम्परा से ज्ञान, सदाचार, कलाओं, महाविद्याओं के मूल तयों का ज्ञान हो सकता है, उनके अस्तित्व का पता लग सकता है। यही भारतीय ज्ञान परम्परा है. यह हिन्दू, सिख, जैन और बौद्ध आदि में समान रूप से पायी जाती है। ज्ञान के विषय के भीतर आध्यात्मिक, कलात्मक (संगीत, नृत्य) आदि या शैक्षणिक सभी विद्याएं भी है।

यास्क नामक प्राचीन भारतीय विद्वान, जिन्होंने शब्दों का निर्वाचन परिभाषा लिखा है, उन्होंने परम्परा की बहुत प्रशंसा की है। कहा है- वदों के अर्थ का विचार परम्परागत अर्थ के श्रवण से ही सम्भव है जान की परम्परा में किसी विशेष भाषा या उसके विशेष रूप का बन्धन नहीं है। बुद्ध और जैन आचार्यों ने पालि मागधी आदि प्राकृत भाषाओं का आश्रय लिया और उनकी परम्परा भी आज तक चली आ रही है। हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती, उड़िया, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, पंजाबी, असमी आदि आजकल की प्रचलित प्राकृत भाषाएँ हैं, जिनमें संत महात्मा, सुधारकों ने सदाचार की शिक्षाएँ देकर अपनी परम्परा को स्थिर रखा है यह सब की सब भारतीय ऋषि गुरू परम्परा के ही अंग - हैं और भारतीय संस्कृति की पोषक हैं।

संस्कृति जीवन विधि है, यह मानवजनित अतिशुद्ध पर्यावरण है। इसके संचालन व हस्तारण में संस्कारों का ही सबसे महत्वपूर्ण योगदान है। जीवन विधि में त्रुटियों को दूर करना, शरीर को पवित्र बनाते हुए व्यक्तिगत विकास करना तथा जीवन को निर्दोष बनाकर मनुष्य का सामाजिक विकास करना केवल संस्कारों से ही सम्भव है। संस्कारों से प्राप्त योग्यता द्वारा ही मनुष्य जीवन के विभिन्न सोपानों में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति करता है। अब आप संस्कारों के बारे में जानने के लिए उत्सुक हो गये होगे।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता पायेंगें कि संस्कार व्यक्ति को परिवार, समाज एवं राष्ट्र के हित-साधन में तत्पर बना देता है। संस्कारों के द्वारा मनुष्य के मन में आस्तिकता की भावनाएं जागृत एवं प्रतिष्ठित होगी और मानव , जप, हवन आदि नित्य तथा व्रत-पर्व आदि नैमित्तिक कर्मों को यथाविधि सम्पदित करता हुआ अपने जीवन को सरल, सात्त्विक एवं सुखमय बना सकता हैं।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप–

- संस्कार शब्द का अर्थ बता पायेंगें।
- संस्कारों का क्या उद्देश्य है इसकी व्याख्या कर सकेंगे।
- व्यक्तित्व के निर्माण में संस्कारों का क्या योगदान है यह बता सकेंगें।
- संस्कारों के प्रकारों से परिचित हो सकेंगे।
- परम्परा के आधार पर संस्कारों का अर्थ व उनकी उपयोगिता को समझा सकेंगे।

1.3 संस्कार का अर्थ और परिभाषा

1.3.1 संस्कार का अर्थ

'संस्करणं सम्यकरणं वा संस्कारः' अर्थात् दोषों का निवारण, कमी या त्रुटि की पूर्ति करते हुए शरीर और आत्मा में अतिशय गुणों का आधान करने वाले शास्त्र-विहित क्रिया-कलापों या कर्मकाण्ड के द्वारा उद्भूत अतिषय-विशेष ही 'संस्कार' कहा जाता हैं। इस प्रकार मैल, दोष, दुर्गुण एवं त्रुटि या कमी का निवारण कर शारीरिक एवं आत्मिक अपूर्णता की पूर्ति करते हुए गुणातिशयों या सद्गुणों का आधान या उत्पादन ही संस्कार हैं। संस्कारों से बुराईयां हटती हैं और अच्छाईयां आती हैं। संस्कारों का महत्त्व बताते हुए 'मनुस्मृति' में कहा गया हैं- अर्थात् द्विजो के गर्भाधान, जातकर्म, चौल और उपनयनादि संस्कारों के द्वारा बीज-गर्भादिजन्य सभी प्रकार के दोषों और पापों का अपमार्जन होता हैं। आत्मिक व भौतिक विकास का मार्ग प्रशस्त कर मानव को मानव बनाने वाले, उसके जीवन को अकलुष एवं तेजोदीप्त बनाकर उसे धर्मार्थ-काम-मोक्षरूप चतुर्वर्ग की प्राप्ति के लिए अग्रसारित करता है। सतत प्रेरित करने वाले यज्ञोपवीत व विवाहादि षोडश संस्कारों का भारतीय-जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान हैं। लोहा हो या सोना सभी धातुओं एवं मणि-माणिक्य आदि रत्नें को घिस-मांजकर, शाण पर चढ़ाकर, कूट-पीटकर या गल -रता कर चमका दिया जाता है, उन्हें व्यवहार के योग्य बना दिया जाता है तथा गुग्गुल आदि औषधियों को गोमूत्र आदि से संशोधित कर एवं संस्कारित कर उनकी गुणवता को शत-सहस्त्र गुना बढ़ा दिया जाता हैं, ठीक उसी प्रकार मानव-जीवन को भी सुसंस्कारित कर उसे उदात गुणों से विभूषित कर दिया जाता हैं। **'यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारों नान्यथा भवेत्।'** (माघ) के अनुसार जीवन के आरम्भिक वषों में जो संस्कार बन जाते हैं, वे अमिट होते है, इसीलिए, 16 में से यज्ञोपवीत आदि 12 संस्कार बचपन में आठ-दस वर्ष की आयु से पहले ही सम्पन्न करने का विधान हैं। संस्कारों के समय स्वस्तिवाचन, शान्तिपाठ, पुण्याहवाचन तथा गणेशादि देवताओं के पूजन, एवं सात्त्विक एवं आध्यात्मिक भावनाओं से परिपूर्ण बना दिया जाता है कि संस्कार व्यक्ति को तो ऐसा अनुभव होता ही हैं कि मानो उसके तन-मन में रोम-रोम में एक अभिनव, पवित्र, उदात्त एवं निर्मल भावनाएं संचारित हो रही हैं। साथ ही अन्य उपस्थित जनों में भी सात्विक भावों का संचार होने लगता है। यही कारण है कि हमारे संस्कारों में बहुत समय लगता है। विवाह और यज्ञोपवीत आदि संस्कारों में तो कई-कई दिन लग जाते हैं।

इस प्रकार संस्कार्य व्यक्ति को परिवार, समाज एवं राष्ट्र के हित-साधन में तत्पर बना दिया जाता हैं। संस्कारों के द्वारा मनुष्य के मन में आस्तिकता की भावनाएं जागृत एवं प्रतिष्ठित हो और मानव सन्ध्यावन्दन, जप, हवन आदि नित्य तथा व्रत-पर्व आदि नैमित्तिक कर्मों को यथाविधि सम्पादित करता हुआ अपने जीवन को सरल, सात्त्विक एवं सुखमय बना लेता हैं।

जैसे घिसने-माजने आदि से लोहा सोना तो नहीं बन जाता, तथापि उसे चांदी के जैसा चमकदार तो बनाया ही जा सकता है और उसमें ऐसे गुण उत्पन्न किए जा सकते हैं कि उसे जंग न लग पाए, या मलिनता न आ पाए। ठीक वैसे ही मानव के जन्मान्तरीय संस्कारों को पूर्णतः बदला भले ही न जा सके, किन्तु उनके दोषों या मलिनताओं का बहुत कुछ अपमार्जन एवं अभिनव गुणों या अतिशयता का आधान अवश्यि ही इन संस्कारों के द्वारा किया जा सकता हैं। हमारा तो जीवन ही संस्कारों के तानो-बानों से बना और बुना हुआ है।

'निषेकादिष्मषानान्तोस्तेषां वै मन्त्रतः क्रियाः।' कहकर मुनि ने बताया हैं कि जीवन को उतरोतर शुद्ध, स्वच्छ, पवित्र, सात्विक व तेजस्वी बनाए रखने का प्रयत्न निषेक या गर्भाधान से लेकर मृत्यु-पर्यन्त सतत चलता रहता हैं। ऊपर से देखने में तो यह बात बड़ी अटपटी-सी लगती हैं कि गर्भ में आने के साथ ही पहली बार दूसरे मास में और दूसरी बार छठे से आठवे मास में दो-दो बार जीव के संस्कार कर दिए जाए, किन्तु हैं यह सर्वथा वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रतीत होता है। कारण यह हैं कि माता के गर्भ में रहते हुए जीव को अपना अहार-विहार माता के द्वारा ही ग्रहण करना पड़ता है, गर्भावास्थ में माता जो कुछ भी और जैसा कुछ खाती-पीती, सोचती-विचारती, पढ़ती-सुनती या देखती-भालती है, गर्भस्थ जीव पर भी ठीक वैसे ही संस्कार पड़ते रहते हैं। ऋग्वेद में कहा गया हैं कि माता-पिता सदा सजग रहना चाहिए कि **कहीं यन्मे मता प्रममद्यात् यच्चचारावनुव्रतम् । तन्मेरेतः पिता वृड्.वक्तान्मा भुरण्योपपद्यताम् ।।** स्पष्ट है कि गर्भधारण करने के पश्चात् माता के खान-पान, आहार- विचारों का विशेष ध्यान रखना आवश्यतक हो जाता है, उसकी इच्छा और रुचि का पूरा-पूरा ध्यान रखना होता है। उन दिनों उसे किसी प्रकार का शारीरिक और मानसिक कष्ट न पहुंचे, वह स्वस्थ रहे, उसका चित्त प्रफुल्लित और सात्विक विचारों से परिपूर्ण रहें। इसका दायित्व केवल पति पर ही नहीं घर की अन्य सदस्याओं तथा सारे परिवार पर समान रूप से रहता हैं। इन्हीं महत्वपूर्ण तथ्यों एवं तत्वों को ध्यान में रखकर ही हमारे ऋषियों ने गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोन्नयन इन तीन प्राग्जन्म-संस्कारों का विधान किया हैं। इसी प्रकार जातकर्म, नामकरण, मुण्डन व यज्ञोपवीत आदि अन्य संस्कारो का भी अपना महत्त्व हैं।

संस्कार शब्द के तीन घटक है- सम् उपसर्ग, डुकृञ् करणे धातु और घञ् प्रत्यय। सम् +कृ+ धञ्। किन्तु इससे बना हुआ शब्द संकार होगा संस्कार नहीं। इसमें एक अतिरिक्त आधा स भी आता है। व्याकरण में इसे सुट् का आगम (आना) कहते हैं। इसी सुट् में स् बचता है, यही वहाँ पर जुड़कर संस्कार शब्द बनाता है। व्याकरण के नियम में सुट् उसी शब्द में आता है जब वह शब्द भूषण अर्थ वाला हो। दोष धुलकर साफ कर देना ही भूषित करना होता है। इसे सजावट भी कह सकते हैं। अत: इसका उत्पत्तिपरक अर्थ होता है परिष्कार करना, मनोभाव या स्वभाव का शोधन करना। इसे इस तरह भी समझा जा सकता है किसी भी स्वर्णकार या रत्नकार को कोई भी सामग्री प्रकृति से प्राप्त होती है, वह उसे तराशकर उपयोग के लायक बना देता है। ठीक इसी तरह मनुष्य का जन्म प्राकृतिक रूप से समाज में हो जाता है, किन्तु संस्कारों के द्वारा उसमें सद्गुणों की स्थापना करके उसे सामाजिक बनाया जाता है। अत: संस्कारों के बिना मनुष्य का व्यक्तित्व निर्मित नहीं हो सकता। इसलिए संस्कारों को भूषण कहा गया है।

1.3.2 संस्कार की परिभाषा

इस शब्द का निर्माण 'सम्' उपसर्ग में 'कृ' धातु के 'धत्र' प्रत्यय लगाने से होता है जिसका अर्थ होता है परिष्कार, शुद्धता अथवा पवित्रता । इस प्रकार हिन्दू व्यवस्था में इन संस्कारों का विधान व्यक्ति के शरीर को पवित्र बनाने के उद्देश्य से किया गया ताकि वह व्यक्तिगत व सामाजिक विकास के लिए उपयुक्त बन सके। यह वह क्रिया है जिसके सम्पन्न होने पर कोई वस्तु किसी उद्देश्य के योग्य बनती है । इसकी प्रमुख विशेषताओं में शुद्धता, पवित्रता, धार्मिकता एवं आस्तिकता की स्थितियां शामिल हैं। समाज में ऐसी धारणा है कि मनुष्य जन्म से असंस्कृत होता है किन्तु वह इन संस्कारों के माध्यम से सुसंस्कृत हो जाता है अर्थात् इनसे उसमें अन्तर्निहित शक्तियों का पूर्ण विकास हो जाता है तथा वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर लेता है। ये व्यक्ति के जीवन में आने वाली बाधाओं का भी निवारण करते तथा उसकी प्रगति के मार्ग को निष्कंटक बनाते हैं। इसके माध्यम से मानव अपना आध्यात्मिक विकास भी करता है।

प्राचीन आचार्य व विद्वानों द्वारा संस्कार की परिभाषाएं किस प्रकार की गई है, चरक संहिता के रचयिता आचार्य चरक ने संस्कार को परिभाषित करते हुए कहा है— **'संस्कारो हि गुणान्तराधान मुच्यते'** (चरक संहिता 1/ 27) गुणान्तराधान अर्थात् पहले से विद्यमान दुर्गुणों को हटाकर उनकी जगह सगुणों को स्थापित करना ही संस्कार है। इसी प्रकार तन्त्रवार्तिक नामक ग्रन्थ में संस्कार की परिभाषा इस प्रकार लिखी है- **योग्यतायाञ्च दधाना: किया: संस्कारा: इत्युच्यन्ते ।** इसका अर्थ है कि योग्यता का विकास या उत्पादन करने को ही संस्कार कहते है। शंकराचार्य ने भी दोषों को दूर करके गुणों को स्थापित करने की प्रक्रिया को संस्कार कहा है। संस्कार चन्द्रिका की वैज्ञानिक व्याख्या में यह कहा गया है कि जन्म के बाद शिशु को संस्कारों की भट्टी में डालना ही उन्हें संस्कारित करना कहलाता है। संस्कार चन्द्रिका पृष्ठ 22) इस विषय में दो प्रकार की विचारधाराएं भी है—प्रथम – वे जो वंशामुक्रम का मानते हैं। द्वितीय– ये जो पर्यावरण का मानते है। संस्कारों को वंशानुगत मानने वाले डाल्टन, विजमैन जैसे वैज्ञानिकों ने कहा कि व्यक्ति जो कुछ भी है वह उसके वंशानुक्रम का ही परिणाम है, उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन करना संभव नहीं हो सकता। इसी बात को चाणक्य नीति का यह श्लोक प्रमाणित करता है— '**आमूलसिक्तं पयसा धृतेन निम्बवृक्षो मधुरत्वमेति'** (चाणक्यनीति अध्याय 11 श्लोक 6) अर्थात् नीम के पेड़ को जड़ से लेकर पल्लव तक यदि धी और दूध से रोज सीचा जाय तो उसमें मधुरता नहीं आयेगी। ये सभी मत वंशानुक्रम को मानते हैं। पर्यावरण को मानने वाले विचारकों में डॉ0 नेफाख तथा भर्तृहरि आदि इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि वंशानुगत गुणों को पर्यावरण के द्वारा बदला जा सकता है, जैसे- गर्म लोहे पर पानी पढ़ते ही उसका नामोनिशान मिट जाता है। वहीं पानी कमल के पुष्प पर पड़ता है तो मोती जैसा लगता है, और वही पानी स्वाती नक्षत्र में यदि सीप के अंदर गिरे तो वह मोती बन जाता है। अतः प्रायः अधम, मध्यम और उन गुण संसर्ग से ही आते हैं। वहीं संस्कारों के प्रमुख उद्देश्यों को भी जान लेना गम्भीरता की भी जान लेना आवश्यक है। (नीतिशतकम् श्लोक 67) उपर्युक्त दोनों मतों के समन्वय से इस बात का निर्णय किया गया है कि मनुष्य के व्यक्तित्व निर्माण में वंशानुक्रम पूरी तरह लागू नहीं हो सकता। इसके लिए सरकारों की ही आवश्यकता है।

मनु के अनुसार, यह शरीर को विशुद्ध करके उसे आत्मा का उपयुक्त स्थल बनाता है । इस प्रकार के व्यक्तित्व की सर्वांगीण उन्नति हेतु भारतीय संस्कृति में इनका विधान प्रस्तुत किया गया है । इस शब्द का उल्लेख वैदिक तथा ब्राह्मण साहित्य मे नहीं मिलता। मीमांसक इसका

प्रयोग यज्ञीय सामग्रियों को शुद्ध करने के अर्थ में करते हैं। वास्तविक रूप से इसका विधान सूत्र-साहित्य तथा गृहयसूत्र में वर्णित हैं। ये जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त तक सम्पन्न किये जाते थे।

गौतम धर्मसूत्र में संस्कारों की संख्या 40 है प्राचीनतम धर्माचायों में महर्षि गौतम का नाम बड़े ही आदर से लिया जाता है। ऋषि स्वयं मानते हैं कि धर्म और सदाचार सीमामा के परिपालन में गौतम विशेष रूप से प्रतिशित है। उनके द्वारा निरूपित आठ आत्मगुणों को मिला देने से संस्कारों की संख्या को 48 तक हो जाती है। इन आठ आत्म गुणों का नाम निम्नलिखित है—

आठ आत्मगुण संस्कार—

1. प्राणिमात्र पर दया
2. क्षमा
3. अनसूया (निर्मत्सर होना)
4. शौच (अन्दर बाहर की पवित्रता)
5. अनायास (तुच्छ कामना के लिए देह को कष्ट न देना)
6. मंगल (सदा उत्साही एवं आनन्दी मनोवृत्ति वाला)
7. अकार्पण्य (दीनता प्रदर्शन कदापि न करना)
8. अस्पृहता (दूसरे की वस्तु की आशा, अभिलाषा करना)

सम्भव है कि प्राचीन भारत में इतने सरकार प्रचलित रहे हो किन्तु 16 संस्कार ही कालान्तर में लोकप्रिय पाये, इनके नाम इस पाक है— (1) गर्भाधान (2) पुंसवन (3) सीमन्तोन्नयन (4) जातकर्म (5) नामकरण (6) निष्क्रमण (7) अन्नप्राशन (8) चूडाकर्ण, (9) कर्णवेध (10) विद्यारम्भ (11) उपनयन 112) वेदारम्भ, (13) केशान्त (14) समावर्तन (15) विवाह (16) अत्यष्टि। अधिकांश गृह्यसूत्रों में अंत्येष्टि का उल्लेख नहीं मिलता है। स्मृति ग्रन्थों में इनका विवरण प्राप्त होता है। इनकी संख्या 40 है। गौतम धर्मसूत्र में इनकी संख्या 48 बतायी गयी है। मनु ने गर्भाधान से मृत्यु पर्यन्त तक तेरह संस्कारों का जिक्र किया है जबकि बाद की स्मृतियों में सोलह स्वीकार की गई हैं।

1.4 संस्कारों के सन्दर्भ में समाजशास्त्रीय मान्यता

हिन्दू समाजशास्त्रियों ने इनका विधान विभिन्न उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया। यहाँ ये उद्देश्य मुख्यतः दो भागों में विभाजित किये गये हैं—

(1) लोकप्रिय उद्देश्य

(2) सांस्कृतिक उद्देश्य

लोकप्रिय उद्देश्य- अशुभ शक्तियों के निवारण हेतु- प्राचीन हिन्दुओं का विश्वा(स जीवन में अशुभ एवं आसुरी शक्तियों का प्रभाव होता है जो अच्छे एवं बुरे दोनों प्रकार के फल देती हैं। अतः उन्होंने इनके माध्यम से उनके अच्छे प्रभावों को आकर्षित करने तथा बुरे प्रभावों को हटाने का प्रयास किया जिससे मानव का स्वस्थ एवं निर्विघ्न विकास हो सके। इस उद्देश्यि से प्रेतात्माओं तथा आसुरी शक्तियों को अन्न, आहुति आदि के द्वारा शान्त किया जाता था। गर्भाधान, जन्म, बचपन आदि के समय इस प्रकार की आहुतियाँ दी जाती थी। कभी-कभी देवताओं की मन्त्रों द्वारा आराधना की जाती थी ताकि आसुरी शक्तियों का प्रभाव क्षीण हो जाये। हिन्दुओं की यह धारणा थी कि जीवन का प्रत्येक काल किसी न किसी देवता द्वारा नियन्त्रित

होता है। इसी कारण प्रत्येक अवसर पर मन्त्रों द्वारा इन देवताओं का आह्वान किया जाता था। भौतिक समृद्धि की उपलब्धि हेतु- इनका विधान भौतिक समृद्धि तथा पशुधन, पुत्र, दीर्घायु, शक्ति, बुद्धि व सम्पत्ति आदि की प्राप्ति के उद्देश्यि से भी किया गया था। इस समय समाज में ऐसी धारणा थी कि प्रार्थनाओं के द्वारा व्यक्ति अपनी इच्छाओं को देवताओं तक पहुँचाता है तथा तब ये देवगण उसे भौतिक समृद्धि की वस्तुएं प्रदान करते हैं। आज भी इस प्रकार के संस्कारों की यह स्थिति हिन्दू परिवारों में स्पष्ट रूप से देखी जाती हैं।

भावनाओं को व्यक्त करने की कार्यप्रणाली- इनके माध्यम से मनुष्य अपने हर्ष एवं दुःख को व्यक्त करता था। जिनमें पुत्र जन्म, विवाह आदि के अवसर पर आनन्द व उल्लास को व्यक्त किया जाता था। शिशु को जीवन से मिलने वाली प्रत्येक उपलब्धि पर उसके परिवार के लोग खुशियाँ मनाते थे तथा मृत्यु के अवसर पर शोक की स्थिति व्यक्त की जाती थी।

सांस्कृतिक उद्देश्य— हिन्दू धर्म के विचारकों ने संस्कारों के पीछे उच्च आदर्शों का उद्देश्यन भी अपने समक्ष रखा था। मनुस्मृति में यह उल्लेखित है कि संस्कार मानव की अशुद्धियों का नाश कर उसके शरीर को पवित्र बनाने में मदद करता है। समाज में ऐसी मान्यता है कि गर्भस्थ शिशु के शरीर में कुछ अशुद्धियां होती हैं जो जन्म के पश्चासत् संस्कारों के माध्यम से ही दूर की जा सकती हैं। मनुस्मृति में यह कहा गया है कि अध्ययन, व्रत, होम-जाप, पुत्रोत्पति से शरीर ब्रह्मीय हो जाता हैं। यह भी धारणा है कि प्रत्येक मानव जन्म से शूद्र होता है, संस्कारों से द्विज, विधा से विप्रत्व तथा तीनों के संयोग के द्वारा श्रोत्रिय कहा जाता है। ये व्यक्ति को सामाजिक अधिकार एवं सुविधाएँ प्रदान करते थे। ध्यातव्य है कि उपनयन के माध्यम से मानव विद्याध्ययन का अधिकारी बनता था तथा विद्या प्राप्त करने के पश्चा ैत् वह द्विज कहा जाता था। समावर्तन संस्कार मानव को गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का अधिकार प्रदान करता था, जबकि वह विवाह संस्कार से मानव समस्त सामाजिक कर्त्तव्यों को सम्पन्न करने का अधिकारी बन जाता था। इसी प्रकार मानव, समाज का एक अंग हो जाता था।

1.5 संस्कारों का नैतिक उद्देश्य

संस्कारों के द्वारा मानव के जीवन में नैतिक गुणों का समावेश होता था। ध्यातव्य है कि गौतम ने मानव जीवन के कल्याण के लिए 40 संस्कारों के साथ-साथ 8 गुणों का भी उल्लेख किया है तथा उन्होंने इसके बारे में कहा है कि इन संस्कारों के साथ-साथ गुणों का आचरण करने वाला व्यक्ति ही ब्रह्म को प्राप्त करता हैं। ये हैं- दया, सहिष्णुता, ईर्ष्या न करना, शुद्धता, शान्ति, सदाचरण तथा लोभ एवं लिप्सा का त्याग। इस कालावधि में प्रत्येक संस्कार के साथ-साथ कोई ना कोई नैतिक आचरण अवश्यक सम्मिलित रहता था।

1.6 व्यक्तित्व के निर्माण में संस्कारों का योगदान

संस्कारों के माध्यम से ही प्राचीन काल में मानव के व्यक्तित्व का निर्माण होता था। जीवन के प्रत्येक चरण में ये मार्गदर्शन का काम करते थे। इस समय इनकी व्यवस्था इस प्रकार की गई थी कि वे मानव जीवन के प्रारंभ से ही मानव के चरित्र एवं आचरण पर अनुकूल प्रभाव डाल सकें। उपनयन संस्कार का उद्देश्य मानव को शिक्षित एवं सभ्य बनाना था जबकि विवाह संस्कार के माध्यम से वह पूर्ण गृहस्थ बन जाता था तथा देश व समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्वों का निष्ठापूर्वक पालन करता था। हिन्दू विचारकों ने इन संस्कारों को व्यक्ति के लिए अनिवार्य बना कर उसके सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त किया था। आध्यात्मिक विचारों की सम्पुष्टि ये

संस्कार मानव की भौतिक प्रगति के साथ-साथ आध्यात्मिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त करते थे। ध्यातव्य है कि प्राचीन काल में सभी संस्कारों के साथ धार्मिक क्रियाएं संलग्न रहती थी। इन्हीं धार्मिक क्रियाओं को सम्पन्न करके मानव भौतिक सुख के साथ आध्यात्मिक सुख भी प्राप्त करने की कामना रखता था उसे यह अनुभूति होती थी कि जीवन की समस्त क्रियाएं आध्यात्मिक सत्यता की प्राप्ति हेतु हैं। यदि ऐसा न होता तो इन संस्कारों के अभाव में हिन्दू पूर्णरूपेण भौतिक हो गया होता। प्राचीन कालीन हिन्दूओं का विश्वास था कि संस्कारों के विधिवत् पालन से ही वे भौतिक बाधाओं से छुटकारा पा सकते हैं। इस प्रकार ये संस्कार मानव के भौतिक व आध्यात्मिक जीवन के मध्य मध्यस्थता का कार्य करते थे जो कि हिन्दू जीवन पद्धति के अभिन्न अंग थे।

1.7 संस्कारों का सामान्य परिचय

उपरोक्त स्थितियों के आधार पर यह स्पष्ट है कि 16 संस्कार ही कालान्तर में लोकप्रियता अर्जित कर पाये, जो निम्न हैं-

(1) गर्भाधान, (2) पुंसवन, (3) सीमन्तोन्नयन, (4) जातकर्म, (5) नामकरण (6) निष्क्रमण, (7) अन्नप्राशन, (8) चूड़ाकर्म, (9) कर्णवेध, (10) विद्यारम्भ, (11) उपनयन (12) वेदारम्भ, (13) केशान्त, (14) समावर्त्तन, (15) विवाह तथा (16) अंत्येष्टि।

(1) गर्भाधान—

यह जीवन का प्रथम संस्कार हैं जिसके माध्यम से मानव अपनी पत्नी के गर्भ में बीज स्थापित करता था। इस संस्कार का प्रचलन उत्तरवैदिक युग में हुआ। सूत्रों तथा स्मृति ग्रन्थों में इसके लिए उपरोक्त समय एवं वातावरण का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इसके लिए आवश्यक था कि स्त्री ऋतुकाल में हो तथा ऋतुकाल के पश्चात् चौथी से सोलहवीं रात्रियां इसके लिए उपयुक्त बतायी गयी हैं-'षोडषर्त्तुर्निषाः स्त्रीणां तासु युस्मासु संविशेत्' अधिकांश गृहसूत्रों तथा स्मृतियों में चौथी रात्रि को शुद्ध माना गया है जबकि आठवी, पन्द्रहवीं एवं तीसवीं रात्रियों इसकी क्रिया वर्जित मानी गयी थी। सोलह रात्रियों में प्रथम चार, ग्यारह एवं तेरह को निन्दित माना गया है जबकि शेष दस श्रेयस्कर की श्रेणी में रखी गयी हैं। इसके लिए रात्रि का समय ही उपयुक्त माना गया था, जबकि दिन में यह कार्य वर्जित था। प्रश्नोंपनिषद् में यह उल्लिखित हैं कि दिन में गर्भ धारण करने वाली स्त्री से अभागी, क्षीणकाय एवं अल्पायु सन्तानें जन्म लेती हैं - **'नार्तवे दिवा मैथुनमर्जयेदल्पभाग्याः अल्पवीर्याष्चदिवाप्रसूयन्तेद्रत्या पुत्रष्चेति'** परन्तु उस काल में भी उन लोगों के लिए इस नियम में कुछ छूट दी गयी थी जो घर से सुदूर रहते थे। इस कालावधि में गर्भाधान के लिए रात्रि का अन्तिम प्रहर अभीष्ट माना गया था। इसके अन्तर्गत यह भी मान्यता थी कि सम रात्रियों गर्भाधान के पश्चागत् पुत्र व विषम रात्रियों में पुत्री उत्पन्न होती हैं- **'युग्मासु पुत्राजायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रियु'** इस समय नियोग प्रथा भी प्रचलित थी जिसके अन्तर्गत एक स्त्री अपने पति की मृत्यु अथवा नपुंसक की स्थिति में उसके भाई अथवा सगोत्र व्यक्ति से सन्तान उत्पत्ति हेतु यह क्रिया करवाती थी किन्तु अधिकांश ग्रंथों में इसे निन्दनीय माना गया है। मनु ने इसे पशुधर्म की संज्ञा दी है- **'अर्थद्विजेहि विद्वद्भिः पशुधर्मः विगर्हितः '** प्राचीनकाल में यह क्रिया प्रत्येक विवाहित पुरुष व स्त्री के लिए पवित्र एवं अनिवार्य संस्कार के रूप में मानी जाती थी जिसका उद्देश्य स्वस्थ, सुन्दर एवं सुशील सन्तान प्राप्त करना था। पाराशर ने यह

व्यवस्था दी कि जो पुरुष स्वस्थ होने पर भी ऋतुकाल में अपनी पत्नी से समागम नहीं करता है वह निःसन्देह भ्रूर्ण हत्या का भागी होता है- **ऋतुस्नाता तु यो भार्या सन्निधौ नोपगच्छति।** इस काल में स्त्री के लिए भी यह अनिवार्य था कि वह ऋतुकाल के स्नान के बाद अपने पति के निकट जाये। पाराशर के मतानुसार ऐसा न करने वाली स्त्री का दूसरा जन्म शूकरी के रूप में होता हैं।

वैदिक युग के लिए स्वस्थ एवं बलिष्ठ सन्तानें पैदा करना प्रत्येक आर्य का कर्त्तव्य था क्योंकि इस काल में निःसंतान व्यक्ति समाज में आदर का पात्र नहीं था। ऐसी धारणा थी कि जिस पिता के जितने अधिक पुत्र होंगे तो वह स्वर्ग में उतना ही अधिक सुख प्राप्त करेगा। ध्यातव्य है कि पितृऋण से मुक्ति भी सन्तान पैदा करने पर ही सम्भव हो पाती थी।

(2) पुंसवन संस्कार—

गर्भाधान के तीसरे माह में पुत्र प्राप्ति हेतु संस्कार कार्यान्वित किया जाता था। 'पुंसवन' का अभिप्राय हैं कि वह अनुष्ठान जिससे पुत्र की उत्पति हो- **'पुमान् प्रसूयते येन कर्मणा तत्पुंसवनमीरितम।'** इस संस्कार के माध्यम से उन देवी-देवताओं को पूजा कर खुश किया जाता था जो गर्भ में शिशु की रक्षा करते थे। ध्यातव्य है कि चन्द्रमा के पुष्य नक्षत्र में होने पर ही यह संस्कार सम्पन्न होता था क्योंकि यह समय पुत्र प्राप्ति के लिए महत्वपूर्ण माना गया। रात्रि के समय वटवृक्ष की छाल का रस निचोड़कर स्त्री की नाक में दायें छिद्र में डाला जाता था कारण कि इससे गर्भपात की आशंका समाप्त हो जाती थी तथा सभी विघ्न-बाधाओं का नाश हो जाता था। इस काल के हिन्दू समाज में पुत्र का बड़ा ही उच्च स्थान था।

(3) सीमन्तोन्नयन संस्कार—

गर्भाधान के चौथे से आठवें माह तक इस संस्कार को सम्पन्न किया जाता था। इसके बारे में ऐसी मान्यता थी कि गर्भवती स्त्री के शरीर को प्रेत्मातायें अनेक प्रकार से बाधा पहुँचाती हैं जिसके निवारण हेतु कुछ धार्मिक कार्य किये जाने चाहिए। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु इस संस्कार का विधान किया गया। इस संस्कार के माध्यम से गर्भवती स्त्री की समृद्धि तथा उसके भ्रूण की दीर्घायु की कामना कर जाती थी। इस संस्कार के सम्पादित होने के दिन स्त्री व्रत रखती थी, पुरुष मातृपूजा करता था तथ उसके द्वारा प्रजापति देवता की आहुति दी जाती थी। इस समय वह अपने साथ कच्चे उदुम्बर फलों का एक गुच्छा तथा सफेद चिन्ह वाले शाही के तीन कांटे रखता था। स्त्री अपने केशों में सुगंधित तेल डालकर यज्ञ मण्डप में प्रवेश करती थी जहां वेद मन्त्रों के उच्चारण के मध्य उसका पति उसके बालों को ऊपर उठाता था तत्पश्चातत् गर्भधारित स्त्री के शरीर पर एक लाल चिन्ह बनाया जाता था जिससे भूत-प्रेत आदि भयाक्रांत हो उससे दूर रहे। इस संस्कार के द्वारा स्त्री को सुख और सात्वना प्रदान की जाती थी।

(4) जातकर्म संस्कार—

शिशु के जन्म के समय यह संस्कार सम्पन्न किया जाता था। इसे सामान्यतया बच्चे के नार काटने के पूर्व किया जाता था। उसके पिता विधि कर्मों के अनुरूप स्नान करके उसके पास जाता तथा पुत्र को स्पर्श करता व सूंघता था। इस अवसर पर वह उसके कानों आशीर्वादात्मक मन्त्रों का उच्चारण करता था जिसके माध्यम से बच्चे के लिए दीर्घ आयु व बुद्धि की कामना की जाती थी। इस कर्म के तत्पश्चाधत् बच्चे को मधु व घृत चटाया जाता था इसके पश्चा त् ही वह प्रथम बार स्तनपान करता था। इस संस्कार की समाप्ति के पश्चातत् ब्राह्मणों को उपहार तथा भिक्षुओं को भिक्षा वितरित की जाती थी।

(5) नामकरण संस्कार—

बच्चे के जन्म के दसवें अथवा बारहवें दिन पश्चाथत् यह संस्कार कार्यान्वित होता था जिसमें उसका नाम रखा जाता था। प्राचीन हिन्दू समाज में इस संस्कार का अन्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान था। वृहस्पति के अनुसार 'नाम ही मानव के लोक व्यवहार का प्रथम साधन है जो गुण एवं भाग्य का आधार है तथा इसी से मानव यश प्राप्त करता है।' प्राचीन शास्त्रों में इस संस्कार का विस्तृत विवरण देखने को मिलता है। इस संस्कार के लिए निश्चित शुभ तिथि, नक्षत्र एवं मूहूर्त का चयन किया जाता था। इस समय यह ध्यान रखा जाता था कि बच्चे का नाम परिवार, समुदाय एवं वर्ण का बोधक हो। नक्षत्र, माह तथा कुल देवता के नाम पर अथवा व्यावहारिक नाम भी बच्चे को प्रदान किये जाते थे जिनमें कन्या का नाम मनोहर, मंगल सूचक, स्पष्ट अर्थ वाला तथा अन्त में दीर्घ अक्षर को रखे जाने का विधान था। मनु के अनुसार 'बच्चे का नाम उसके वर्ण का बोधक होना चाहिए।' उनके अनुसार ब्राह्मण का नाम मंगलसूचक, क्षत्रिय का बलसूचक, वैश्य का धनसूचक तथा शूद्र का निन्दासूचक होना चाहिए। विष्णु पुराण में यह उल्लिखित है कि ब्राह्मण अपने नाम के अन्त में शर्मा, क्षत्रिय वर्मा, वैश्य गुप्त तथा शुद्र दास लिखें।

इस संस्कार के पूर्व घर को धोकर पवित्र किया जाता था तथा साथ ही साथ माता व शिशु को स्नान कराया जाता था। उसके बाद माता बच्चे का सिर जल से भिगोकर तथा साफ कपड़े से उसे ढ़ककर उसके पिता को देती थी पुनः प्रजापति,नक्षत्र देवताओं, अग्नि, सोम आदि की बलि दी जाती थी। पिता बच्चे की श्वास का स्पर्श करता था तथा पुनः उसका नामकरण किया जाता था। इस संस्कार के अन्त में ब्राह्मण आदि को भोज दिया जाता था।

(6) निष्क्रमण संस्कार—

यह संस्कार बच्चे के जन्म के तीसरे सप्ताह सम्पन्न किया जाता था जिसमें उसे सर्वप्रथम घर से निकाला जाता था। इस संस्कार को माता व पिता सम्पन्न करते थे। उस दिन घर के आंगन में एक चौकोर भाग को गोबर व मिट्टी के साथ लीपा जाता था तथा उस पर स्वास्तिक चिन्ह बनाकर उस जगह धान को छींटा जाता था। बच्चे को स्नान कराने के बाद उसे नये परिधानों में सजाकर यज्ञ के सामने करके वेदमन्त्रों का पाठ किया जाता था। पुनः माँ बच्चे को लेकर बाहर निकलती थी तथा उसे सर्वप्रथम सूर्य का दर्शन कराया जाता था। इसी के बाद उसका सदा के लिए घर के बाहरी वातावरण से सम्पर्क हो जाता था।

(7) अन्नप्राशन संस्कार—

यह संस्कार बच्चे के जन्म के छठे माह में सम्पन्न कराया जाता था जिसमें उसे सर्वप्रथम पका हुआ अन्न खिलाया जाता था। इसके अन्तर्गत दूध, दही, घी व पके हुए चावल खिलाने का विधान था। गृहसूत्रों में इस संस्कार के समय विभिन्न पक्षियों का माँ व मछली खिलाने का भी उल्लेख मिलता है। उसकी (बच्चे की) वाणी में प्रवाह लाने हेतु भारद्वाज पक्षी का मांस तथा उसमें कोमलता लाने हेतु मछली खिलायी जाती थी। इसका उद्देश्यी बच्चे को शारीरिक तथा बौद्धिक दृष्टि से स्वस्थ बनाना था। कालान्तर में दूध व चावल खिलाने का विधान प्रचलित हो गया।

(8) चूड़ाकर्म संस्कार—

अन्नप्राशन के पश्चाकत् का यह महत्वपूर्ण संस्कार जिसके अन्तर्गत सर्वप्रथम बालक के सिर के बाल काटे जाते थे। गृहसूत्रों के अनुसार जन्म के प्रथम वर्ष की समाप्ति के पूर्व इस

संस्कार के सम्पन्न किए जाने वाले तथ्य उल्लिखित हैं। आश्व लायन का मत हैं कि यह संस्कार तीसरे या पांचवें वर्ष में होना प्रशंसनीय हैं किन्तु इसे सातवे वर्ष अथवा उपनयन के समय भी किया जा सकता हैं—

तृतीय पंचमे वाऽब्दे चौलकर्म प्रशस्यते।
प्रागवासमें सप्रमे वा सहोपनयेन वा।।

कुछ विद्वानों के अनुसार इसे कुल व धर्म के रीति-रिवाज के अनुसार किये जाने की बात भी कही गयी है। ध्यातव्य है कि पहले यह संस्कार घर में ही होता था परन्तु बाद में इसे किसी मन्दिर के देवता के समक्ष किया जाने लगा। इसके हेतु एक शुभ दिन व मुहूर्त निश्चित किया जाता था। प्रारंभ में संकल्प, गणेशपूजा, मंगल श्राद्ध आदि को सम्पन्न किया जाता था तथा ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता था। तत्पश्चा।त् मां बच्चे को स्नान कराकर नये वस्त्रों से सुसज्जित कर यज्ञीय अग्नि के पश्चिम की ओर बैठती थी। इसके बाद पूजा-अर्चना के मध्य बच्चे के बाल काटे जाते थे। इन कटे हुए बालों को गाय के गोबर में छिपा दिया जाता था। पुनः बालक के सिर पर मक्खन अथवा दही का लेप किया जाता था। ध्यातव्य हैं कि बालों को गोबर में छिपाने के पीछे यह मान्यता थी कि वे शरीर के अंग हैं, अतः उन पर शत्रुओं व जादू-टोनों रका प्रभाव न दिखे। यही कारण था कि उन्हें छिपाकर सबकी पहुँच से बाहर रखा जाता था। इस संस्कार के पीछे यह धारणा थी कि बच्चे को स्वच्छता व सफाई का ज्ञान कराया जा सके जो उसके स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।

(9) कर्णवेध संस्कार—

इस संस्कार के अन्तर्गत बालक का कान छेदकर उसमें बाली अथवा कुण्डल पहना दिया जाता था। सुश्रुत ने इसका उद्देश्य रक्षा तथा अलंकरण बताया है - **रक्षाभूषणनिमित्त बालस्य कर्णौं विध्येत्।** इस संस्कार के समय के बारे में विभिन्न मत हैं। विभिन्न विद्वानों के मतानुसार इसमें जन्म के दिन से लेकर पांचवे वर्ष तक की अवधि व्यक्त की गई है। कर्णवेधन हेतु स्वर्ण, रजत तथा अयस् (लोहा) की सुईयों का प्रयोग सामर्थ्य के अनुरूप किया जाता था। ध्यातव्य है कि विभिन्न प्रकार की सुईयों का प्रयोग विभिन्न वर्ण के बालकों के लिए होता था। इसी कारण क्षत्रिय बालक का कर्णवेध स्वर्ण की सुई से, ब्राह्मण तथा वैश्य का रजत की सुई से तथा शूद्र का लोहे की सूई से किये जाने का नियम था- **सौवर्णौं राजपूत्रस्य राजतो विप्रवैश्यायोः। शूद्रस्य चायसी सूची मध्यमाष्टांगुलात्मिका ।।** यह कार्य धार्मिक रीति से सम्पन्न होता था। इस दरम्यान बच्चे को पूर्व दिशा की ओर मुँह करके बैठाया जाता था तथा उसे मिठाई खाने के लिए दी जाती थी। उसके बाद वैदिक मन्त्रों के मध्य पहले दायें व फिर बायें कान को छेदा जाता था। ध्यातव्य है कि यह एक अनिवार्य संस्कार था जिसे न करना पाप समझा जाता था। देवल के मतानुसार जिस ब्राह्मण का कर्णवेध न हुआ हो उसे दक्षिणा नहीं देने की बात कही गई है। इसके विपरीत जो बिना कर्णवेध वाले ब्राह्मण को दक्षिणा देता हैं तो वह राक्षस या असुर श्रेणी में आता है। इस संस्कार का उद्देश्य् बच्चे को भविष्य में स्वस्थ रखने हेतु किया गया। सुश्रुत के मतानुसार इस संस्कार के होने के बाद बच्चे को अण्डाकोष वृद्धि व आन्त्रवृद्धि आदि रोगों से छुटकरा मिल जाता है।

(10) विद्यारम्भ संस्कार—

यह संस्कार तब सम्पन्न कराया जाता थ जब बच्चे का मस्तिष्क शिक्षा ग्रहण करने हेतु उपयुक्त समझा जाता था। इसके अन्तर्गत उसे अक्षरों का बोध कराया जाता था। इसी कारण

कुछ विद्वान इसे अक्षरारम्भ संस्कार भी कहते हैं। इसका समय जन्म के पांचवें वर्ष अथवा उपनयन संस्कार के पूर्व बताया गया है।यह संस्कार एक शुभ दिन व शुभ मूहूर्त में संपन्न किया जाता था। इस दिन बच्चे का स्नान कराकर उसे सुगन्धित द्रव्यों व परिधानों से सुसज्जित कराया जाता था। सर्वप्रथम गणेश, सरस्वती, लक्ष्मी व कुल देवों की पूजा की जाती थी। उसके बाद शिक्षक पूर्व दिशा की ओर बैठकर पट्टी पर उस बच्चे से ''ओम्, स्वस्ति, नमः सिद्धाय'' आदि शब्द लिखवाकर इस कार्य को आरम्भ करता था। इस समय बालक गुरु की पूजा करता था तथा वह अपने लिखे हुए शब्दों को तीन बार पढ़ता था। तत्पश्चा त् वह बालक अपने गुरु को वस्त्र व आभूषण प्रदान करता था तथा उपयुक्त देवताओं की तीन बार परिक्रमा करता था। इस संस्कार में उपस्थित ब्राह्मण उस बच्चे को आशीर्वाद देते थे। इस संस्कार की समाप्ति के उपरान्त गुरु को पगड़ी भेट की जाती थी। इस संस्कार का सम्बन्ध निःसन्देह बालक की बुद्धि एवं ज्ञान से था।

(11) उपनयन संस्कार—

उपनयन का शाब्दिक अर्थ हैं समीप ले जाना। इससे अभिप्राय बालक को शिक्षा के लिए गुरु के पास ले जाने से हैं। इस संस्कार की प्राचीनता प्रागैतिहासिक काल तक स्पष्ट दिखती है जो वैदिक युग में प्रचलित संस्कार की श्रेणी में आ गया। ऋग्वेद में दो स्थलों पर ब्रह्मचर्य शब्द का उल्लेख धार्मिक विद्यार्थी के जीवन के अर्थ में किया गया है। अथर्ववेद में सूर्य का वर्णन ब्राह्मण विद्यार्थी के रूप में अपने आचार्य के पास समिध तथा भिक्षा के साथ जाते हुए किया गया है। शतपथ ब्राह्मण में उद्दालक नामक विद्यार्थी का उल्लेख है जो अपने गुरु के पास शिक्षा हेतु गया तथा उनसे अपने को ब्रह्मचारी के रूप में स्वीकार किये जाने की प्रार्थना की। सूत्र तथा स्मृति साहित्य में भी इस संस्कार की विस्तार रूप से चर्चा की गई हैं। प्राचीन हिन्दू ग्रन्थों में इसके लिए विद्यार्थी की आयु गणना की गई है। इस समय ब्राह्मण परिवार में बालक प्रायः अपने परिवार में ही शिक्षा प्रारंभ करते थे जबकि अन्य वर्ण के बालकों को इस हेतु गृहत्याग करना पड़ता था। अतः जब वे अपने-माता पिता से अलग रहने योग्य हो जाते थे तभी उनके लिए यह संस्कार संपन्न कराया जाता था। इस संस्कार का उद्देश्य मुख्य रूप से शैक्षणिक था। याज्ञवल्क्य के मतानुसार इसका मुख्य ध्येय वेदों का अध्ययन करना हैं। उनके अनुसार आचार्य को दीक्षित शिष्य को वेद व आचार की निश्चित रूप से शिक्षा दी जानी चाहिए।

(12) वेदारम्भ संस्कार—

इस संस्कार का सर्वप्रथम उल्लेख व्यास स्मृति में किया गया हैं। प्रारंभ में उपनयन तथा वेदों का अध्ययन प्रायः एक ही समय शुरू होता था। ध्यातव्य है कि वेदों का अध्ययन गायन्त्री मन्त्र के साथ शुरू किया जाता था। कालान्तर में वेदों के अध्ययन की गति धीमी पड़ गयी तथा संस्कृत बोलचाल की भाषा नहीं रही। अब उपनयन एक शारीरिक संस्कार हो गया जिसके साथ बालक वेदाध्ययन के स्थान पर अपनी भाषा में शिक्षा ग्रहण करने लगा। अतः समाजशास्त्रियों ने वेदों के अध्ययन की परम्परा बनाये रखने के उद्देश्य से इसे एक नवीन संस्कार का रूप दिया तथा उपनयन संस्कार को इससे अलग कर दिया। यह पूर्ण रूपेण एक शैक्षणिक संस्कार था जिसका प्रारम्भ बालक के वेदाध्ययन से होता था।

इस संस्कार की शुरूआत मातृपूजा से की जाती थी। इसके पश्चाकत् आचार्य अग्नि प्रज्वलित करके विद्यार्थी को उसके पश्चिम में आसीन करता था। यदि ऋग्वेद का अध्ययन शुरू करना होता था तो पृथ्वी तथा अग्नि को आहुतियां दी जाती थी। यजुर्वेद के अध्ययन में

अन्तरिक्ष तथा वायु, सामवेद के अध्ययन में द्यौस व सूर्य की तथा अथर्ववेद के अध्ययन के समय दिशाओं एवं चन्द्रमा की आहुतियां दी जाती थी। यदि सभी वेदों का अध्ययन करना होता था तो सभी देवताओं की आहुतियां दिये जाने का निश्चित विधान था। अन्त में स्थान्नापन्न पुरोहित को दक्षिणा देने के पश्चा त् ही आचार्य विद्यार्थी को वेद पढ़ाना शुरू करता था। मनुस्मृति में यह लिखित है कि वेदाध्ययन के शुरू व अन्त में विद्यार्थी को 'ऊँ' शब्द का उच्चारण अवश्य करना चाहिए, कारण कि प्रारम्भ में उच्चारण न होने से अध्ययन नष्ट हो जाता है जबकि अन्त में उच्चारण न करने से यह ठहरता नहीं हैं।

(13) केशान्त अथवा गोदान संस्कार—

इस संस्कार के अन्तर्गत गुरु के पास रहते हुए विद्यार्थी को 16 वर्ष की आयु में दाढ़ी-मूंछ बनवायी जाती थी। इस अवसर पर गुरु को एक गाय दक्षिणास्वरूप दी जाती थी। इसी कारण इसे गोदान संस्कार भी कहा जाता था। इस संस्कार के माध्यम से विद्यार्थी को ब्रह्मचर्य जीवन के व्रतों को पुनः एक बार संस्मरण कराया जाता था जिसे पालन करने का वह संकल्प लेता था।

इस संस्कार की विधि चूड़ाकर्म संस्कार के समरूप ही थी। वैदिक मन्त्रों के मध्य नाई विद्यार्थी को दाढ़ी-मूंछ काटता था। ध्यातव्य हैं कि इन बालों को पानी में बहा दिया जाता था। पुनः विद्यार्थी गुरु को एक गाय दक्षिणा में देता था। अन्त में वह मौन व्रत धारण करता था तथा एक वर्ष कठोर अनुशासन का जीवन बिताता था।

(14) समावर्तन संस्कार—

गुरुकुल में शिक्षा प्राप्ति के बाद वह विद्यार्थी जब अपने घर वापस आता थ तब ही यह संस्कार कराया जाता था। समावर्तन का शाब्दिक अर्थ होता है ''गुरु के आश्रम से अपने घर वापस जाना।'' इसे स्नान भी कहा जाता है क्योकि इस अवसर पर यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य माना जाता था। इसी के पश्चातत् विद्यार्थी को स्नातक की उपाधि से विभूषित किया जाता था। इस संस्कार हेतु कोई आयु निर्धारित नहीं थी। सामान्यतया इसका सम्पादन विद्यार्थी के अध्ययन की पूर्ण समाप्ति के बाद होता था। कालान्तर में यह संस्कार शिथिल पड़ गया।

ध्यातव्य है कि यह संस्कार अन्य संस्कारों की तरह ही किसी शुभ दिन को सम्पन्न किया जाता था। इस दिन विद्यार्थी प्रातःकाल एक कमरे में बन्द रहता था। यह सूर्य को ब्रह्मचारी के तेज से अवमानित होने से रक्षार्थ किया जाता था कारण कि उस समय ऐसी धारणा थी कि सूर्य ब्रह्मचारी के तेज से ही प्रकाशित होता है। इसी दिन मध्यान्ह में विद्यार्थी कमरे से बाहर निकलकर सर्वप्रथम गुरु के चरण छूता था तथा वैदिक अग्नि में समिधा डालकर उसके प्रति अपनी अन्तिम श्रद्धांजलि प्रदर्शित करता था। इसके लिए वहां आठ जलपूर्ण कलश रखे जाते थे जो इस बात की सूचना देते थे कि विद्यार्थी को पृथ्वी की सभी दिशाओं से प्रशंसा तथा आदर प्राप्त है। इसके बाद वह ब्रह्मचारी उन कलशों के जल से स्नान करता था तथ देवताओं से प्रार्थना करता था। इस स्नान के बाद वह दण्ड, मेखला, मृगचर्म आदि का त्याग कर नया कौपीन पहनता था। ध्यातव्य हैं कि दाढ़ी-बाल, नाखुन आदि कटवाकर वह पवित्र हो जाता था। इसके उपरान्त शरीर पर सुगन्धित लेप के साथ-साथ नये परिधान आभूषण दिये जाते थे। जीवन में रक्षा हेतु उसे बांस का एक डण्डा दया जाता था। अन्तोगत्वा यह विद्यार्थी (स्नातक) आचार्य का आशीर्वचन प्राप्त कर उसकी आज्ञा से अपने घर के लिए प्रस्थान करता था। ध्यातव्य हैं कि

कभी-कभी गुरु विद्यार्थी की भक्ति एवं सेवा से प्रसन्न होकर उसे ही अपनी दक्षिणा मान लेता था।

(15) विवाह संस्कार —

यह प्राचीन हिन्दू समाज का सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्कार हैं जिसकी महत्ता आज भी विद्यमान है। ध्यातव्य है कि प्राचीन काल मे गृहस्थाश्रम का प्रारम्भ इसी संस्कार से होता था। 'विवाह' शब्द 'वि' उपसर्ग और -'वह' धातु से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ 'वधू को वर के घर ले जाना या पहुँचाना होता हैं', किन्तु अति प्राचीन काल से यह शब्द सम्पूर्ण संस्कार को परिलक्षित करता है। इस संस्कार का उद्देश्य पति व पत्नी के सहयोग से विविध पुरुषार्थो को पूरा करना था। हिन्दू मत के अनुसार अकेला मानव एकांगी माना गया है तथा उसे पूर्णता तभी मिलती है जब उसे पत्नी का सान्निध्य मिले। उक्त तथ्य नीचे दी गयी पंक्ति से निश्चित रूप से स्पष्ट है- **अयो अर्द्धो वा एव आत्मनः यत्पत्नीः।** ध्यातव्य है कि जब मानव समाज में तीन प्रकार के ऋणों की स्थिति कायम की गई तब इस संस्कार को और अधिक बल मिला क्योंकि इसके बिना मानव पितृऋण से मुक्त नहीं हो सकता था। इसके जरिए मानव अपना एवं अपने समाज का सम्यक् विकास करता है। इस प्रकार यह एक अनिवार्य संस्कार बना जिसे सम्पन्न करना प्रत्येक मानव हेतु धार्मिक एवं सामाजिक बाध्यता थी जिसे सभी वर्णों हेतु किया जाना आवश्यक माना गया। याज्ञवल्क्य के मतानुसार इसे नहीं करने वाला मानव (किसी भी वर्ण का) कर्म के योग्य नहीं माना गया। ध्यातव्य हैं कि स्मृति ग्रन्थों में इसके आठ प्रकारों यथा ब्रह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गन्धर्व, राक्षस व पैशाच। इनमें प्रथम चार को प्रशस्त व अन्तिम चार को अप्रशस्त नामक संज्ञा से नामित किया गया।

विवाह के प्रकारों की विवेचना—

ब्राह्म विवाह - यह विवाह का सर्वोतम प्रकार था जिसमें पिता सावधानीपूर्वक गुणवान व शीलवान वर चयन कर उसे अपने घर बुलाता था तथा उसकी पूजा कर वस्त्र व आभूषणों से सुसज्जित कन्या को उसे उसके हाथ में देता था। जो नीचे दी गयी उक्ति से निश्चित रूप से स्पष्ट है—

आच्छाद्य चार्चयित्वाः च श्रुतिशीलवते स्वयम्।
आहूय कन्यायाः ब्राह्मो धर्म प्रकीर्तितः।।

इस अवसर पर कन्या का पिता उसे उपहार भी देता था। ध्यातव्य है कि इस समय के कुल, आचरण, विद्या, स्वास्थ्य एवं उसकी धर्मनिष्ठा पर भी ध्यान दिया जाता था। स्मृति में यह उक्ति स्पष्ट हैं के यह विवाह कन्या के वयस्क हो जाने पर ही किया जाता था। इस समय कन्या के पिता द्वारा उपहार देने हेतु कोई बाध्यता नहीं थी। ध्यातव्य है कि यह विवाह किसी दबाव में सम्पन्न होता था जिसकी प्रशंसा स्मृति ग्रन्थों में अवश्य ही सुनने को मिलती हैं। यही विवाह आज भी हमारे देश मं प्रचलित है।

दैव विवाह- इस विवाह के अन्तर्गत कन्या का पिता वर को कन्या देने के बदले में एक जोड़ी गाय व बैल प्राप्त करता है ताकि वह याज्ञिक क्रियाएं समाप्त कर सके।

ध्यातव्य है कि हिन्दू विद्वान इसे कन्या मूल्य नहीं मानते जबकि अल्टेयर महोदय ने वर को गाय व बैल दिये जाने की स्थिति को कन्या मूल्य मानते हुए इसे आसुर विवाह का परिष्कृत रूप बताया है। यह विवाह मुख्यतः पुरोहित परिवार में ही प्रचलित था। मनुस्मृति के टीकाकार

कुल्लूक भट्ट का मत है कि ''यह उपहार धर्म के अनुसार स्वीकार किया जाता था, न कि इसके पीछे कन्या की बिक्री कर कोई इरादा था।

प्राजापत्य विवाह- इस विवाह के अन्तर्गत कन्या का पिता वर को अपनी कन्या प्रदान हुए यह आदेश देता था कि वे दोनों साथ-साथ मिलकर सामाजिक व धार्मिक कर्तव्यों का निर्वहन करें। कन्या का पिता इसके लिए वर से एक वचनबद्धता प्राप्त कर लेता था। आश्वलायन के अनुसार '' यह वह विवाह है जिसमें कन्या वर को ''तुम दोनो साथ-साथ धर्म का पालन करों''- इस आदेश के साथ प्रदान की जाती हैं। इसका अभिप्राय यह था कि दोनों जीवन भर साथ रहें, उनका सम्बन्ध विच्छेद न हो तथा वे एक साथ मिलकर परिवार एवं समाज की उन्नति कर करें । ध्यातव्य हैं कि स्वरूप की दृष्टि से यह विवाह ब्रह्म के समान हैं।

आसुर विवाह - इस विवाह के अन्तर्गत कन्या के पिता अथवा उसके सम्बन्धी धन लेकर कन्या का विवाह करते थे। यह एक तरह से कन्याअ की बिक्री का माध्यम था। मनुस्मृति में इसके बारे में कहा गया है कि ''जहां वर कन्या के सम्बन्धियों को अथवा स्वयं कन्या को धन देकर स्वेच्छा से उसे ग्रहण करता हैं, वह आसुर विवाह होता है'' जो निम्न तथ्यों से स्पष्ट होता है-

ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्वा कन्यायै चैव शक्तितः।
कन्या प्रदानं स्वाच्छान्धादासुरोधर्म उच्यते॥

इस प्रकार इसके अन्तर्गत मुख्य ध्यान धन पर ही दिया जाता था। मनु के अनुसार, ''कन्या के विद्वान पिता को अत्यल्प धन भी नहीं ग्रहण करना चाहिए। यदि वह अपने लोभवश धन लेता या लेने का प्रयास करता है तो वह सन्तान विक्रेता की श्रेणी में आता हैं,'' जो निम्न तथ्य से भी स्पष्ट है -

न कन्यायाः पिता विद्वान् गृहणीयाच्छुल्काण्वपि।
गृहणान्हि शुल्कं लोभेन स्यान्नरोऽपत्य विक्रयी॥
क्रीता द्रव्येण या नारी न सा पत्नी विधीयते।
न सा दैवेन सा पित्र्ये दासीं ता कवयोः विदुः॥

आपस्तम्ब के मतानुसार शूद्र को भी कन्या मूल्य स्वीकार नहीं करना चाहिए जबकि बौधायन ने यहाँ तक कहा हैं कि धन से खरीदी गई कन्या पत्नी का पद प्राप्त नहीं कर सकती तथा वह देवताओं तथा पितरों की पूजा में भाग लेने की अधिकारिणी नहीं है। इस प्रकार ऐसी कन्या एक दासी के समरूप है। वैदिक धर्म-शास्त्रों के अनुसार जो व्यक्ति धन की खातिर कन्यादान करते है, वे अपनी ही बिक्री करते है। इस प्रकार ऐसे व्यक्ति संसार में नीच पापी की श्रेणी में आते हैं तथा वे नर्क को जाते हैं तथा वे सात पीढ़ियों के पुण्य को नष्ट कर देते हैं।

राक्षस विवाह - इसके अन्तर्गत कन्या का बलपूर्वक अपहरण कर उसके साथ विवाह किया जाता था। मनु के अनुसार, ''कन्या पक्ष वालों की हत्या, घायल, उसके घरों का नाश तथा रोती-बिलखती कन्या को बलपूर्वक उठाकर उसके साथ विवाह करना ही इस विवाह का अभिप्राय था,'' जो नीचे दिए गए तथ्य से निश्चित रूप से स्पष्ट है-

हत्वा छित्वा च भित्वाच क्रोशन्नी रुदतो गृहात्।
प्रसद्य कन्यांहरणं राक्षसो विधिउच्यते॥

वस्तुतः इसमें निहित क्रूरता के कारण ही इस विवाह को राक्षस विवाह की संज्ञा दी गई है। ध्यातव्य है कि इस विवाह की प्राचीनता प्रागैतिहासिक काल तक जाती है यह विवाह प्राचीन

कालीन युद्धकर्मी जातियों में विशेष प्रचलित था। महाभारत में इसे क्षात्र धर्म की संज्ञा दी गई है। मनु क्षत्रियों के लिए इसे प्रशंसनीय मानते हैं। ध्यातव्य हैं कि महाभारत के नायक भीष्म ने भी इसे क्षत्रियों के लिए प्रशस्त बताया है।

गान्धर्व विवाह- इस विवाह के अन्तर्गत वर-कन्या एक-दूसरे के गुणों पर विभोर होकर अपने माता-पिता की इच्छा के विपरीत विवाह के बन्धन में बंध जाते थे, जो एक प्रणय विवाह था। मनु के शब्दों में, ''जहां वर व कन्या एक स्वेच्छा से परस्पर मिलकर कामवश आपस में मैथुन सम्बन्ध स्थापित कर लें तो वही कार्यप्रणाली इस विवाह की श्रेणी में आती है।'' चूंकि इस विवाह का प्रचलन केवल गन्धर्व जाति में था इसी कारण इसे गान्धर्व विवाह कहा गया। ध्यातव्य है कि इस विवाह का प्रचलन प्रत्येक युग में था जो हमारे देश की राजपूत जातियों में सर्वाधिक प्रचलित था। वात्स्यायन तथा महाभारत में भी इस विवाह का सर्वोतम बताया गया है जबकि कुछ स्मृतिकारों द्वारा धार्मिक तथा नैतिक आधार पर इस विवाह का विरोध किया गया है।

पैशाच विवाह - इसके अन्तर्गत वर छलछद्म के द्वारा कन्या के शरीर पर अपना अधिकार कर लेता था, जो सबसे निकृष्टतम विवाह है। मनु के मतानुसार अचेत, सोई हुई, पागल अथवा मदमत्त कन्या के साथ जब व्यक्ति सम्भोग करता है तब वह विवाह इसकी श्रेणी में आता है यह नीचे दिए गए तथ्य से भी स्पष्ट है-

सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति।
सः पापिष्ठो विवाहानां पैशाचष्टिमोऽधमः॥

याज्ञवल्क्य द्वारा छल से कन्या के साथ किये जाने वाले विवाह को इस (पैशाच) की संज्ञा दी गई है। सभी हिन्दू शास्त्रकारों द्वारा इसे नितान्त असभ्य एवं बर्बरता की श्रेणी में रखा गया है जिसका प्रचलन शायद आदिम जंगली जनजातियों में रहा होगा।

विवाहों की अन्य स्थितियाँ

सवर्ण तथा अन्तर्वर्ण विवाह- प्राचीन हिन्दू समाज में इन दोनों विवाहों का भी प्रचलन था। हिन्दू शास्त्रकारों की मान्यता हैं कि व्यक्ति को अपने ही वर्ण एवं जाति में विवाह करना चाहिए। इससे लौकिक यश की प्राप्ति होती है तथा अच्छी सन्तान उत्पन्न होती है। समान गौत्र प्रवर तथा पिण्ड में विवाह करना वर्जित था। इस समय गोत्र का मूल अर्थ गोशाला था जो बाद में वंशका बोध कराने लगा। ध्यातव्य है कि किसी परिवार के गोत्र का नामकरण उसके आदि संस्थापक ऋषि के नाम पर रखा जाता है।

प्रवर का शाब्दिक अर्थ आह्वान तथा प्रार्थना है। यज्ञ कराते समय पुरोहित अपने श्रेष्ठ ऋषि पूर्वजों का उच्चारण करता था। कालान्तर में यह व्यक्ति के ऋषि पूर्वजों के नाम से सम्बद्ध हो गया। ध्यातव्य है कि ये ऋषि गोत्र संस्थापक ऋषियों के भी पूर्वज होते थे। यज्ञादि धार्मिक कार्यों के अवसर पर उनके नाम का उच्चारण आवश्यक माना जाता था। आपस्तम्ब के मतानुसार प्रत्येक गोत्र में तीन प्रकार के प्रवर ऋषि होते थे।

पिण्ड का शाब्दिक अर्थ 'शरीर' है। अतः सपिण्ड विवाह से तात्पर्य उन दो व्यक्तियों के विवाह से है जिनमें समान शरीर का रक्त विद्यमान हो। ध्यातव्य है कि हिन्दू शास्त्रकारों ने पिता पक्ष में सात तथा माता पक्ष में पंच पीढ़ियों तक के सपिण्ड सम्बन्ध को निषिद्ध माना है।

अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाह

प्राचीन हिन्दू समाज में इन दोनों विवाहों का भी प्रचलन था। अनुलोम विवाह के अन्तर्गत उच्च वर्ण का व्यक्ति अपने से ठीक नीचे के वर्ण की कन्या के साथ विवाह करता था। वैदिक समाज में इस तरह के विवाह प्रायः हुआ करते थे, कारण कि उस समय वर्ण व्यवस्था के बन्धन कठोर नहीं थे। इस समय अनेक ब्राह्मण ऋषियों के विवाह क्षत्रिय कन्याओं के साथ हुए थे। इसी क्रम में च्यवन ने सुकन्या, श्यावत्स, ने रथवीति, अगत्स्य ने लोपामुद्रा आदि क्षत्रिय कन्याओं के साथ अपने-अपने विवाह किये थे। इस काल में ब्राह्मणों को सभी वर्गों की कन्याओं से विवाह करने का अधिकार था। याज्ञवल्क्य के मतानुसार अनुलोम विवाह द्वारा ब्राह्मण तीन, क्षत्रिय, दो तथा वैश्य मात्र एक वर्ण की कन्याओं के साथ विवाह कर सकता था। ऐतिहासिक काल से भी इस प्रकार के विवाहाके के दृष्टान्त मिलते है। शुंग शासक अग्निमित्र की पत्नी मालविका तथा राजशेखर की पत्नी अवन्तिसुन्दरी एक क्षत्रिय कन्या थी। इस प्रकार के कई उदाहरण राजतरंगिणी तथा कथासरित्सागर में भी मिलते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पूर्व मध्य युग तक इस प्रकार विवाह समाज में प्रचलित तथा वैध थे। स्मृतिग्रन्थ, मिताक्षरा तथा दायभाग भी इसकी वैधता को स्वीकार करते हैं किन्तु बाद की स्मृतियों में इसकी चर्चा नहीं की गई हैं। मनु ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि इस प्रकार के विवाह से समाज में वर्णसंकरता उत्पन्न होती हैं। प्रतिलोम विवाह के अन्तर्गत उच्च वर्ग की कन्या का विवाह निम्न वर्ग के व्यक्ति के साथ होता था। समाज में इस प्रकार के विवाह को निन्दनीय माना गया है जिसका समाज में बहुत कम प्रचलन था। इस विवाह से उत्पन्न सन्तान को निकृष्ट एवं अस्पृश्य बताया गया हैं। मनु ने ब्राह्मणों से उत्पन्न क्षत्रिय पुत्र को सुत, क्षत्रिय से उत्पन्न वैश्य पुत्र को मागध तथा ब्राह्मणी से उत्पन्न वैश्य पुत्र को मागध कहा है जिसे अति दूषित एवं घृणित बताया गया है जो नीचे दिए गए तथ्यों से भी स्पष्ट हैं-

ते चापि बाह्यान्सुबहूँस्ततोऽस्यधिकदूषितान्।
परस्परस्य दारषु जनयन्ति विग्रहितान्।।

बहुपत्नीत्व तथा बहुपतित्व विवाह

हिन्दू जीवन पद्धिति में मुख्यतया एक विवाह को ही आदर्श माना गया है जिसके अन्तर्गत स्त्री के लिए एक ही पति और पुरुष के लिए एक ही पत्नी का विधान किया गया है। आपस्तम्ब के मतानुसार धर्म तथा प्रजा से सम्पन्न पत्नी के रहते हुए पुरुष को अपना दूसरा विवाह नहीं करना चाहिए। नारद ने अनुकूल, मधुर, भाषी, गृहकार्य में दक्ष, पवित्रता एवं सन्तान वाली पत्नी को छोड़कर दूसरी पत्नी से विवाह करने वाले पुरुष के लिए राजा द्वारा कठोर दण्ड दिये जाने वाले सिद्धान्त को निर्मित किया है जो नीचे दिए गए तथ्य से स्पष्ट है-

अुकूलामवाग्दुष्टां दक्षां साध्वौ प्रजावतीम्।
त्यजन्भार्यामवस्थाप्यो राजा दण्डेन भूयसा।।

ध्यातव्य हैं कि उपरोक्त सिद्धान्त के बावजूद इस समय बहुपतित्व की प्रथा थी जिसे हिन्दू शास्त्रकारों द्वारा विविध परिस्थितियों में ही अनुमति दी जाती हैं। मनु द्वारा पुरूष को दूसरा विवाह करने के लिए निम्न शर्तें निर्धारित की गई हैं- (1) यदि पत्नी बन्ध्या हो, (2) यदि उसके बच्चे जीवित नहीं रहते हो, (3) यदि उससे केवल कन्याएं ही उत्पन्न हों तथा (4) यदि वह झगड़ालू हो। ध्यातव्य है कि कौटिल्य ने भी पुत्रहीन पति को दूसरी पत्नी रखने की अनुमति दी है। याज्ञवल्क्य का मत हैं कि '' रागिणी, बन्ध्या, मदिरा सेवी, अपव्ययी, प्रिय वचन न बोलने

वाली तथा पति डाह रखने वाली पत्नी के रहते के रहते हुए भी पुरुष उसको छोड़कर दूसरा विवाह कर सकता हैं,'' जो नीचे दिए गए तथ्य से भी स्पष्ट है-

सुरापी व्याधिता धूर्ता बन्ध्यार्यहन्य प्रियदम्बा।

स्त्री प्रसूष्चाधिवेतव्या पुरुषद्वेषिणी तथा।।

वात्स्यायन बन्ध्या पत्नीर को यह राय देते हैं कि वह अपने पति को दूसरी पत्नी रखने हेतु राजी करे। उपरोक्त तथ्य निश्चित ही यह स्पष्ट करता है कि बहुपत्नीत्व की प्रथा का उद्देश्यप पुत्र प्राप्ति था। याज्ञवल्क्य के अनुसार मोक्ष की प्राप्ति पुत्र व पौत्र के माध्यम से ही सम्भव है। अतः तब यदि किसी पुरुष को अपनी पहली पत्नी से पुत्र उत्पन्न न हो तो वह एक से अधिक पत्नियां रख सकता है। इस काल में सामान्यतया राजा, महाराज व कुलीन वर्ग के लोग ही एक से अधिक पत्नियां रखते थे। वैदिक, महाभारत व ऐतिहासिक काल (सभी साम्राज्यों में) के साथ-साथ पूर्व मध्यकाल के राजपूत समाज में भी इस प्रथा का प्रचलन था।

(16) अन्त्येष्टि संस्कार—

यह मानव जीवन का अन्तिम संस्कार है जो मृत्यु के उपरान्त सम्पन्न किया जाता है। इसका उद्देश्य मृतात्मा को स्वर्ग लोक में सुख और शान्ति प्रदान करना है। बौधायन के मतानुसार, ''जन्म के पश्चात् के संस्कारों से व्यक्ति लोक को जीतता है तथा इस संस्कार के पश्चा।त् व्यक्ति स्वर्ग पर विजय प्राप्त करता हैं।इस संस्कार की प्राचीनता प्रागैतिहासिक युग तक जाती है। इस काल से ही मानव की यह धारणा है कि मृत्यु के समय शरीर का पूर्ण विनाश नहीं हो पाता, बल्कि उसका अस्तित्व किसी न किसी रूप में बना रहता है। पाषाणकाल की जातियां अपने मृतकों को आदर के साथ दफनाया करती थीं तथा उसके साथ दैनिक उपयोग की वस्तुएं भी रख दी जाती थीं। कालान्तर में हिन्दू धर्म में आत्मा की अमरता का सिद्धान्त लागू किया गया। इस कारण आत्मा की स्वर्ग में शान्ति हेतु यह संस्कार विधिपूर्वक सम्पन्न किया जाने लगा।हिन्दू समाज में मृतक शरीर को जलाने, गाड़ने अथवा फेंकने का प्रावधान था। शवदाह के सामान्यतया तेरहवें दिन तेरहवीं की जाती थी जिसके अन्तर्गत पिण्डदान, श्राद्ध कर्म के साथ ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता था। तत्पश्चा त् मृतक का परिवार शुद्ध हो पाता था। ये सभी क्रियाएं वर्तमान समय में भी हिन्दू समाज में विद्यमान हैं।

अभ्यास प्रश्न -

1. संस्कार शब्द बनता है -

अ. सम् उपसर्ग से ब. उप उपसर्ग से

स. अप उपसर्ग से द. निस् उपसर्ग से

2. संस्कार शब्द का अर्थ है -

अ. निष्कपटता ब. ज्ञान पूर्णता

स. शुद्धता द. सहनशीलता

3. संस्कार कब से कब तक होता है ?

अ. यज्ञोपवीत से मृत्यु तक ब. विवाह से मृत्यु तक

स. गर्भाधान से मृत्यु तक द. जन्म से मृत्यु तक

4. समाजशास्त्रियों के मत में संस्कारों के कितने उद्देश्य है ?

अ. 1 ब. 2

स. 3 स. 4

5. संस्कार मुख्यतः कितने माने गये है ?

अ. 40 ब. 48

स. 16 द. 32

6. गौतम धर्मसूत्र के अनुसार संस्कार है -

अ. 48 ब. 40

स. 16 द. 32

7. मानव जन्म से शूद्र संस्कारों से द्विज विधा से विप्र हो तो तीनों के मिलने से किसकी प्राप्ति होती है

अ. वैदिकता ब. शिक्षितता

स. श्रोत्रियता द. क्षत्रियता

8. गर्भाधान संस्कार होता है -

अ. जन्म के बाद ब. मृत्यु के बाद

स. जन्म से पहले द. यज्ञोपवीत के बाद

9. गर्भाधान संस्कार से तीसरे माह में कौन-सी संस्कार होती है -

अ. जातकर्म संस्कार ब. सीमन्तोन्नयन संस्कार

स. पुंसवन संस्कार द. नामकरण संस्कार

10. विद्यारंभ संस्कार का अन्य नाम है ?

अ. उपनयन संस्कार ब. अक्षरारंभ संस्कार

स. चूड़ाकरण संस्कार द. निष्क्रमण संस्कार

11. गृहस्थाश्रम का प्रारंभ होता है ?

अ. वेदारंभ संस्कार से ब. केशान्त संस्कार से

स. विवाह संस्कार से द. उपनयन संस्कार से

12. मानव जीवन का अन्तिम संस्कार है ?

अ. विवाह संस्कार ब. समावर्तन संस्कार

स. उपनयन संस्कार द. अंत्येष्टि संस्कार

1.8 सारांश

मनुष्य का परम ध्येय धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चतुर्वर्ग फल की प्राप्ति हैं। आपको इस इकाई के अध्ययन से चतुर्वर्ग प्राप्ति की मार्ग रूप संस्कारों की विवेचना प्राप्त हुई होगी, क्योंकि चतुर्वर्ग के अर्थ मात्र से आपको संस्कार की विशेष आवश्यकता अनुभूति होगी। बिना संस्कार के न तो धर्म न अर्थ, न अर्थ के बिना का की पुष्टि, बिना इन तीनों के अभाव में मोक्ष की प्राप्ति असंभव हैं। अतः सबके जड़ रूप में संस्कार ही विद्यमान हैं। जिसका अर्थ होता है परिष्कार, शुद्धता अथवा पवित्रता। इस प्रकार हिन्दू व्यवस्था में इन संस्कारों का विधान व्यक्ति के शरीर को पवित्र बनाने के उद्देश्य से किया गया ताकि वह व्यक्तिगत व सामाजिक विकास के लिए उपयुक्त बन सके। यह वह क्रिया है जिसके सम्पन्न होने पर कोई वस्तु किसी उद्देश्य के योग्य बनती है। इसकी प्रमुख विशेषताओं में शुद्धता, पवित्रता, धार्मिकता एवं आस्तिकता की स्थितियां शामिल हैं। समाज मंप ऐसी धारणा है कि मनुष्य जन्म से असंस्कृत होता है किन्तु वह इन संस्कारों के माध्यम से सुसंस्कृत हो जाता है अर्थात् इनसे उसमें अन्तर्निहित शक्तियों का पूर्ण

विकास हो जाता है तथा वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर लेता है। ये व्यक्ति के जीवन में आने वाली बाधाओं का भी निवारण करते तथा उसकी प्रगति के मार्ग को निष्कंटक बनाते हैं। इसके माध्यम से मानव अपना आध्यात्मिक विकास भी करता है। मनु के अनुसार, यह शरीर को विशुद्ध करके उसे आत्मा का उपयुक्त स्थल बनाता है। इस प्रकार के व्यक्तित्व की सर्वांगीण उन्नति हेतु भारतीय संस्कृति में इनका विधान प्रस्तुत किया गया है।

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1-(अ) 2- (स) 3- (स) 4-(ब) 5-(स) 6-(अ) 7- (स) 8-(स) 9-(स) 10-(ब) 11-(स) 12-(द)

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय संस्कृति,चौखम्भा वाराणसी
2. यज्ञ दीपिका, चौखम्भा वाराणसी
3. मनुस्मृति, महर्षि मनु, चौखम्भा वाराणसी
5. यज्ञ मीमांसा, याज्ञिक सम्राट पं. श्री वेणीराम, चौखम्भा विद्याभवनशर्मा गौड़वाराणसी
6. हिन्दू धर्मकोश, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी
7. वैशेषिक सूत्र, चौखम्भा पब्लिकेशंस वाराणसी
8. भगवत गीता, गीता प्रेस गोरखपुर
9.भारतस्य सांस्कृतिक निधि, श्रीरामजी उपाध्याय, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. संस्कार के प्रकार लिखते हुए गर्भाधान संस्कार का वर्णन कीजिए।
2. संस्कारों का उद्देश्य समाजशास्त्रियों के मतानुसार लिखिए।
3. विवाह के प्रकारों की विवेचना कीजिए।

इकाई 2 : गर्भाधान-पुंसवन-सीमन्तोन्नयन-जातकर्म संस्कार विधि एवं महत्त्व

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 गर्भाधान संस्कार की विधि एवं महत्त्व
2.4 पुंसवन संस्कार की विधि एवं महत्त्व
2.5 सीमन्तोन्नयनसंस्कार की विधि एवं महत्त्व
2.6 जातकर्म संस्कार कीविधि एवं महत्त्व
2.7 सारांश
2.8 पारिभाषिक शब्दावली
2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.10 संदर्भ सूची ग्रंथ
2.11 अन्य सहायक पुस्तकें
2.12 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

संस्कार शब्द से तात्पर्य है कि दोषों का परिमार्जन करना। जीव के दोषों एवं कमियों का दूर करना और उसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थ के योग्य बनाना। प्रस्तुत इकाई में गर्भधान-पुंसवन-सीमन्तोन्नयन-जातकर्म संस्कार की विधि एवंमहत्त्व के बारे में बताया गया है। शिशु के जन्म होने से पूर्वतीन संस्कार होते हैं। गर्भाधान,पुंसवन तथा सीमन्तोन्नयन संस्कार।

सीमन्तोन्नयन संस्कार प्रायः आठवें मास तक होता है। उसके पश्चात एक – डेढ़ मास के अनंतर प्रसव होता है। जन्म होने के पश्चात सर्व प्रथम जो संस्कार होता है उसी का नाम जातकर्म संस्कार है। इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य यह है कि गर्भस्थशिशु जो माता के रस से अपना पोषण करता है, उस आहार आदिका दोष जो बालक में आ जाता है , वह दोष जातकर्म संस्कार के माध्यम से दूर हो जाता है। इस इकाई में आप प्रथम चार संस्कारों के विधि एवं महत्त्व के बारे अध्ययन करेंगे। संस्कारों का हमारे जीवन में कितना महत्त्व है।

2.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों !इस इकाई में आप अध्ययन करेंगे-

- संस्कारों का जीवन में कितना महत्त्व हैं यह जानेंगे।
- गर्भधान संस्कार की विधि एवं महत्त्व के बारे जान सकेंगे।
- पुंसवन संस्कार की विधि एवं महत्त्व के बारे जान सकेंगे।
- सीमन्तोन्नयन संस्कार की विधि एवं महत्त्व के बारे जान सकेंगे।
- जातकर्म संस्कार की विधि एवं महत्त्व के बारे जान सकेंगे।

2.3 गर्भाधान संस्कार की विधि एवं महत्त्व

गर्भाधान संस्कार पितृ ऋण से मुक्त होने के लिये तथा धार्मिक बुद्धिवाली संतान उत्पन्न करने के लिये किया जाता है।'गर्भाधान' शब्द की व्युत्पत्ति दो शब्दों के योग से हुई है।गर्भ + आधान। आधान शब्द का सामान्य अर्थ है स्थापित करना या रखना। इस प्रकार से कहा जा सकता है कि पुरुष के द्वारा स्त्री के गर्भाशय में बीज रूप शुक्र का स्थापित करना। स्त्री को क्षेत्र कहा जाता है और पुरुष को बीज। जैसे बीज वपन के लिये क्षेत्र (खेत) की आवश्यकता होती है ठीक उसी प्रकार पुरुष रूपी बीज के स्त्री रूपी क्षेत्र में स्थापित होने की उचित क्रिया गर्भधान संस्कार कहलाती है। गर्भाधान संस्कार से क्षेत्र शुद्धि होती है। इस संस्कार के माध्यम से भावी-संतान धर्ममयी बुद्धि वाली होती है। गर्भाधान संस्कार के लिये माता-पिता का सदाचार सम्पन्न होना परमावश्यक है क्योंकि गर्भाधान संस्कार बाह्य कृत है, लेकिन इसका पूर्ण प्रभाव संतान के मन, बुद्धि, चित्त तथा हृदय पर विलक्षण रूप से पड़ता है।गर्भाधान संस्कार द्वारा पुरुष का जो बीज संबंधी दोष-पाप है, वह नष्ट हो जाता है और स्त्री के आर्तव एवं गर्भ संबंधी जो दोष हैं, वे नष्ट हो जाते हैं तथा गर्भाशय की शुद्धि हो जाती है।

याज्ञवल्क्यस्मृति में कहा गया है –**'एवमेनः शमं याति बीजगर्भ समुद्भवं'**गर्भाधान संस्कार के द्वारा होने वाली संतान स्वभाविक रूप से संस्कार सम्पन्न एवं सुसंस्कृत होती है। यह संस्कार ऋतुकाल में निषिद्ध तिथियों को छोड़कर विहित तिथियों में करणीय है। गर्भाधान संस्कार से पितृ ऋण से मुक्ति प्राप्त होती है।**'ऋणानि ऋण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्'**

गर्भाधान – संस्कार का अनुष्ठान उस समय करना चाहिए जब पती और पत्नी स्वस्थ हों संतानोत्पत्ति के योग्य हों साथ ही संतान उत्पन्न करने की प्रबल इच्छा हो। उस समय देवपूजन और मंत्रों के द्वारा शुद्ध वातावरण उपस्थित कर गर्भाधान संस्कार करें। यह संस्कार इंद्रियों का सुख मात्र नहीं है अपितु एक सूक्ष्म यज्ञ का स्वरूप धारण करके पैतृक ऋण की मुक्ति का साधन बनता है और शरीर इस यज्ञ में उपकरण की भूमिका निभाते हैं। **'प्रजया पितृभ्यः।** गर्भाधान संस्कार विवाह संस्कार की पूर्णता को भी व्यक्त करता है। बृहदारण्यकोपनिषद में गर्भाधान – संस्कार के विषय में विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है और इस संस्कार को संतानोत्पत्ति विज्ञान या पुत्रमंथ कर्म भी कहा जाता है और बताया गया है कि चराचर भूतों का रस पृथिवी है, पृथिवी का रस जल है , जल का रस औषधियाँ हैं, औषधियों का रस पुष्प है, पुष्पों का रस फल है, फलों का रस पुरुष है और पुरुष का रस शुक्र है, इस रस वीर्य की स्थापना के लिये प्रजापति में स्त्री की सृष्टि की तथा स्त्री पुरुष दोनों के पवित्र सहवास करने से उत्तम संतान की प्राप्ति होती है।

गर्भाधान से पूर्व तथा पश्चात मंत्रों का स्मरण करना यह केवल भारतीय आर्यचिंतन में ही संभव है इसी लिए ऋषियों के देश भारत को विश्वगुरु कहा जाता है।

गर्भं धेहि सिनीवाली गर्भं धेहि पृथुष्टुके।
गर्भं धेहि ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्त्रजौ।।

शुभ मुहूर्त मे किया गया गर्भाधान निष्फल नहीं होता अपितु गर्भस्थबालक बलिष्ठ होता है। गर्भधारण करने के लिए ऋतु स्नान से 16 रात्रियाँ ही आयुर्वेद एवं धर्मशास्त्र में बताई गयी हैं।

ऋतुकाल से 5 रात्रियों तथा रजोदर्शन से पांचवें दिन तक गर्भ स्थापित करना निषेध है। मासिक धर्म के समय स्त्री के गर्भाशय में रज की गर्मी रहती है, यदि इस प्रस्थिति में गर्भ ठहर जाय तो गर्भोत्पन्न संतान को उसी गर्मी के कारण, माता,मोती झला आदि रक्त विकारात्मक जटिल रोग उत्पन्न हो जातें हैं। सम दिनों में जैसे 6,8,10,12,14,16वीं रात्री में किया गया गर्भाधान पुत्र प्राप्ति कारक होता है **'युग्मासु पुत्रा जायन्ते'** और विषम दिनों में जैसे 7,9,15 वीं रात्री में किया गया गर्भाधान कन्या प्राप्ति कारक है। ग्यारहवी एवं तेरहवीं रात्री में नपुंसक संतान होने का भय रहता है। समागम काल में वीर्य की अधिकता से पुत्र तथा रज की अधिकता से कन्या होती है। **' पुमान पुंसोऽधिकेशुक्रे तथा स्त्री भवत्यधिके स्त्रिया:'**गर्भाधान के समय स्त्री पुरुष का चित्त प्रसन्न रहना चाहिए कारण यह है कि होने वाली संतान पर इन्हीं बातों का प्रायः अधिक प्रभाव पड़ा करता है। जिस भी भाव से स्त्री-पुरुष का मिलन होता है, उसी भाव से युक्त संतान होती है। माता जैसा अच्छा-बुरा देखती है या सुनती-पढ़ती है , खाती-पीती है इन सबका गर्भ स्थिर संतान पर प्रभाव पड़ता है। जो माता पिता देव पूजन ब्राह्मण पूजन करते हैं,पवित्रता तथा सदाचार का पालन करते हैं , वे गुणशील संतान को उत्पन्न करते हैं , विपरीत आचरण करने वाले माता – पिता निर्गुण संतान को उत्पन्न करते हैं।

देवताब्राह्मणपराः शौचाचारहिते रताः।
महागुणान् प्रसूयन्ते विपरीतास्तु निर्गुणान्।।
यादृशेन हि भावेन योनौ शुक्रं समुत्सृजेत्।
तादृशेन हि भावेन संतानं सम्भवेदिति।।

सहवास के समय स्त्री और पुरुष की भावनाएं,आहार और आचार जैसे होते हैं, संतान में भी ऐसी ही भावना और आहार – आचार देखा जाता है।गर्भवती स्त्री को राजस,तामस भावों से बचकर रहना चाहिये। गर्भवती स्त्री को सात्विक भावनाएँ रखनी चाहिये। गंदे एवं अश्लील

दृश्यों को नहीं देखना चाहिये बल्कि संत दर्शन , देवदर्शन करना चाहिये साथ ही रामायण,भागवत आदि ग्रंथों को पढ़ना-सुनना-सुनाना चाहिये ।मांस , मदिरा, अंडा, प्याज, लहसुन, अति तीक्ष्ण मिर्च, मसाला आदि का सेवन नहीं करना चाहिये बल्कि सात्विक भोजन दूध ,दही,दाल,रोटी आदि ही ग्रहण करना चाहिये ।

आहराचारचेष्टाभिर्यादृशीभिः समन्वितौ ।
स्त्रीपुन्सौ समुपेयतां तयोः पुत्रोऽपि तादृशः ।।

गर्भाधान के समय उचित काल के विषय में भी धर्म ग्रंथों में विस्तार से बताया गया है। गर्भाधान संस्कार के समय उचित काल , नक्षत्र ,तिथि,बार ,शुभ मुहूर्त इत्यादि का भी विशेष महत्त्व है ।

गण्डान्तं त्रिविधं त्यजेन्निधनजन्मर्क्षे च मूलान्तकं
दास्त्रं पौष्णमथोपरागदिवसं पातं तथा वैधृतिम् ।
पित्रौःश्राद्धदिनं दिवा च परिघाद्यर्धं स्वपत्निगमे
भान्युत्पातहतानि मृत्युभवनं जन्मर्क्षतः पापभम् ।।

गर्भाधान के समय नक्षत्रों का विशेष ध्यान रखना चाहिये । नक्षत्र गण्डान्त, तिथि गण्डान्त, और लग्न गण्डान्त, जन्म नक्षत्र से सातवाँ नक्षत्र , मूल, भरणी, अश्वनी, रेवती, मघा, सूर्य और चंद्रग्रहण के दिन ,पात, वैधृतियोग , माता-पिता के श्राद्ध का दिन,दिन में , परिघयोग के पूर्वार्ध, उत्पात से हत नक्षत्र , जन्म राशि और लग्न से आठवाँ लग्न,पाप ग्रह नक्षत्र ये सब त्याज्य हैं । गर्भाधान के शुभ मुहूर्त के विषय में भी कुछ इस प्रकार से वर्णन प्राप्त होता है –

भद्रा षष्ठी पूर्वरिक्ताश्च संध्या भौममार्कार्कीनाद्यारात्रीश्चतस्रः ।
गर्भाधानं त्र्युत्तरेन्द्वर्कमैत्र – ब्राह्मस्वातिविष्णुवस्वम्बुपे सत् ।।

भद्रा षष्ठी, पर्व के दिन 14,08,30,15 और संक्रांति रिक्ता 4,9,14 तिथि , संध्याकाल , मंगलवार,रविवार,शनिवार,और रजोदर्शन से 4 रात्री इन सब को गर्भधान में छोड़ देना चाहिये गर्भधान के लिए ये उचित नहीं हैं तथा तीनों उत्तरा ,मृगशिरा ,हस्त , अनुराधा , रोहिणी , स्वाति, श्रवण , धनिष्ठा , शतभीषा , इन नक्षत्रों मे शुभ वार , शुभ लग्न , शुभ तिथि, शुभ योग में गर्भधान संस्कार करना शुभ होता है । याज्ञवल्क्यस्मृति में कहा गया है कि गर्भणी की अभिलाषा पूरी न करने से गर्भ दोष युक्त हो जाता है, विकार युक्त हो जाता है अथवा नष्ट भी हो जाता है, अतः गर्भवती महिला की इच्छायें पूर्ण करनी चाहिये ।

अभ्यास प्रश्न 1

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिये ।

1. सर्वप्रथम संस्कार है ।
   (क) नामकरण
   (ख) पुंसवन
   (ग) गर्भाधान
   (घ) इनमे से कोई नहीं
2. आयुर्वेद एवं धर्मशास्त्र में गर्भधारण करने के लिए ऋतु स्नान के पश्चात रात्रियाँ बताई गयी हैं ।
   (क) 16
   (ख) 20

(ग) 21

(घ) 22

3. आधान शब्द का सामान्य अर्थ है।

(क) निवास स्थान

(ख) हटा देना

(ग) दूर करना

(घ) स्थापित करना

4. 'एवमेनः शमं याति बीजगर्भ समुद्भवं'उक्ति है।

(क) मनुस्मृति

(ख) मुहूर्तचिन्तामणि

(ग) याज्ञवल्क्यस्मृति

(घ) व्यास स्मृति

5. क्षेत्र कहा जाता है।

(क) पुरुष को

(ख) स्त्री को

(ग) शुक्र को

(घ) उपर्युक्त सभी

(2) रिक्तस्थानों की पूर्ति कीजिये।

1. गर्भवती स्त्री को ---------- भावों से बचकर रहना चाहिये।

2. गर्भाधान संस्कार पितृ ऋण से----------होने के लिये किया जाता है।

3. गर्भाधान के समय स्त्री पुरुष का चित्त---------- रहना चाहिए

4. याज्ञवल्क्यस्मृति में कहा गया है कि गर्भणी की अभिलाषा पूरी न करने से गर्भ---------हो जाता है।

5. गर्भाधान संस्कार विवाह संस्कार की----------को भी व्यक्त करता है।

(3) सही गलत का चयन कीजिये।

1. गर्भाधान संस्कार पितृ ऋण से मुक्त होने के लिये किया जाता है। ( )

2. गर्भाधान संस्कार से स्त्री के आर्तव एवं गर्भ संबंधी जो दोष हैं, वे नष्ट हो जाते हैं। ( )

3. ऋतुकाल से 5 रात्रियों तथा रजोदर्शन से पांचवें दिन तक गर्भ स्थापित करना निषेध है। ( )

4. याज्ञवल्क्यस्मृति में कहा गया है कि गर्भणी की अभिलाषा पूरी नहीं करनी चाहिये। ( )

5. गर्भाधान संस्कार के लिये माता-पिता का सदाचार सम्पन्न होना परमावश्यक है। ( )

2.4 पुंसवन संस्कार की विधि एवं महत्त्व

गर्भाधान संस्कार के पश्चात होने वाला प्रथम संस्कार का नाम पुंसवन संस्कार है। यह संस्कार जन्म से पूर्व होता है। **'पुंसवन संस्कार तृतीय मासि पुसवः'** अर्थात यह संस्कार गर्भाधान से तृतीय मास में किया जाता है। इस संस्कार में गुरु-शुक्र मलमासादि कोई दोष नहीं होता। **'येन स गर्भः पुमान् प्रभवति –तत्पुंसवनम्'** जिस संस्कार द्वारा वह गर्भ पुरुष बन जाता है, वह पुंसवन संस्कार है। अथवा जिस संस्कार से पुत्र का जन्म हो उसको पुंसवन संस्कार कहते हैं। चार मास तक गर्भ में स्त्री-पुरुष का भेद नहीं होता है, इसलिए स्त्री पुरुष के चिन्ह की

उत्तपति से पूर्व यह संस्कार किया जाता है । पुंसवन संस्कार की व्याख्या आचार्यों ने कुछ इस प्रकार से की है – जब गर्भ में जीव किंचित सवन-स्पंदन ,गति,हिलना,-डुलना आदि करने लगता है, तब इस संस्कार को करना चाहिये - **'पुंस: सवनं स्पंदनात्पूरा' ।** इस संस्कार से पुरुष का शरीर बनता है **'पुमान् सूयते येन कर्मणा तदिदं पुंसवनम्'।** जिस कर्म से पुरुष का प्रसव (पुत्र का जन्म) हो उस संस्कार को पुंसवन संस्कार कहते हैं ।पुंसवन संस्कार बालक के गर्भावस्था का है । इसलिए आचार्य विज्ञानेश्वर इसे मातृ क्षेत्र का संस्कार मानते हैं, अतः वे पुंसवन एवं सीमन्तोन्नयन को केवल एक बार करने का निर्देश करते हैं । इन दोनों संस्कारों को क्षेत्र – संस्कार माना गया है ।इसलिए इन संस्कारों को केवल एक बार ही करने का निर्देश है । महर्षि देवल के अनुसार –

सकृच्च संस्कृता नारी सर्वगर्भेषु संस्कृता ।
यं यं गर्भं प्रसूयेत स सर्व: संस्कृतो भवेत् ।।

गर्भवती स्त्री का पहला संस्कार पुंसवन – संस्कार हो जाने के पश्चात वह प्रत्येक गर्भ के लिये संस्कार से युक्त हो जाती है अर्थात संस्कृत हो जाती है, इस लिये दुबारा पुंसवन-संस्कार करने की आवश्यकता नहीं होती है । पुंसवन संस्कार का समय गर्भधारण करने के दूसरे,तीसरे महीने में या गर्भ के प्रतीत होने पर इस संस्कार को करना चाहिये । पुंसवन संस्कार यदि समय पर न हो सके तो सीमन्तोन्नयन संस्कार के साथ भी किया जा सकता है ।

आचार्य शौनक के अनुसार यदि तीसरे मास में गर्भ के चिह्न प्रकट हो जाएं तो तीसरे महीने में करना चाहिये और यदि गर्भ चिह्न व्यक्त न हों तो चौथे मास में करना चाहिये ।

व्यक्त गर्भे तृतीये तु मासे पुंसवनं भवेत् ।
गर्भेऽव्यक्ततृतीये चेच्चतुर्थे मासि वा भवेत् ।।

पुंसवन संस्कार के अनन्तर अनवलोभन कर्म को भी कर लेना चाहिये । अनवलोभन कर्म का भी वही उद्देश्य है जो पुंसवन संस्कार का है । गर्भ की रक्षा हो, गर्भ पुष्ट हो, गर्भ नष्ट न हो, इस उद्देश्य से यह कर्म सम्पन्न किया जाता है । इसका एक अर्थ यह भी है कि जिस कर्म के द्वारा गर्भ नष्ट न हो, उसे अनवलोभन कहा गया है । **' येन कर्मणा जातो गर्भो नावलुप्यते तदनवलोभनम्' ।** इसे भी चतुर्थ मास में जब चंद्रमा पुष्य आदि पुरुषवाची नक्षत्र में हो, तो इसे पुंसवन संस्कार के साथ किया जाता है । इसमें विशेष विधि से श्वेत दूर्वा रस का सेचन गर्भवती स्त्री के दाएं नासा छिद्र में अँगूठे के अग्र भाग से किया जाता है और पति के द्वारा स्त्री का हृदय स्पर्श किया जाता है । पुंसवन संस्कार करने से पूर्व ज्योतिषी द्वारा शुभ मुहूर्त पर विचार कर लेना चाहिये । शुभ मुहूर्त में नित्य क्रिया पूर्ण करके स्नानादि करके पवित्र होकर पूर्व मुख बैठकर अपने दाहिने ओर पत्नी को बैठकर दीप प्रज्वलित कर आचमन , प्रणायम, आसनशुद्धि , संकल्प , गणेशादि पूजन करके पुंसवन संस्कार को सम्पन्न करना चाहिए । उस दिन पति –पत्नी को उपवास रखना चाहिये ।

पुंसवन संस्कार में प्रधान कर्म – मातृपूजा आदि समन्न करने के पश्चात वटवृक्ष के निचले भाग में उत्पन्न अंकुरों एवं वट वृक्ष की शाखाओं के ऊपर अग्रभाग में उत्पन्न नूतन पल्लवों के बीच में उत्पन्न हुए अंकुरों एवं कुश की जड़ तथा सोमलता अभाव में पूतिक अथवा दूर्वा को लाकर स्वच्छ जल के साथ पीस लें इसके पश्चात उस रस को स्वच्छ वस्त्र से छानकर किसी पात्र में सुरक्षित रख लें । पश्चात गर्भवती स्त्री की नासिका के दाहिने छिद्र में पति रस कोडालता है । यदि वीर्यवान पुत्र प्राप्ति की इच्छा हो तो पति जल से पूर्ण एक पात्र को पत्नी की गोद में रखकर

अनामिका अंगुली से स्त्री के गर्भ का स्पर्श करता है। शास्त्रों में कहा भी गया है कि पुत्र की सार्थकता तभी है जब वह जीवन रहते पिता-माता की आज्ञा का पालन करे, माता-पिता के शरीर पूर्ण होने पर क्षयाह तिथि को उनके निमित्त ब्राह्मण भोजन कराये और गया में पिण्डदान करे।

जीवतो वाक्यकरणात् क्षयाहे भूरिभोजनात्।
गयायां पिण्डदानाच्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता।।

इस संस्कार के पश्चात ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान करें साथ ही यथा शक्ति ब्राह्मणों को भोजन करना चाहिये। यदि किसी कारण से पुंसवन संस्कार समय पर न हो तो इसे सीमन्तोन्नयन के साथ करना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न 2

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिये।

1. गर्भाधान संस्कार के पश्चात होने वाला प्रथम संस्कार का क्या नाम है ?
   (क) नामकरण
   (ख) पुंसवन
   (ग) जातकर्म
   (घ) इनमे से कोई नहीं
2. पुंसवन संस्कार कब किया जाता है ?
   (क) प्रथममास में
   (ख) द्वितीय मास में
   (ग) तृतीय मास में
   (घ) पंचम मास में
3. जिस संस्कार द्वारा गर्भ पुरुष बन जाता है, वह संस्कार है।
   (क) सीमन्तोन्नयन
   (ख) पुंसवन
   (ग) जातकर्म
   (घ) इनमे से कोई नहीं
4. पुंसवन संस्कार यदि समय पर न हो तो कब करना चाहिये ?
   (क) जातकर्म संस्कार के साथ
   (ख) द्वितीय मास में
   (ग) सीमन्तोन्नयन संस्कार के साथ
   (घ) इनमे से कोई नहीं

(2) रिक्तस्थानों की पूर्ति किजिये।

1 पुंसवन संस्कार में----------मलमासादि कोई दोष नहीं होता।
2 जिस संस्कार द्वारा गर्भ पुरुष बन जाता है, वह---------- संस्कार है।
3 चार मास तक गर्भ में स्त्री-पुरुष का----------नहीं होता है।
4 पुंसवन संस्कार करने से पूर्व ज्योतिषी द्वारा----------पर विचार कर लेना चाहिये।

(3) सही गलत का चयन किजिये।

1 पुंसवन संस्कार दूसरे महीने में होता है। ( )
2 पुंसवन संस्कार के अनन्तर अनवलोभन कर्म को भी कर लेना चाहिये। ( )

3 गर्भवती स्त्री का पहला संस्कार पुंसवन – संस्कार हो जाने के पश्चात वह प्रत्येक गर्भ के लिये संस्कार से युक्त हो जाती है अर्थात संस्कृत हो जाती है। ( )

4 पुंसवन संस्कार गर्भवती महिला का तीसरा संस्कार है। ( )

2.5 सीमन्तोन्नयनसंस्कार की विधि एवं महत्त्व

सीमन्त और उन्नयन दो पदों के योग से बना शब्द सीमन्तोन्नयन है। सीमन्त शब्द का अर्थ है स्त्री की माँग। विवाह संस्कार में इसी माँग में वर के द्वारा सिंदूर दान होता है। इसके पश्चात ही वह वधू सीमन्तिनी और सुमंगली कहलाती है । सीमन्तोन्नयन संस्कार **'सीमन्तश्चाष्टमे मासि'** अर्थात् यह संस्कार गर्भधान संस्कार से छटे वा आठवे महीने में करना चाहिये। स्त्रियों का सीमन्त भाग अति संवेदनशील और मर्म स्थान कहा गया है। सीमन्तोन्नयन संस्कार में पति द्वारा विशेष विधि से गर्भणी के सीमन्त भाग का ही संस्कार होता है। इस संस्कार में बालों को दो भागों में बाँटा जाता है। जिसका प्रभाव गर्भणी तथा संतान दोनों पर पड़ता है। इसी लिये यह संस्कार अति महत्त्वपूर्ण है। सीमन्तोन्नयन संस्कार के सम्बन्ध में आचार्यों के भिन्न-भिन्न मत हैं। कतिपय आचार्यों के मत में यह संस्कार प्रत्येक गर्भ के समय करना चाहिये तथा कुछ आचार्यों के मत में यह संस्कार केवल प्रथम गर्भ में करणीय है। ऐसे में आचार्यों का मनना है की एक बार संस्कार हो जाने के पश्चात वह प्रत्येक गर्भ के लिये संस्कृत हो जाती है। यही कारण है कि आचार्य पारस्कर जी ने अपने गृहसूत्र में इसको केवल प्रथम गर्भ में ही करने का निर्देश दिया है –**' प्रथमगर्भे मासे षष्ठेऽष्टमे वा'** ।इसीलिये आचार्य पारस्कर जी का यह मत सर्वमान्य है। इस संस्कार से संतान के मस्तिष्क पर शुभ प्रभाव पड़ता है। सीमन्तोन्नयन संस्कार के समय गर्भ शिक्षण के योग्य होता है इसलिए गर्भणी को चाहिये कि वह सत्साहित्य के अध्ययन में रुचि रखे साथ ही सदविचारों से युक्त रहना चाहिये क्योंकि छठे मास से शिशु का ज्ञानोदय होने लगता है एवं मानसिक स्मरण शक्ति जाग्रत होने लगती है। इस संस्कार के होते ही स्त्रियों को अपने धार्मिक विचार रखने चाहिये । श्री भगवान के चरित्र आदि सुनने चाहिए। जिससे इसका सुंदर प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर पड़े और वह सद्बुद्धि वाला बने ।गर्भ धारण के छठे या आठवें महीने में पुरुषसंज्ञक नक्षत्र आदि शुभ तिथि में स्नानादि नित्य क्रिया के पश्चात सपत्नीक पवित्र आसन पर बैठकर दीप प्रज्वलित कर आचमन , प्रणायम करके पवित्री धारण कर संकल्प, गणेश पूजन, हवन इत्यादि के बाद सीमन्तोन्नयन संस्कार की विधि सम्पन्न करें।

सीमन्त के उन्नयन की प्रक्रिया कुछ इस प्रकार से है गर्भवती स्त्री को हवन वेदी के पश्चिम की ओर कोमल आसन पर बैठकर फिर शल्लकी सेई या वनसूकर का काँटा , पीपल की कील , (पतली डाली) पीले डोरे से लिपटा हुआ तकुआ तथा तीन कुशा की पिंजूलिका और गूलर की दो फल युक्त डाली – इन पांचों पदार्थों से पति अपनी पत्नी के बालों को ललाट से ऊपर सिर के पिछले भाग तक अलग करे अर्थात सीमन्त (माँग) में रेखा बनाये। बालों को दो भागों में बाँटे। इस समय वीणागायकों कप कहें कि किसी वीर पराक्रमी राजा की गाथा गायें। इस प्रकार सी यह संस्कार किया जाता है। इस संस्कार से पूर्व शुभ मुहूर्त पर भी विचार कर लेना चाहिये। मुहूर्तचिन्तामणी के अनुसार -

जीवार्कारदिने मृगेज्यनिर्ऋतिश्रोत्रादितिब्रघ्नभै :
रिक्तामार्कर रसाष्ट वर्ज्य तिथि भिर्मासाधिपे पीवरे।
सीमन्तोऽष्टमषष्ठमासि शुभदैः केन्द्रत्रिकोणे खलै-

र्लाभारित्रिषु वा धुर्वान्त्यसदहे लग्ने च पुंभाम्शके ।।

अर्थात् - गुरु,रवि,मंगलवार का दिन नहीं होना चाहिये। नक्षत्र मृगशिरा , पुष्य , मूल, श्रवण , पुनर्वसु , हस्त नहीं होने चाहिये। तिथि अमावास्य , द्वादशी , षष्ठी , अष्टमी को छोड़कर अन्य तिथियों में करणीय है जैसे – मासेश्वर बलवान हो , गर्भाधान से छठे – आठवें माह में , केंद्र त्रिकोण में शुभग्रह हों , पाप ग्रह 11,06,03 में हों, धुर्वसंज्ञक नक्षत्र अथवा रेवती नक्षत्र में , पुरुषग्रह के लग्न और नवांश में सीमन्त कर्म करना शुभ माना गया है।

अभ्यास प्रश्न 3

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिये।

1. सीमन्तोन्नयन संस्कार में 'सीमन्त' शब्द का अर्थ है।
   (क) स्त्री
   (ख) पुरुष
   (ग) माँग
   (घ) शिशु
2. प्रायः आठवें मास तक होने वाले संस्कार का क्या नाम है।
   (क) जातकर्म
   (ख) नामकरण
   (ग) सीमन्तोन्नयन
   (घ) इनमे से कोई नहीं
3. **' प्रथमगर्भे मासे षष्ठेऽष्टमे वा'**यह कथन है।
   (क) मनु
   (ख) पारस्कार
   (ग) व्यास
   (घ) याज्ञवल्क्य
4. सीमंतोन्नयन संस्कार में कौन से बार निषिद्ध हैं ?
   (क) गुरु,रवि,मंगलवार
   (ख) सोम, बुध
   (ग) शनि, गुरु
   (घ) मंगल, बुध, शनि

(2) रिक्तस्थानों की पूर्ति कीजिये।

1. सीमन्त और उन्नयन दो पदों के योग से---------- शब्द बनता है।
2. सीमंतोन्नयन संस्कार के होते ही स्त्रियों को अपने---------विचार रखने चाहिये।
3. धुर्वसंज्ञक नक्षत्र अथवा रेवती नक्षत्र में,पुरुषग्रह के लग्न और नवांश में सीमन्त कर्म करना ---------- माना गया है।
4 . मुहूर्तचिंतामणी के अनुसार गुरु,रवि,---------- का दिन नहीं होना चाहिये।

(3) सही गलत का चयन कीजिये।

1. सीमन्त शब्द का अर्थ पुरुष होता है। ( )
2. विवाह संस्कार के पश्चात वधू सीमन्तिनी और सुमंगली कहलाती है। ( )

3. सीमंतोन्नयन संस्कार के लिए गुरु,रवि,मंगलवार का दिन शुभ है। ( )

4. धुर्वसंज्ञक नक्षत्र अथवा रेवती नक्षत्र में,पुरुषग्रह के लग्न और नवांश में सीमन्त कर्म करना शुभ माना गया है। ( )

2.6जातकर्म संस्कार कीविधि एवं महत्त्व

संतान के जन्म होने से पूर्वतीन संस्कार होते हैं ।गर्भधान,पुंसवन तथा सीमन्तोन्नयन संस्कार। सीमन्तोन्नयन संस्कार प्रायः आठवें मास तक होता है। उसके पश्चात एक – डेढ़ मास के अनंतर प्रसव होता है। जन्म होने के पश्चात सर्व प्रथम जो संस्कार होता है उसी का नाम जातकर्म संस्कार है। इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य यह है कि गर्भस्थशिशु जो माता के रस से अपना पोषण करता है, उस आहार आदिका दोष जो बालक में आ जाता है , वह दोष जातकर्म संस्कार के माध्यम से दूर हो जाता है **'गर्भाम्बुपानजो दोषो जातात् सर्वोऽपि नश्यति'** ध्यान रखने योग्य बात यह कि यह संस्कार केवल पुत्र के उत्तपन होने पर ही होता है , कन्या के नहीं।

महर्षि पारस्कर जी ने आपने गृहसूत्र में लिखा है –**' जातस्य कुमारस्याच्छिन्नायां नाडयां मेधाजननायुष्ये करोति'।** अर्थात् जन्मे हुए बालक के नालच्छेदन से पहले मेधाजनन तथा आयुष्यकर्म पिता करता है। मनुस्मृति में भी यह बात कही गयी है –**प्राक् नाभिवर्द्धनात् पुंसो जातकर्म विधीयते'** । क्योंकि नालच्छेदन के उपरांत जननाशौच (सूतक) लग जाता है। जन्म के बारह घड़ी (चार घंटे) या सोलह घड़ी (छः घंटे)के पश्चात नाल काटनी चाहिये। इतने समय में जातकर्म संस्कार पूर्ण किया जा सकता है। पुत्र के जन्म होने पर पितृ गण तथा देवता उस घर में आते हैं , इसलिए वह दिन पूज्य एवं पुण्यशाली होता है , उस दिन देव एवं पितृ पूजन करना चाहिये और ब्राह्मणों को सुवर्ण दान ,गौ दान, भूमि दान इत्यादि करना चाहिये- **'कुमारजन्मदिवसे विप्रैः कार्यः प्रतिग्रहः'** । अर्थात पुत्र के जन्म के दिन जातकर्म संस्कार में ब्राह्मणों को दान ग्रहण करना चाहिये। मुहूर्तचिन्तामणी के अनुसार जातकर्म संस्कार के शुभ मुहूर्त-

तज्जातकर्मादि शिशोर्विधेयं पर्वाख्यारिक्तोनतिथौ शुभेऽह्नि।
एकादशे द्वादशकेऽपि घस्रे मृदुध्रुर्वक्षिप्रचरोडुषु स्यात्॥

पर्व के दिन और रिक्ता तिथि को छोड़कर अन्य तिथियों में, शुभ दिन में , जन्मकाल से 11 वें, 12 वें दिन में,मृदुसंज्ञक , धुर्वसंज्ञक , क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्रों में , बालक का जातकर्म एवं नामकर्म करना शुभ है।

जातकर्म संस्कार में करणीय कृत्य –

गर्भस्थ बालक के नाभि में एक नाल होति है, उस नाल का संबंध माता के हृदय से होता है। गर्भस्थ बालक नाल के माध्यम से माता के द्वारा ग्रहण किये गये आहार के द्वारा शिशु का गर्भ में पोषण होता है। जन्म के समय बालक इसी नाल के साथ माता के गर्भ से बाहर निकलता है। जातकर्म संस्कार में बालक के इसी नाल का छेदन किया जाता है, इसके बाद माता से बालक का सम्बन्ध – विच्छेद हो जाता है इसके पश्चात बालक को मधु – दूध आदि बाहर का आहार देना प्रारंभ किया जाता है। जातकर्म संस्कार नालच्छेदन से पूर्व ही होते हैं। शस्त्रों में बताया गया है कि पुत्रोत्पत्ति का शुभ समाचार सुनते ही कुलदेवता तथा वृद्ध पुरुषों को प्रणाम करना चाहिये। पुत्र का मुखावलोकन करके गंगा आदि पवित्र नदी में उत्तराभिमुख होकर वस्त्रों सहित स्नान करना चाहिये। यदि पुत्र मूल , ज्येष्ठा अथवा व्यतीपात आदि अशुभ योगों में

उत्पन्न हुआ हो तो उसका मुख देखे बिना ही स्नान करना चाहिये। यदि पुत्रोत्पति रात्री में हो तो रात्री में स्नान करना चाहिये, इस विषय में बताया गया है कि यद्यपि रात्री में स्नान निषिद्ध है, किन्तु यह स्नान नैमित्तिक है। इसलिए रात्री में स्नान,दान किया जा सकता है। स्नान के पश्चात पिता की स्पर्श आदि के लिए शुद्धि हो जाती है, परंतु माता दस दिन में ही शुद्ध होती है। जातकर्म संस्कार में बालक का पिता अपनी पत्नी की गोद में बालक को बिठाकर पूर्व की ओर मुख कर स्वस्तिवाचन कर संकल्प करे और फिर गणेशादि पूजन करके सर्वप्रथम मेधाजनन संस्कार करें। मेधाजनन संस्कार वह कर्म है जिसे करने से बालक मेधावी बनाने के लिये किया जाता है। इस संस्कार के लिए सर्वप्रथम सुवर्णादि तैजस पात्र में मधु और घी को मिलाकर या घृत को लेकर सुवर्ण की शलाका से अथवा दाहिने हाथ की अनामिका अंगुली के अग्रभाग में सुवर्ण रखकर सुवर्ण सहित अंगुली से मधु और घृत को मिलाकर बालक को एक बार या चार बार मधु–घृत असमान मात्रा में या केवल घृत थोड़ा सा चटा दें। घृत , मधु और स्वर्ण ये तीनों अमृत स्वरूप हैं। इन तीनों के मिश्रण में अद्भुत शक्ति होती है और इनका प्रभाव भी अमोघ है , इन तीनों का मिश्रण बच्चे की आयु और मेधा बढ़ाने वाली रसायनिक औषधि है। मेधाजन कर्म के पश्चात पिता द्वारा आयुष्यकरण कर्म किया जाता है। आयुष्यकरण कर्म द्वारा बालक दीर्घजीवी होता है।आयुष्यकरण का उद्देश्य ही यह है कि बालक दीर्घ आयु तक स्वस्थता पूर्वक जीवनयापन करें और शारीरिक रोग अथवा कोई मानसिक व्यथा न हो। वेद मंत्रों का उच्चारण करते हुएबालक के समस्त शरीर का स्पर्श किया जाता है, इसके पश्चात प्राण,व्यान,अपान,उदान तथा समान पांचों वायु से जो क्रमशः बालक के हृदय , सर्वांग , गुदादेश, कंठ तथा नाभि में व्याप्त रहती हैं। इनसे बालक की दीर्घ आयु की प्रार्थना की जाती है। इसके साथ ही बालक के जन्म भूमि की प्रार्थना की जाती है जिस भूमि पर माता के गर्भ से सर्वप्रथम बालक का स्पर्श होता है वह भूमि जन्मभूमि कहलाती है। और यह समझा जाता है कि यह बालक इसी भूमि द्वारा मुझे प्राप्त हुआ है। इस लिए इस भूमि का हमारे ऊपर महान ऋण है ,इसी भावना से बालक का पिता मंत्रों सहित भूमि का पूजन करता है।इसके बाद बालक के पिता द्वारा मंत्रपूर्वक बालक का स्पर्श किया जाता है। इन मंत्रों में बताया गया है कि हे पुत्र बज्र के समान होओ , कुठार के समान तीक्ष्ण एवं अपहतवीर्य वाले बनो , स्वर्ण के समान पवित्र बनो। इसके पश्चात बालक का पिता बालक की माता के कल्याण के लिए प्रार्थना करता है। तदनन्तर माता के दोनों स्तनों का प्रक्षालन करके बालक को दुग्ध पान करवाया जाता है। सूतिका स्त्री के शयनस्थान पर पलंग के नीचे भूमि पर एक जल पूर्ण कुम्भ रख देना चाहिये। सूतिका गृहे द्वार पर वेदी निर्माण कर उस पर प्रगल्भ नामक अग्नि की स्थापना करनी चाहिये। वह अग्नि निरंतर दस दिन तक जलती रहे, बुझे नहीं। पश्चात नालच्छेदन करें, आठ अंगुल छोड़कर नालच्छेदन करें और अभिषेक, मंत्र पाठ ,तिलक इत्यादि कर जातकर्म संस्कार सम्पन्न करें।

2.7 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों !

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान चुके होंगे कि जन्म लेने से पूर्व एवं जन्म के पश्चात हमारे जीवन में संस्कारों का कितना महत्त्व है। इस इकाई में आपने गर्भाधान , पुंसवन , सीमन्तोनयन एवं जातकर्म संस्कार का भली भांति अध्ययन किया। सर्वप्रथमआपने गर्भाधान संस्कार के बारे जाना कि गर्भाधान संस्कार पितृ ऋण से मुक्त होने के लिये तथा धार्मिक

बुद्धिवाली संतान उत्पन्न करने के लिये किया जाता है ।'गर्भाधान' शब्द की व्युत्पत्ति दो शब्दों के योग से हुई है। गर्भ + आधान। आधान शब्द का सामान्य अर्थ है,स्थापित करना या रखना। गर्भाधान संस्कार के पश्चात होने वाला प्रथम संस्कार का नाम पुंसवन संस्कार है। यह संस्कार जन्म से पूर्व होता है। **'पुंसवन संस्कार तृतीय मासि पुसव:'** अर्थात यह संस्कार गर्भाधान से तृतीय मास में किया जाता है। इसके पश्चात आपने सीमन्तोनयन संस्कार के बारे में जाना कि सीमन्तोन्नयन संस्कार **'सीमन्तश्चाष्टमे मासि'**अर्थात यह संस्कार गर्भधान संस्कार से छटे वा आठवे महीने में करना चाहिये। स्त्रियों का सीमन्त भाग अति संवेदनशील और मर्म स्थान कहा गया है। सीमन्तोन्नयन संस्कार में पति द्वारा विशेष विधि से गर्भणी के सीमन्त भाग का ही संस्कार होता है। इस संस्कार में बालों को दो भागों में बाँटा जाता है। जिसका प्रभाव गर्भणी तथा संतान दोनों पर पड़ता है और अंत में आपने जातकर्म संस्कार के बारे में जाना कि संतान के जन्म होने से पूर्वतीन संस्कार होते हैं । गर्भधान,पुंसवन तथा सीमन्तोन्नयन संस्कार । सीमन्तोन्नयन संस्कार प्रायः आठवें मास तक होता है। उसके पश्चात एक – डेढ़ मास के अनंतर प्रसव होता है। जन्म होने के पश्चात सर्व प्रथम जो संस्कार होता है उसी का नाम जातकर्म संस्कार है। इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य यह है कि गर्भस्थशिशु जो माता के रस से अपना पोषण करता है, उस आहार आदिका दोष जो बालक में आ जाता है , वह दोष जातकर्म संस्कार के माध्यम से दूर हो जाता है **'गर्भाम्बुपानजो दोषो जातात् सर्वोऽपि नश्यति'** ध्यान रखने योग्य बात यह कि यह संस्कार केवल पुत्र के उत्तपन होने पर ही होता है , कन्या के नहीं। महर्षि पारस्कर जी ने आपने गृहसूत्र में लिखा है –**' जातस्य कुमारस्याच्छिन्नायां नाडयां मेधाजननायुष्ये करोति'** ।इस प्रकार आपने इस इकाई में गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोनयन एवं जातकर्म संस्कार के बारे में भली-भांति जाना है।

2.8 पारिभाषिक शब्दावली

असमान	-	जो बराबर न हो
भांति	-	अनेक प्रकार के
सुवर्ण	-	सोना
ऋण	-	उधार , वह जिसका दायित्व किसी पर हो
धार्मिक	-	धर्म संबंधी
कुठार	-	फरसा , कुल्हाड़ा
सीमन्त	-	माँग
संवेदनशील	-	भावुक , सहृदय
मर्म	-	भेद , रहस्य
व्यथा	-	क्लेश , दुख
तीक्ष्ण	-	नोकवाला ,तेज , पैना , नोकीला

अभ्यास प्रश्न 4

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिये।

1.जन्म होने के पश्चात सर्व प्रथम कौन सा संस्कार होता है ?

(क) जातकर्म

(ख) नामकरण

(ग) सीमन्तोन्नयन

(घ) इनमे से कोई नहीं

2. जन्मे हुए बालक के नालच्छेदन से पहले मेधाजनन तथा आयुष्यकर्म कौन करता है ?

(क) माता

(ख) दादा

(ग) पिता

(घ) चाचा

3. बालक का नाल छेदन किया जाता है।

(क) जातकर्म संस्कार के बाद

(ख) जातकर्म संस्कार से पूर्व

(ग) जातकर्म संस्कार के मध्य

(घ) इनमे से कोई नहीं

4. जातकर्म संस्कार से पूर्व शिशु के कितने संस्कार हो जाते हैं ?

(क) दो

(ख) तीन

(ग) चार

(घ) पाँच

(2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

1संतान के जन्म होने से पूर्व----------संस्कार हो जातें हैं।

2 आहार आदि का दोष जो बालक में आ जाता है, वह दोष-----के माध्यम से दूर हो जाता है।

3 आयुष्यकरण कर्म द्वारा----------दीर्घजीवी होता है।

4 नालच्छेदन के उपरांत----------लग जाता है।

(3) सही गलत का चयन कीजिए।

1 जातकर्म संस्कार जन्म से तीसरे मास में होता है। ( )

2जन्म के बारह घड़ी (चार घंटे) या सोलह घड़ी (छ: घंटे) के पश्चात नाल काटनी चाहिये। ( )

3 धुर्वसंज्ञक , क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्रों में, बालक का जातकर्म एवं नामकर्म करना शुभ है। ( )

4 जातकर्म संस्कार नालच्छेदन के पश्चात ही होते हैं। ( )

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1- 1 ग 2 क 3 घ 4 ग 5 ख

2- 1 राजस,तामस 2 मुक्त 3 प्रसन्न 4 दोष युक्त 5 पूर्णता

3- 1 सही 2 सही 3 सही 4 गलत 5 सही

अभ्यास प्रश्न 2

1- 1 ख 2 ग 3 ख 4 ग

2- 1 शुक्रास्त, गुरुस्त 2 पुंसवन 3 भेद 4 शुभ मुहूर्त

3- 1 गलत 2 सही 3 सही 4 गलत

अभ्यास प्रश्न 3

1- 1 क 2 ग 3 ख 4 क

2- 1 सीमन्तोन्नयन 2 धार्मिक 3 शुभ 4 मंगलवार

3- 1 गलत 2 सही 3 गलत 4 सही

अभ्यास प्रश्न 4

1- 1 क 2 ग 3 क 4 ख

2- 1 तीन 2 जातकर्म संस्कार 3 बालक 4 जन्नाशौच

3- 1 गलत 2 सही 3 सही 4 गलत

2.10 संदर्भ सूची ग्रंथ

1. संस्कारप्रकाश गीतप्रेस, गोरखपुर

2. संस्कार प्रकाश – डॉ मंडन मिश्र प्रधान सम्पादक, लेखक भवानीशंकर त्रिवेदी

3. यज्ञवल्क्यस्मृति: - डॉ गङ्गासागर राय

4. मनुस्मृति – शिवराज आचार्य:कौण्डिन्न्यानः

5. मुहूर्तचिन्तामणि – ज्योतिषाचार्य पं उमाशंकर शुक्ल

2.11 अन्य सहायक पुस्तकें

1. कर्मकाण्ड भास्कर- श्रीराम आचार्य

2. बृहदकर्मकाण्ड

2.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. गर्भाधान संस्कार के बारे में विस्तार से लिखिये।

2. जातकर्म संस्कार की विधि एवं महत्त्व लिखिये।

3. पुंसवन एवं सीमन्तोन्नयन संस्कार के बारे में संक्षिप्त में लिखिये।

इकाई .3 नामकरण-निष्क्रमण-अन्नप्राशन-चूडाकर्म संस्कार की विधि एवं महत्त्व

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 नामकरण संस्कार की विधि एवं महत्त्व
3.4 निष्क्रमणसंस्कार की विधि एवं महत्त्व
3.5 अन्नप्राशन संस्कार की विधि एवं महत्त्व
3.6 चूडाकर्म संस्कार की विधि एवं महत्त्व
3.7 सारांश
3.8 पारिभाषिक शब्दावली
3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.10 संदर्भ सूची ग्रंथ
3.11अन्य सहायक पुस्तकें
3.12 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

संस्कारों का हमारे जीवन में बहुत महत्त्व है। संस्कारों के द्वारा ही जीव को दोषों से मुक्त किया जाता है। प्रस्तुत इकाई में नामकरण-निष्क्रमण-अन्नप्राशन चूडाकर्म संस्कार की विधि एवं महत्त्व के बारे में अध्ययन करेंगे ।संसार में जितने भी प्राणी एवं वस्तुएँ हैं, सबका अपना एक रूप है साथ ही अपना एक नाम भी है। बिना नाम के वस्तु या प्राणी की पहचान होना संभव ही नहीं है। शिशु का नाम रखने के लिये नामकरण संस्कार किया जाता है। मनुस्मृति के अनुसार शिशु का निष्क्रमण संस्कार (घर से निकालने का संस्कार) चौथे महीने में किया जाना चाहिये , तथा अन्नप्राशन संस्कार छठे महीने में करना चाहिये। शिशु को यह सात्विक एवं पवित्र अन्न कब खिलाना चाहिये ? इस संदर्भ में पारस्करगृह सूत्र में बताया गया है कि **'षष्ठे मासेऽन्नप्राशनम् ।'** अर्थात जन्म के छठे मास में अन्नप्राशन संस्कार करना चाहिये। चूडाकर्म संस्कार वह संस्कार है, जिस संस्कार के माध्यम से बालक को चूडा अर्थात शिखा (चोटी) धारण करायी जाती है। इस संस्कार को मुंडन संस्कार भी कहते हैं। इस संस्कार में शिशु के केशमुंडन किये जाते हैं। इसी प्रकार सेइस इकाई में नामकरण-निष्क्रमण-अन्नप्राशन चूडाकर्म संस्कार के बारे में अध्ययन करेंगे।

3.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों !इस इकाई में आप-

- नामकरण संस्कार की विधि एवं महत्त्व के बारे मे जानेंगे।
- निष्क्रमण संस्कार की विधि एवं महत्त्व के बारे में जानेंगे।
- अन्नप्राशन संस्कार की विधि एवं महत्त्व के बारे में जानेंगे।
- चूड़ाकर्म संस्कार की विधि एवं महत्त्व के बारे में जानेंगे।

3.3 नामकरण संस्कार की विधि एवं महत्त्व

संसार में सभी प्राणी अपने नाम से ही जाने जाते है। संसार में जितने भी प्राणी एवं वस्तुएँ हैं, सबका अपना एक रूप है साथ ही अपना एक नाम भी है। बिना नाम के वस्तु या प्राणी की पहचान होना संभव ही नहीं है। कोई भी व्यक्ति यदि प्रथम बार मिलता है तो उसकी पहचान उसका नाम पूछकर हम करते हैं। आपका क्या नाम है ? आपके माता-पिता का क्या नाम है ? आपका निवास स्थान कहाँ है ? इत्यादि, इस प्रकार नाम से ही व्यक्ति या वस्तु के बारे में जाना जा सकता है ।भगवान के भी अनंत नाम हैं , अनंत रूप हैं। आचार्य वृहस्पति नाम की महिमा बताते हैं कि 'नाम अखिल व्यवहार एवं मंगलमय कार्यों का हेतु है। नाम से ही मनुष्य को यश, कीर्ति की प्राप्ति होती है।

नामाखिलस्य व्यवहारहेतु: शुभावहं कर्मसु भाग्यहेतु: ।
नाम्नैव कीर्तिं लभते मनुष्यस्ततः प्रशस्तं खलु नामकर्म ।।

भगवान के नाम लेने की महिमा इतनी अधिक है कि नाम लेते ही पुण्य की प्राप्ति होती है ।नामी से भी नाम की महिमा अधिक है। यही कारण है की जातक का नामकरण – संस्कार किया जाता है। व्यवहार की सिद्धि , आयु , ओजएवं यश की वृद्धि के लिये नामकर–संस्कार करना परमावश्यक है।

आयुर्वर्चोऽभिवृद्धिश्च सिद्धिर्व्यवहृतेस्तथा।

नामकर्मफ़लं त्वेतत् समुदिष्टं मनीषिभिः ।।

नामकरण संस्कार यदि विहित – समय पर न हो सके तो अशौच के अनंतर ,अठारवें दिन , उन्नीसवें दिन , सौवें दिन अथवा छठे मास में या वर्ष दिन पर भी कर सकते हैं । अपने कुलाचार एवं देशाचार के अनुसार शुभ मुहूर्त में बालक का नामकारण संस्कार कर लेना चाहिये । भद्रा, वैधृति , व्यतिपात , ग्रहण , संक्रांति , अमावस्य और श्राद्ध के दिन नामकरण संस्कार नहीं करना चाहिये, परंतु नियत समय में नामकरण संस्कार करने में गुरु तथा शुक्र के अस्त का एवं मलमासादि का निषेध नहीं है ।नामकरण संस्कार पिता के द्वरा किया जाता है । अन्य संस्कारों में भी पिता के कर्ता होने का नियम शस्त्रों में है । नामकरण संस्कार कब करना चाहिये इस संबंध में आचार्य पारस्कर ने बताया है कि **'दशम्यामुथाप्य ब्राह्मणान् भोजयित्वा पिता नाम करोति'।** नामकरण संस्कार दसवें दिन की रात्री व्यतीत हो जाने पर ग्यारहवें दिन किया जाता है क्योंकि दसवें दिन तक जननाशौच रहता है और अशौच में नामकरण नहीं किया जाता, इसलिए अशौच की निवृति हो जाने पर ग्यारहवें दिन नामकरण संस्कार किया जाता है**'एकादशेऽह्नि नाम'**। सर्वप्रथम तीन ब्रह्मणों को भोजन करवाना चाहिये पश्चात बालक का नामकरण पिता के द्वारा किया जाता है । कदाचित् पिता उपस्थित न हों तो ऐसी प्रस्थिति में पितामह , चाचा, आदि भी नामकरण संस्कार कर सकते हैं ।नाम कैसा हो इस विषय में भी शस्त्रों में वर्णन किया गया है । **'द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा घोषवदाद्यन्तरन्तस्थम् । दीर्घाभिनिष्ठानं कृतं कुर्यान्न तद्धितम् ।। अयुजाक्षरमाकारान्त स्त्रियै तद्धितम् ।।'** अर्थात बालक का नाम दो या चार अक्षर युक्त, पहला अक्षर घोष वर्ण से युक्त हो मध्य में अन्तः स्थवर्ण (य,र,ल,व,आदि) और नाम का अंतिम वर्ण दीर्घ एवं कृदन्त हो, जैसा कि देवशर्मा, शूरवर्मा आदि । कन्या के नाम के विषय में भी कुछ इस प्रकार से है कि विषमवर्णी तीन या पाँच अक्षर युक्त हो , अंतिम वर्ण दीर्घ एवं तद्धितान्त होना चाहिये जैसा कि श्रीदेवी आदि । धर्मसिंधु में चार प्रकार के नामों का निर्देश है । 1. देवनाम – रामदास , कृष्णानुज आदि । 2. मासनाम –वैकुंठ , जनार्दन आदि । 3. नक्षत्र नाम तथा नक्षत्र के चार चरणों के आधार पर नाम- कार्तिक आदि । और 4 व्यवहारिक नाम (पुकारने वाला नाम) ।

कतिपय ऋषि मुनियों ने नाक्षत्रिक नाम मात्र उपनयन – संस्कार तक ही उपयुक्त बताया है, जिसे केवल माता-पिता ही जाने कोई अन्य नहीं, इसीलिये माता-पिता पुकारने का कोई सुंदर सा नाम रख लेते हैं इसी को व्यवहारिक नाम कहा जाता है । पिता द्वारा ज्येष्ठ पुत्र का नाम संबोधित नहीं होता, एसी परंपरा है । बालक के पिता को नाम ऐसा रखना चाहिये, जो यशोवर्धक या यशका सूचक हो अथवा देवता या नक्षत्र के आश्रित हो । नामकरण संस्कार चारों वर्णों का होता है । द्विजातियों का समंत्रक नामकरण होता है तथा स्त्री शूद्र का अमंत्रक होता है । पारस्करग्रह्यसूत्र एवं मनुस्मृति के अनुसार ब्राह्मणका नाम मंगल एवं शर्मा युक्त होना चाहिये । क्षत्रिय का नाम बल, रक्षा ,शासन क्षमता सूचक तथा वर्मा युक्त होना चाहिये ।वैश्य का नाम धन-ऐश्वर्य सूचक , पुष्टि युक्त तथा गुप्त युक्त होना चाहिये । शूद्र का नाम सेवा आदि गुणों से युक्त होना चाहिये तथा दासान्त हो । **'शर्म ब्राह्मणस्य वर्म क्षत्रियस्य गुप्तेति वैश्यस्य' ।**

मनुस्मृति के अनुसार –

शर्मवद् ब्राह्मणस्य स्याद् राज्ञो रक्षासमन्वितम् ।
वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रैष्यसंयुक्तम्।।

नामकरण संस्कार के दिन सूतिका पुत्र , पुत्री सहित स्नान आदि करके पवित्र हो जाएं तथा सूतिका गृह को भी शुद्ध करना चाहिये। माता-पिता स्नान आदि के पश्चात पवित्र आसन पर पूर्व मुख होकर बैठ जाएं , दीप प्रज्वलित कर आचमन , प्रणायम आदि कर लें। नामकरण संस्कार का संकल्प करें , पंचांगपूजन, हवन आदि सम्पन्न कर तीन ब्राह्मणों को भोजन करायें ।शुभ लग्न मुहूर्त पर नवीन श्वेत वस्त्र बिछाकर उसपर कुमकुम आदि से या पीपल के पत्ते पर पाँच नाम लिखें। पहला नाम अपने कुलदेवता से संबंध होना चाहिये। दूसरा नाम कृष्ण , अच्युत , चक्रधर ,वैकुंठ , जनार्दन , उपेन्द्र, यज्ञपुरुष, वासुदेव , हरि , योगीश तथा पुण्डरीक इन बारह नामों से जो अभीष्ट हो, एक नाम रखना चाहिये। तीसरा नाम नक्षत्र संबंध होना चाहिये। चौथा नाम व्यवहारिक रखना चाहिये। पाँचवाँ नाम जो स्वयं को प्रिय हो वह रखना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न 1

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिये।

1. नामकरण संस्कार जन्म के पश्चात किस दिन करना चाहिये ?
   (क) दूसरे दिन
   (ख) पांचवें दिन
   (ग) दसवें दिन
   (घ) ग्यारहवें दिन
2. नामकरण संस्कार यदि विहित – समय पर न हो सके तो कब करना चाहिये ?
   (क) 13 या 14 वें दिन
   (ख) 12 वें दिन
   (ग) 15 या 16 वें दिन
   (घ) 18 या 19 वें दिन
3. नामकरण संस्कार मेंपाँचवाँ नाम जो रखना चाहिये।
   (क) देव युक्त
   (ख) जो स्वयं को प्रिय
   (ग) नक्षत्र युक्त
   (घ) इनमे से कोई नहीं
4. शर्मा युक्त होना चाहिये।
   (क) ब्राह्मण का
   (ख) क्षत्रिय का
   (ग) वैश्य का
   (घ) इनमे से कोई नहीं

(2) रिक्तस्थानों की पूर्ति कीजिये।

1. नामकरण संस्कार में तीसरा नाम -------- संबंध होना चाहिये।
2. पारस्करग्रह्यसूत्र एवं मनुस्मृति के अनुसार ब्राह्मण का नाम -------- युक्त होना चाहिये।
3. नियत समय में नामकरण संस्कार करने में गुरु तथा ---------- का एवं मलमासादि का निषेध नहीं है।
4. नामकरण संस्कार ---------- वर्णों का होता है।

(3) सही गलत का चयन कीजिये ।

1. नामकरण संस्कार यदि विहित – समय पर न हो सके तो अशौच के अनंतर ,अठारवें दिन , उन्नीसवें दिन , सौवें दिन अथवा छठे मास में या वर्ष दिन पर भी कर सकते हैं। ( )
2. आचार्य वृहस्पति नाम की महिमा बताते हैं कि 'नाम अखिल व्यवहार एवं मंगलमय कार्यों का हेतु है। नाम से ही मनुष्य को यश, कीर्ति की प्राप्ति होती है। ( )
3. नामकरण संस्कार ग्यारहवें दिन की रात्री व्यतीत हो जाने पर बारहवें दिन किया जाता है। ( )
4. बालक का नामकरण पिता के द्वारा किया जाता है। ( )

3.4 निष्क्रमणसंस्कार की विधि एवं महत्त्व

निष्क्रमण संस्कार बालक के जन्म के चौथे महीने में किया जाता है। इस संस्कार में चौथे महीने में बालक को पहली बार सूर्य देव का दर्शन कराया जाता है , जिससे बालक में आयु एवं कान्ति बढ़े। आचार्य पारस्कर जी के अनुसार –**'चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका ।' 'सूर्यमुदीक्षति तच्चक्षुरीति ।'** मनुस्मृति के अनुसार –

चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोर निष्क्रमणं गृहात् ।
षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यद्वेष्टं मङ्गलं कुले ।।

मनुस्मृति के अनुसार शिशु का निष्क्रमण संस्कार (घर से निकालने का संस्कार) चौथे महीने में किया जाना चाहिये , तथा अन्नप्राशन संस्कार छठे महीने में करना चाहिये। अथवा अपने कुल में जो इष्ट मानने की कुल की परंपरा है उसी समय करना चाहिये। व्यवहारिक सुविधा के लिये शिष्टजन यह संस्कार नामकरण संस्कार के अनंतर ही अपकृष्ट करके इस कर्म को भी सम्पन्न कर लेते हैं। **'द्वादशेऽहनि राजेन्द्र शिशोर्निनिष्क्रमणं गृहात्'।**निष्क्रमण संस्कार में मुख्य रूप से शिशु को घर से बाहर लाकर सूर्य दर्शन कराया जाता है–**' अथ निष्क्रमणं नाम गृहात्प्रथमनिर्गमः'।** अर्थात निष्क्रमण संस्कार के पूर्व शिशु को घर के अंदर ही रखना चाहिये। क्योंकि शिशु की आँखें कोमलता के कारण कच्ची रहती है, यदि उस समय शिशु को सूर्य के प्रकाश में लाया जाएगा तो उसकी आँखों पर दुष्प्रभाव पढ़ेगा, इस कारण भविष्य में या तो उसकी आँखों की शक्ति कमजोर रहेगी या आँखों का ह्रास भी हो सकता है। इस कारण से तो भारतीय नारियां बच्चे को शीशा भी नहीं देखने देती हैं, क्योंकि शीशे की चमक कच्ची आँखों को चौंधिया देती हैं। निष्क्रमण संस्कार में दिग्देवताओं , दिशाओं,सूर्य,चंद्र ,वासुदेव तथा गगन इन सभी देवताओं का आह्वान एक जलपात्र में किया जाता है, उनके मंत्रों से उनका विधिवत पूजन किया जाता है। ताम्रपात्र में सूर्य देव की स्थापना करनी चाहिये। शंख एवं घंटा ध्वनि के साथ शांतिपाठ करते हुए बालक को घर से बाहर लाना चाहिये और सूर्य दर्शन कराने चाहिये। सूर्यदेव को अर्घ प्रदान करना चाहिये। बालक को सूर्य देव के दर्शन कराने चाहिये। पांचवें मास में बालक का भूमि – उपवेशन कर्म भी करवाया जाता है , इस कर्म में बालक को पहली भूमि का स्पर्श करवाया जाता है , **'पञ्चमे च तथा मासि भूमौ तमुपवेशयेत्'।**लेकिन सुविधा की दृष्टि से नामकरण संस्कार के दिन ही निष्क्रमण कर्म करके यह संस्कार करने की परंपरा भी है। भूमि उपवेशन कर्म में भूमि माता से बालक की रक्षा एवं दीर्घायु ले लिये प्रार्थना करनी चाहिये।

रक्षैनं वसुधे देवि सदा सर्वगते शुभे ।
आयुष्प्रमाणं निखिलं निक्षिपस्व हरिप्रिये ।।

भूमि की प्रार्थना करते हुए शंख ध्वनि के साथ बालक को कुछ क्षणों के लिये पूजित भूमि पर बैठना चाहिये। पश्चात ब्रह्मणों को बालक को आशीर्वाद प्रदान करना चाहिये।

निष्क्रमण संस्कार के उपांग कर्म भी है जैसे कि शिशु के लिये नया दोला (झूला) आदि बनवाया जाता है । पहली बार माता की गोद से बालक को झूले में बैठाया जाता है इस कर्म को दोलारोहण कहा जाता है । मातायें शिशु को नवीन वस्त्र धारण कराकर , पूर्व की ओर सिर कराकर शिशु को सुलाती हैं। जब बालक को विशेष दुग्ध की आवश्यकता होने लगती है , तो 31 वें दिन या किसी शुभ दिन में कुलदेवता इत्यादि का पूजन कर माता या सौभाग्यशालिनी स्त्री शंख में गोदुग्ध भरकर बच्चे को पहली बार पिलाती हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिये।

1. निष्क्रमण संस्कार कब किया जाता है ?
   (क) जन्म से तीसरे महीने में
   (ख) जन्म से चौथे महीने में
   (ग) जन्म से छठे महीने में
   (घ) इनमे से कोई नहीं
2. निष्क्रमण संस्कार में चौथे महीने में बालक को पहली बार किस देव का दर्शन कराते हैं ?
   (क) सूर्य देव
   (ख) अग्नि देव
   (ग) चंद्र देव
   (घ) वायु देव
3. **'चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका।' 'सूर्यमुदीक्षति तच्चक्षुरीति।'**यह कथन है।
   (क) व्यास
   (ख) पारस्कर
   (ग) मनु
   (घ) इनमे से कोई नहीं
4. मनुस्मृति के अनुसार शिशु का निष्क्रमण संस्कार कब करना चाहिये ?
   (क) चौथे महीने
   (ख) पांचवें महीने
   (ग) छठे महीने
   (घ) सातवें महीने

(2) रिक्तस्थानों की पूर्ति कीजिये।

1. निष्क्रमण संस्कार में शिशु को प्रथम बार घर से बाहर लाकर ---------- देव के दर्शन कराये जाते हैं।
2. शिशु की आँखें कोमलता के कारण --------- रहती है।
3. ब्रह्मणों को बालक को ---------- प्रदान करना चाहिये।
4. ताम्रपात्र में ---------- देव की स्थापना करनी चाहिये।

(3) सही गलत का चयन कीजिये ।

1. शंख एवं घंटा ध्वनि के साथ शांतिपाठ करते हुए बालक को घर से बाहर लाना चाहिये और सूर्य दर्शन कराने चाहिये। ( )

2. निष्क्रमण संस्कार के उपांग कर्म भी है जैसे कि शिशु के लिये नया दोला (झूला) आदि बनवाया जाता है। ( )

3. मनुस्मृति के अनुसार शिशु का निष्क्रमण संस्कार (घर से निकालने का संस्कार) पाँचवें महीने में किया जाना चाहिये। ( )

4. पांचवें मास में बालक का भूमि – उपवेशन कर्म भी करवाया जाता है , इस कर्म में बालक को पहली भूमि का स्पर्श करवाया जाता है। ( )

3.5 अन्नप्राशन संस्कार की विधि एवं महत्त्व

जन्म के पश्चात शिशु को पहली बार सात्विक एवं पवित्र अन्न खिलना ही अन्नप्राशन संस्कार कहलाता है। शिशु को यह सात्विक एवं पवित्र अन्न कब खिलाना चाहिये ? इस संदर्भ में पारस्करगृह सूत्र में बताया गया है कि **'षष्ठे मासेऽन्नप्राशनम् ।'** अर्थात जन्म के छठे मास में अन्नप्राशन संस्कार करना चाहिये, यानि किप्रथम बार शिशु को अन्न छठे मास में ही भक्षण कराना चाहिये। मनुस्मृति के अनुसार –

चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोर निष्क्रमणं गृहात् ।
षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यद्वेष्टं मङ्गलं कुले ।।

मनुस्मृति के अनुसार शिशु का निष्क्रमण संस्कार (घर से निकालने का संस्कार) चौथे महीने में किया जाना चाहिये , तथा अन्नप्राशन संस्कार छठे महीने में करना चाहिये। बालक एवं बालिका दोनों का अन्नप्राशन संस्कार छठे मास में ही करना चाहिये। अन्नप्राशन संस्कार यदि छठे मास में हो तो गुरु तथा शुक्र के अस्त होने तथा मलमास आदि का दोष नहीं होता। अन्नप्राशन संस्कार को करने से माता के आहार से गर्भा अवस्था में मलिनता भक्षणजन्य जो दोष शिशु पर आ जाता है , वह दोष अन्नप्राशन संस्कार द्वारा दूर हो जाता है। गर्भ के समय माता के द्वारा जैसा पवित्र , अपवित्र, आहार लिया जाता है, उसी आहार से शिशु का पोषण होता है और अन्न का दोष शिशु पर आ जाता है। उस दोष की निवृति के लिये हवन पूर्वक हविष्यान्न , मधु , घृत युक्त पायस शिशु को दिया जाता है, यह गृहण करने से शिशु का शरीर एवं अन्तः करण पवित्र हो जाता है–**'अन्नप्राशनान्मातृगर्भमलाशादपि शुद्धयति।'**

मुहूर्तचिन्तामणि के अनुसार अन्नप्राशन का शुभ मुहूर्त –

रिक्तानन्दाष्टदर्शं हरिदिवसमथो सौरिभौमार्कवारान्
लग्नं जन्मर्क्षलग्नाष्टमगृहलवगं मीनमेषालिकं च।
हित्वा षष्ठात्समे मास्यथ हि मृगदृशां पञ्चमादोजमासे
नक्षत्रैः स्यात् स्थिराख्यैः समृदुलघुचरैर्बालकान्नाशनं सत् ।।

अर्थात् रिक्ता (9,4,14), 1,6,8,11,12,30 इन तिथियों को छोड़कर शनि , मंगल,रवि इन वारों को छोड़कर , जन्म राशि अथवा जन्म लग्न से आठवीं राशि वा उसका नवांश , मीन ,मेष ,वृश्चिक लग्न को छोड़कर अन्य लग्नों में , छह , आठ, इत्यादि सम मासों में बालकों को और पंचमादि विषम मासों में कन्या को मृदुसंज्ञक , लघुसंज्ञक और स्थिरसंज्ञक नामक नक्षत्रों में अन्नप्राशन कराना शुभ है।

अन्नप्राशन कर्म का अंग जीविका निर्धारण विज्ञान ही माना जाता है। जैसे कि बालक बड़ा होकर किस जीविका के द्वारा अपने जीवन का निर्वाह करेगा इत्यादि परीक्षा की विधि भी बतायी गयी है । यह मनोविज्ञान एवं ज्योतिष आदि के द्वारा भी पुष्ट है । जैसा कि वर्णन है

अन्नप्राशन पूर्ण होने के पश्चात शिशु के सामने पुस्तक , शस्त्र , लेखनी , वस्त्र , अन्न , शिल्प की वस्तुएं रखनी चाहिये । पश्चात माताओं को चाहिये कि अपनी गोद से बालक को उतारकर उन वस्तुओं का दिखाये इसके पश्चात बालक जिस भी वस्तु को अपनी इच्छा से पहली बार स्पर्श करे , उसी से बालक की जीविका चलेगी , यह समझा जाता है ।

अन्नप्राशन संस्कार के दिन प्रातः काल माता-पिता को स्नानादि करके पवित्र वस्त्र धारण कर आचमन , प्रणायाम करके शिशु का पिता पूर्व होकर आसन पर बैठ कर अपनी पत्नी और बालक को दक्षिण भाग में बैठाकर दीप प्रज्वलित करे संकल्प, पंचांग पूजादि कर हवन कार्य भी सम्पन्न करें । पश्चात हवन कार्य सम्पन्न हो जाने पर सभी भोज्य , लेह्य , चोष्य, तथा पेय तथा सभी प्रकार के अन्नों को जो घर भी उस दिन घर में बनाया हो एक पात्र में घृत युक्त भगवान को भोग लगाने के अनंतर स्नान पूर्वक नवीन वस्त्र धारण किये हुए शिशु को गृहण करवायें ।भोजन सोने की चम्मच या चांदी की चम्मच से खिला सकते हैं । भोजन थोड़ा थोड़ा कर पाँच बार खिलना चाहिये । पश्चात शिशु का स्वच्छ जल से मुख तीन बार धोना चाहिये, अन्नप्राशन संस्कार सम्पन्न होने के पश्चात आचार्य को दक्षिणा प्रदान करनी चाहिये । इस प्रकार से अन्नप्राशन संस्कार सम्पन्न करना चाहिये ।

अभ्यास प्रश्न 3

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिये ।

1. जन्म के पश्चात अन्नप्राशन संस्कार होता है ।
   (क) तीसरे महीने में
   (ख) चौथे महीने में
   (ग) पांचवें महीने में
   (घ) छठे महीने में
2. जन्म के पश्चात शिशु को पहली बार सात्विक एवं पवित्र अन्न खिलना क्या कहलाता है ?
   (क) जातकर्म
   (ख) अन्नप्राशन
   (ग) सीमंतोन्नयन
   (घ) इनमे से कोई नहीं
3. लघुसंज्ञक और स्थिरसंज्ञक नामक नक्षत्रों में अन्नप्राशन करना माना गया है ।
   (क) शुभ
   (ख) अशुभ
   (ग) सामान्य
   (घ) इनमे से कोई नहीं
4. अन्नप्राशन संस्कार किन बारों को छोड़कर करना चाहिये ।
   (क) सोम, गुरु, शुक्र
   (ख) गुरु, शुक्र
   (ग) सोम , बुध
   (घ) शनि, मंगल, रवि

(2) रिक्तस्थानों की पूर्ति कीजिये ।

1. अन्नप्राशन संस्कार ---------- मास में करना चाहिये ।

2. अन्नप्राशन संस्कार में शिशु को प्रथम बार ----------गृहण करवाया जाता है।

3. अन्नप्राशन कर्म का अंग ---------- विज्ञान ही माना जाता है।

4. अन्नप्राशन संस्कार यदि छठे मास में हो तो---------- अस्त होने तथा मलमास आदि का दोष नहीं होता।

(3) सही गलत का चयन कीजिये ।

1. जन्म के छठे मास में अन्नप्राशन संस्कार करना चाहिये, यानि किप्रथम बार शिशु को अन्न छठे मास में ही भक्षण कराना चाहिये। ( )

2. गर्भ के समय माता के द्वारा जैसा पवित्र , अपवित्र आहार लिया जाता है, उसी आहार से शिशु का पोषण होता है और अन्न का दोष शिशु पर आ जाता है। ( )

3. में बालकों को और पंचमादि विषम मासों में कन्या को मृदुसंज्ञक , लघुसंज्ञक और स्थिरसंज्ञक नामक नक्षत्रों में अन्नप्राशन कराना शुभ है। ( )

4. अन्नप्राशन संस्कार यदि समय पर न हो तो 8 वें महीने में कराना चाहिये। ( )

3.6 चूडाकर्म संस्कार की विधि एवं महत्त्व

चूडाकर्म संस्कार वह संस्कार है, जिस संस्कार के माध्यम से बालक को चूडा अर्थात शिखा (चोटी) धारण करायी जाती है। इस संस्कार को मुंडन संस्कार भी कहते हैं। इस संस्कार में शिशु के केशमुंडन किये जाते हैं। महर्षि पारास्करजी के अनुसार बालक के जन्म होने के पश्चात प्रथम या तीसरे वर्ष में चूडाकर्म संस्कार करना चाहिये। महर्षि आश्वलायन , बृहस्पति एवं नारद आदि के मतानुसार यह संस्कार तीसरे,पांचवें, सातवें ,दसवें, और ग्यारहवें वर्ष में भी किया जा सकता है। महर्षि याज्ञवल्क्य जी के अनुसार जिसके यहाँ जैसी कुल प्रथा हो, तदनुसार यह संस्कार करें **'चूडा कार्या यथाकुलम्'** । कुल प्रथा के अनुसार कहीं पाँचवें वर्ष में या यज्ञोपवीत संस्कारके साथ भी चुडाकर्म संस्कार करने की परंपरा भी है। मनुस्मृति के अनुसार –

चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः ।
प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात् ।।

मनुस्मृति के अनुसार बालक का चूडाकर्म संस्कार जन्म से प्रथम या तृतीय वर्ष में करना चाहिये। चूडाकर्म संस्कार में शिशु के गर्भकालीन केशों का कर्तन किया जाता है और शिशु को शिखा धारण करायी जाती है। शिखा के द्वारा बालक में तेज की वृद्धि होती है , वह दीर्घ आयु तथा बलशाली होता है। **'दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे शिखायै वषट'** । शिखा हमारी ज्ञान शक्ति में विस्तार करती है एवं चैतन्यता प्रदान करती है ।मुंडन संस्कार में बालक के सिर का मुंडन कर शिखा धारण करायी जाती है , इस संस्कार में सर्व प्रथम बालक के केशों का अधिवासन सम्पन्न करना चाहिये । स्नान आदि सम्पन्न कर बालक के सिर के बालों को संकल्पित जल से विधिपूर्वक भिगोकर एवं जूड़ा बनाकर कपड़े से बांधना ही अधिवासन कर्म कहलाता है। अधिवासन कर्म मुंडन संस्कार के पहले दिन रात्री में किया जाता है , यदि पहले दिन यह कर्म न हो सके तो चूड़ाकरण के दिन प्रारम्भ में ही कर लेना चाहिये। चूड़ाकरण क दिन माता-पिता तथा बालक सहित स्नानादि कर नवीन वस्त्रों को धारण करें एवं पूर्व की ओर मुख कर बैठ जाएं। पिता को दीप प्रज्वलित कर आचमन , प्रणायम करने के पश्चात हाथ में जलादि गृहण कर संकल्प करें इसके बाद गणेशआदि पञ्चाङ्ग पूजन कर हवन कार्य संमपन्न करें। मुंडन कर्म में नापित (नाई) उत्तराभिमुख बैठकर पूर्वाभिमुख बालक के सिर का पूर्व भाग से प्रारंभ

करे या उत्तर भाग से आरंभ कर बालक के बालों का मुंडन करे तथा आपनी कुल परम्परा या गोत्र के अनुसार शिखा धारण करे। काटे गये केशों को गोमय पिंड में रखकर गोशाला , या नदी के समीप गाड़ दें, पश्चात बालक स्नान कर शुद्ध होकर माता-पिता ,आचार्य आदि को प्रणाम कर आशीर्वाद गृहण करे, वे सभी लोग बालक को आशीर्वाद प्रदान करें। चूड़ाकर्म संस्कार के लिये माता-पिता को शुभ मुहूर्त पर भी विचार करना चाहिये , शुभ मुहूर्त पर ही चूड़ाकर्म संस्कार निष्पन्न करना चाहिये। मुहूर्तचिन्तामणी के अनुसार –

चूडा वर्षात् तृतीयात्प्रभवति विषमेऽष्टार्करिक्ताद्यषष्ठी-
पर्वोनाहे विचैत्रोदगयनसमये ज्ञेन्दुशुक्रेज्यकानाम्।
वारे लग्नांशयोश्चास्वभनिधनतनो नैधने शुद्धियुक्ते
शाक्रोपेतैर्विमैत्रैर्मृदुचरलघुभैरायषटत्रिस्थपापैः ।।
क्षीणचन्द्रकुजसौरिभास्करैर्मृत्युशस्त्रमृतिपंगुताज्वराः।
स्युः क्रमेण बुधजीवभार्गवेः केन्द्रगैश्च शुभमिष्टतारया ।।

अर्थात् जन्म समय अथवा गर्भाधान समय से तीसरे वर्ष से लेकर विषम वर्ष में , द्वादशी ,रिक्ता (4,9,14), प्रतिपदा,षष्ठी ,पूर्वतिथियाँ (पूर्णिमा,अमावस्या) इनको छोड़कर , उत्तरायण सूर्य में ,चैत्रमास को छोड़कर ,बुध,चंद्र,शुक्र,गुरुवार में , इन्ही ग्रहों के लग्न और नवमांश में, बालक के जन्म लग्न वा राशि से आठवें लग्न को छोड़कर ज्येष्ठा,मृदुसंज्ञक, चरसंज्ञक, लघुसंज्ञक, नक्षत्रों में , पाप गृह 11/03/16 स्थान में हों, तो बालक का प्रथम केशच्छेदान कर्म (मुंडन) शुभ है। यदि क्षीण चंद्रमा केंद्र में हो तो मुंडन कराने से मृत्यु का संकट है, मंगल हो तो शस्त्र से मृत्यु , शनि हो तो पुंगता और रवि केंद्र में हो तो ज्वर होता है। बुध , गुरु , शुक्र में हो और शुभ तारा हो और तो मुंडन कर्म शुभ होता है।मुहूर्तचिन्तामणी के अनुसार माता के गर्भवती होने पर मुंडन कर्म का निर्णय –

पञ्चमासाधिके मातुगर्भे चौलं शिशोर्न सत्।
पञ्चवर्षाधिकस्येष्टम् गर्भिण्यामपि मातरि ।।

अर्थात् बालक की माता पाँच महीने की यदि गर्भवती हो तो मुंडन शुभ नहीं होता। और यदि बालक 5 वर्ष से अधिक का हो तो माता के गर्भवती होने पर भी मुंडन शुभ होता है।
मुहूर्तचिन्तामणी के अनुसार मुंडन में निषिद्ध काल –

ऋतुमत्याः सूतिकायाः सूनोश्चौलादि नाचरेत्।
ज्येष्ठापत्यस्य न ज्येष्ठे कैश्चिन्मार्गेऽपि नेष्यते ।।

बालक की माता ऋतुमती या प्रसूता हो तो बालक का मुंडन कर्म नहीं करना चाहिये और ज्येष्ठ सन्तान का ज्येष्ठ मास में मुंडन नहीं करना चाहिये। अन्य आचार्यों का भी यही मानना है कि मार्गशीर्ष (अगहन) में भी ज्येष्ठ सन्तान का मुंडन संस्कार नहीं करना चाहिये।

3.7 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों !

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान चुके हैं, नामकरण,निष्क्रमण,अन्नप्राशन,चूड़ाकर्म संस्कार का महत्त्व एवं विधि जैसा कि सर्वप्रथम आपने जाना नामकरण संस्कार के बारे में संसार में सभी प्राणी अपने नाम सी ही जाने जाते है। संसार में जीतने भी प्राणी एवं वस्तुएँ हैं, सबका अपना एक रूप है साथ ही अपना एक नाम भी है। बिना

नाम के वस्तु या प्राणी की पहचान होना संभव ही नहीं है। नाम से ही मनुष्य को यश, कीर्ति की प्राप्ति होती है, इसके बाद आपने निष्क्रमण संस्कार के बारे में जाना किनिष्क्रमण संस्कार बालक के जन्म के चौथे महीने में किया जाता है। इस संस्कार में चौथे महीने में बालक को पहली बार सूर्य देव का दर्शन कराया जाता है , जिससे बालक में आयु एवं कान्ति बढ़ती है। मनुस्मृति के अनुसार शिशु का निष्क्रमण संस्कार (घर से निकालने का संस्कार) चौथे महीने में किया जाना चाहिये। अन्नप्राशन संस्कार के बारे में आपने जाना कि इस संस्कार में शिशु को पहली बार सात्विक एवं पवित्र अन्न खिलाया जाता है , इस लिए इस संस्कार को अन्नप्राशन संस्कार कहते हैं। शिशु को यह सात्विक एवं पवित्र अन्न कब खिलाना चाहिये ? इस संदर्भ में पारस्करगृह सूत्र में बताया गया है कि **'षष्ठे मासेऽन्नप्राशनम् ।'** अर्थात जन्म के छठे मास में अन्नप्राशन संस्कार करना चाहिये, यानि किप्रथम बार शिशु को अन्न छठे मास में ही भक्षण कराना चाहिये। साथ ही आपने चूड़ाकर्म संस्कार के बारे में जाना कि जिस संस्कार के माध्यम से बालक को चूडा अर्थात शिखा (चोटी) धारण करायी जाती है। उस संस्कार को चूड़ाकर्म या मुंडन संस्कार भी कहते हैं। इस संस्कार में शिशु के केशमुंडन किये जाते हैं।

3.8 पारिभाषिक शब्दावली

भक्षण	-	भोजन करना
सात्विक	-	शुद्ध, अच्छा
प्रथा	-	रीति,परिपाटी
चैतन्यता	-	सोचने समझने की उत्तम स्थिति
निर्देश	-	समझाना, बतलाना
शिखा	-	चोटी
प्रणायम	-	प्राण का उलटा गमन
निवृति	-	मुक्ति, छुटकारा

अभ्यास प्रश्न 4

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिये।

1. बालक का चूड़ाकर्म संस्कार किस वर्ष करना चाहिये।
   (क) दूसरे वर्ष
   (ख) तीसरे वर्ष
   (ग) चौथे वर्ष
   (घ) इनमे से कोई नहीं
2. **'चूडा कार्या यथाकुलम्'**यह कथन किस आचार्य का है ?
   (क) व्यास
   (ख) मनु
   (ग) याज्ञवल्क्य
   (घ) इनमे से कोई नहीं
3. मनुस्मृति के अनुसार बालक का चूडाकर्म संस्कार जन्म से किस वर्ष करना चाहिये ?
   (क) प्रथम या दूसरे
   (ख) प्रथम या चौथे

(ग) प्रथम या तृतीय

(घ) प्रथम या पंचम

4. चूड़ाकर्म संस्कार और किस नाम से जाना जाता है ?

(क) सीमंतोन्नयन संस्कार

(ख) अन्नप्राशन संस्कार

(ग) केशांत संस्कार

(घ) मुंडन संस्कार

(2) रिक्तस्थानों की पूर्ति कीजिये।

1. महर्षि पारास्करजी के अनुसार बालक के जन्म होने के पश्चात ----------वर्ष में चूडाकर्म संस्कार करना चाहिये।

2. महर्षि आश्वलायन, बृहस्पति एवं नारद आदि के मतानुसार यह संस्कार तीसरे,पांचवें, सातवें,दसवें, और ------वर्ष में भी किया जा सकता है।

3. चूडाकर्म संस्कार में शिशु के गर्भकालीन ----------का कर्तन किया जाता है।

4. ज्येष्ठ सन्तान का ---------- मास में मुंडन नहीं करना चाहिये।

(3) सही गलत का चयन कीजिये ।

1. अन्य आचार्यों का भी यही मानना है कि मार्गशीर्ष (अगहन) में भी ज्येष्ठ सन्तान का मुंडन संस्कार नहीं करना
चाहिये। ( )

2. यदि बालक 5 वर्ष से अधिक का हो तो माता के गर्भवती होने पर भी मुंडन शुभ होता है। ( )

3. महर्षि पारास्करजी के अनुसार बालक के जन्म होने के पश्चात द्वितीय या चतुर्थ वर्ष में चूडाकर्म संस्कार करना चाहिये। ( )

4. मनुस्मृति के अनुसार बालक का चूडाकर्म संस्कार जन्म से प्रथम या तृतीय वर्ष में करना चाहिये। ( )

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1 – 1 घ, 2 घ, 3 ख, 4 क

2 – 1 नक्षत्र, 2 मंगल या शर्मा युक्त, 3 गुरु तथा शुक्र अस्त, 4 चारों

3 - 1 सही, 2 सही, 3 गलत, 4 सही

अभ्यास प्रश्न 2

1 – 1 ख, 2 क, 3 ख, 4 क

2 – 1 सूर्य, 2 कच्ची, 3 आशीर्वाद, 4 सूर्य

3 – 1 सही, 2 सही, 3 गलत, 4 सही

अभ्यास प्रश्न 3

1 – 1 घ, 2 ख, 3 क, 4 घ

2 – 1 छठे, 2 अन्न, 3 जीविका निर्धारण, 4 गुरु तथा शुक्र

3 – 1 सही, 2 सही, 3 सही, 4 गलत

अभ्यास प्रश्न 4

1 – 1 ख, 2 ग, 3 ग, 4 घ

2 – 1 प्रथम या तृतीय, 2 ग्यारहवें, 3 केशों, 4 ज्येष्ठ

3 – 1 सही, 2 सही, 3 गलत, 4 सही

3.10 संदर्भ सूची ग्रंथ

1. संस्कारप्रकाश गीतप्रेस, गोरखपुर
2. संस्कार प्रकाश – डॉ मंडन मिश्र प्रधान सम्पादक, लेखक भवानीशंकर त्रिवेदी
3. यज्ञवल्क्यस्मृतिः - डॉ गङ्गासागर राय
4. मनुस्मृति – शिवराज आचार्य:कौण्डिन्न्यानः
5. मुहूर्तचिन्तामणि – ज्योतिषाचार्य पं उमाशंकर शुक्ल

3.11अन्य सहायक पुस्तकें

1. कर्मकाण्ड भास्कर- श्रीराम आचार्य
2. बृहदकर्मकाण्ड

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. नामकरण संस्कार के विधि एवं महत्त्व के बारे में विस्तार से लिखिये।
2. चूड़ाकर्म संस्कार के बारे में विस्तार से लिखिये।
3. निष्क्रमण संस्कार के महत्त्व को स्पष्ट कीजिए।

इकाई 4 : विद्यारंभ-कर्णवेध-यज्ञोपवीत-वेदारम्भ संस्कार विधि एवं महत्त्व

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 विद्यारंभ संस्कार की विधि एवं महत्त्व
4.4 कर्णवेध संस्कार की विधि एवं महत्त्व
4.5यज्ञोपवीत संस्कार की विधि एवं महत्त्व
4.6 वेदारम्भ संस्कार की विधि एवं महत्त्व
4.7 सारांश
4.8 पारिभाषिक शब्दावली
4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.10 संदर्भ सूची ग्रंथ
4.11अन्य सहायक पुस्तकें
4.12 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

अभिभावक का परम पुनीत धर्म कर्त्तव्य है कि वह संतान को जन्म देने के साथ- साथ भोजन,वस्त्र आदि की शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति होने पर संतान की शिक्षा-दीक्षा का प्रबंध भी करें । विद्यारंभ संस्कार मानव जीवन का अत्यंत महत्त्वपूर्ण संस्कार है । विद्यारम्भ संस्कार के बाद कर्णभेद संस्कार जिस बालक का चूड़ाकरण संस्कार हो उस बालक का कर्णवेध संस्कार करना चाहिये । बालक के जन्म से तीसरे या पांचवें वर्ष में कर्णवेध संस्कार करना चाहिये । दीर्घ आयु और श्री की वृद्धि के लिये कर्णवेध संस्कार किया जाता है । यज्ञोपवीत धारण कर बालक विशेष-विशेष व्रतों में उपनिबद्ध हो जाता है । द्विजों का जीवन व्रतमय होता है । जिसका प्रारंभ यज्ञोपवीत संस्कार से ही होता है । यज्ञोपवीत संस्कार से बालक दीर्घायु, बली और तेजस्वी होता है । यज्ञोपवीत संस्कार के उपरांत वेदारम्भ संस्कार का विधान है । इस संस्कार के द्वारा आचार्य ब्रह्मचारी को अपनी वेद शाखा का ज्ञान और मंत्रोपदेश कराते हैं । वेदों का सार गायत्री है। गायत्री को वेद माता कहा जाता है । आप इस इकाई में : विद्यारंभ-कर्णवेध-यज्ञोपवीत-वेदारम्भ संस्कार विधि एवं महत्त्व का अध्ययन करेंगे ।

4.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों ! इस इकाई में आप-

- विद्यारम्भ संस्कार की विधि एवं महत्त्व के बारे में जानेंगे ।
- कर्णभेद संस्कार की विधि एवं महत्त्व के बारे में जानेंगे ।
- यज्ञोपवीत संस्कार की विधि एवं महत्त्व के बारे में जानेंगे ।
- वेदारम्भ संस्कार की विधि एवं महत्त्व के बारे में जानेंगे ।

4.3 विद्यारंभ संस्कार की विधि एवं महत्त्व

अभिभावक का परम पुनीत धर्म कर्त्तव्य है कि वह संतान को जन्म देने के साथ- साथ भोजन, वस्त्र आदि की शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति होने पर संतान की शिक्षा-दीक्षा का प्रबंध भी करें । शस्त्रों में कहा भी गया है कि –

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः ।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा ।।

अर्थात् जो माता–पिता अपने बच्चो को पढ़ाते नहीं है, ऐसे माँ–बाप बच्चो के शत्रु के समानहोते हैं, क्योंकि विद्वानों की सभा मेंअनपढ़ व्यक्ति कभी सम्मान नहीं पा सकता, वह हंसो के बीच एक बगुले की भांति प्रतीत होता है । इसलिये माता–पिता का कर्तव्य है कि समय से संतान का विद्यारंभ संस्कार करें ।अक्षरारंभया विद्यारंभ संस्कार शिशु के पांचवें वर्ष में करवाना शुभ माना गया है । महर्षि मार्कण्डेय जी का वचन है –**'प्राप्तेऽथ पञ्चमे वर्षे विद्यारम्भं तु कारयेत्'**। गीता में भगवान स्वयं कहते हैं कि –**'अक्षराणामकारोऽस्मि'**अर्थात अक्षरों में 'अ' कार मैं ही हूँ इसी प्रकार उन्होंने कहा है कि-**'अक्षरं ब्रह्म परमं'** अर्थात परम अक्षर ही परम ब्रह्म परमात्मा हैं । तात्पर्य यह है कि अक्षरारम्भ संस्कार से क्षर जीव को अक्षर परमात्मा से सम्बन्ध स्थापित कराने वाला संस्कार है । मुहूर्तचिन्तामणी के अनुसार अक्षरारम्भ का शुभ मुहूर्त –

गणेशविष्णुवाग्रमाः प्रपूज्य पञ्चमाब्दके
तिथौ शिवार्कद्विषटशरत्रिके रवावुदक् ।

लघुश्रवोऽनिलान्त्यमादितीशतक्षमित्रभे
चरोनसत्तनौ शिशोर्लिपिग्रहः सतां दिने ।।

अर्थात्- पांचवें वर्ष में गणेश, विष्णु, सरस्वती और लक्ष्मी का पूजन कर एकादशी, द्वादशी, दशमी, द्वितीय, षष्टि,पंचमी, तृतीय इन तिथियों में, सूर्य उत्तरायण में हो, लघुसंज्ञक, श्रवण, स्वाती, रेवती, पुनर्वसु, आर्द्रा, चित्रा, मित्र (अनुराधा) इन नक्षत्रों में, चरलग्न को छोड़कर दूसरे लग्न में बालक को अक्षरारम्भ संस्कार कराना शुभ होता है।

मुहूर्तचिन्तामणी के अनुसार विद्यारम्भ के लिये शुभ मुहूर्त –

मृगात्करार्च्छ तेस्त्र्येऽश्विमूलपूर्विकात्रये
गुरुद्व्येऽर्कजीववित्सितेऽह्नि षट्शरत्रिके।
शिवार्कदिग्द्विके तिथौ ध्रुवान्त्यमित्रभे परैः
शुभैरधीतिरुत्मा त्रिकोणकेन्द्रगैः स्मृताः ।।

मृगशिरा से तीन नक्षत्र, हस्त से तीन नक्षत्र, श्रवण से तीन नक्षत्र, अश्विनी, मूल, तीनों पूर्वा, पुष्य और आश्लेषा तथा रविवार, गुरुवार, बुधवार और शुक्रवार के दिनों में 6/5/3/11/12/10/2 इन तिथियों में,शुभग्रह केंद्र त्रिकोण में हो तो विद्या का आरम्भ शुभ है। दूसरे आचार्य कहते हैं कि ध्रुवसंज्ञक , रेवती और अनुराधा नक्षत्र में भी विद्यारम्भ संस्कार शुभ होता है। पाटी पूजन में प्रारंभ में **'ॐ नमः सिद्धम्'** लिखा जाता है। अक्षरारंभ संस्कार को लोक में विद्यारंभ संस्कार कहा जाता है । विद्यारंभ संस्कार से पूर्व निर्विघ्नता के लिए श्रीगणेशआदि का ध्यान-पूजन किया जाता है, श्रीगणेश जी के द्वादश नामों का स्मरण करने से विद्यारंभ , विवाह आदि संस्कार सम्पन्न कराने चाहिये।

विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा।
संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ।।

विद्यारंभ संस्कार मानव जीवन का अत्यंत महत्त्वपूर्ण संस्कार है। विद्यारंभ संस्कार में गुरुद्वारा श्रीभगवान के स्मरण पूर्वक बालक को लिखना,पढ़ना, प्रारम्भ कराया जाता है। जिसे पाटी पूजन के नाम से भी जाना जाता है। यह संस्कार शिशु के पांचवें वर्ष में किसी शुभ दिन में शुभ मुहूर्त में स्नान आदि के पश्चात पवित्र वस्त्रों को धारण कर, पूर्वाभिमुख होकर, आसन पर बैठकर, दीप प्रज्वलित कर लें। आचमन, प्राणायाम तथा पवित्री धारण आदि कर्म कर विद्यारंभ संस्कार सम्पन्न करने के लिये प्रधान संकल्प करें। गणेश पूजनादि के पश्चात वेदिका या काष्ठपीठ पर नवीन श्वेत वस्त्र बिछा कर तथा उसमे एक अष्टदल कमल की रचना करें। उस अष्टदल कमल में गणेश, सरस्वती, कुलदेवता, गुरु, तथा लक्ष्मीनारायण की स्थापना करें,इस के पश्चात उसी वेदिका या पीठपर पंक्तिबद्ध रूप से अक्षत पुंजों को स्थापित करते हुए क्रमशः नारद, पाणिनी, पतंजलि, कपिल, कात्यायन, पारस्कर, यासक, कपिञ्जल, गोभिल, जैमिनि, विश्वकर्मा, आचार्य देवगुरु बृहस्पति तथा व्यास – इन विद्या के आचार्यों की स्थापना करें । साथ ही वेद ,व्याकरणशास्त्र आदि ग्रंथों को भी स्थापित करें। पश्चात यथालब्धोपचार सबका पूजन करें। साथ ही ऋषियों तथा विद्याचार्यों का भी नाम मंत्र से पूजन करें। पूजन के अनंतर हाथ में पुष्प लेकर विद्याओं की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती की प्रार्थना करें।

याकुन्देन्दुतुषारहार धवला या शुभ्रवस्त्रावृता।
या वीणावरदण्डमण्डित करा या श्वेतपद्मासना ।।
या ब्रह्माच्युत शङ्करप्रभृतिभिर्देवैःसदा वन्दिता।

सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ।।

इस प्रकार पूजन इत्यादि के पश्चात हवन कार्य पूर्ण करें। देव पूजन हवन आदि के पश्चात शिशु को पूर्वाभिमुख गुरु के सामने बैठाकर बालक द्वारा निम्न मंत्र से गुरु को नमस्कार करवाये।

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।

इसके पश्चात पाटी पर शिशु के हाथ से **'ॐ भूर्भुवः स्वः'** शब्द लिखायें। खड़िया से उन शब्दों को गुरु जी बना दें और शिशु उन शब्दों पर कलम फेर दे, या गुरु और शिष्य दोनों कलम पकड़ लें और पंचाक्षरी गायत्री मंत्र को पाटी पर लिख दें। अक्षर लेखन के पश्चात उन पर अक्षत,पुष्प छुड़वाएं। सारी क्रिया सम्पन्न होने के पश्चात आवाहित सभी देवताओं पर अक्षत – पुष्प समर्पित कर विसर्जन करना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न 1

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिये।

1. अक्षरारंभ संस्कार किया जाता है।

(क) 2 वर्ष में

(ख) 3 वर्ष में

(ग) 4 वर्ष में

(घ) 5 वर्ष में

2**'प्राप्तेऽथ पञ्चमे वर्षे विद्यारम्भं तु कारयेत्'**यह वचन है।

(क) मार्कण्डेय

(ख) व्यास

(ग) मनु

(घ) याज्ञवल्क्य

3 –**'अक्षराणामकारोऽस्मि'** यह उक्ति है।

(क) मनुस्मृति

(ख) गीता

(ग) वेद

(घ) याज्ञवल्क्यस्मृति

4 किस नक्षत्र में विद्यारम्भ संस्कार करना शुभ होता है ?

(क) मूल, पुष्य

(ख) कृतिका, मृगशिरा

(ग) अश्वनी, भरणी

(घ) रेवती, अनुराधा

(2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

1 अक्षरारंभ या विद्यारंभ संस्कार शिशु के---------वर्ष में करवाना शुभ माना गया है।

2 अक्षरारम्भ संस्कार से क्षर जीव को----------से सम्बन्ध स्थापित कराने वाला संस्कार है।

3 श्रीगणेश जी के---------- नामों का स्मरण करने से विद्यारंभ , विवाह आदि संस्कार सम्पन्न कराने चाहिये।

4 विद्यारंभ संस्कार में गुरुद्वारा श्रीभगवान के स्मरण पूर्वक बालक को---------- प्रारम्भ कराया जाता है।

(3) सही गलत का चयन कीजिए।

1.अक्षरारंभ या विद्यारंभ संस्कार शिशु के दसवें वर्ष में करवाना शुभ माना गया है। ( )

2. अन्य आचार्य कहते हैं कि ध्रुवसंज्ञक , रेवती और अनुराधा नक्षत्र में भी विद्यारम्भ संस्कार शुभ होता है। ( )

3. विद्यारंभ संस्कार में गुरुद्वारा श्रीभगवान के स्मरण पूर्वक बालक को लिखना-पढ़ना, प्रारम्भ कराया जाता है। ( )

4. विद्यारंभ संस्कार मानव जीवन का अत्यंत महत्त्वपूर्ण संस्कारनहीं है।( )

4.4 कर्णवेध संस्कार की विधि एवं महत्त्व

कर्णवेध संस्कार में विधि पूर्वक बालक एवं बालिका के दाहिने एवं बायें कान का छेदन किया जाता है। व्यास स्मृति में इस संस्कार की गणना षोडश संस्कारों में की जाती है। व्यास स्मृति में कर्णभेद संस्कार के बारे में कहा गया है कि **'कृतचूडे च बाले च कर्णवेधो विधीयते'** अर्थात जिसका चूड़ाकरण संस्कार हो उस बालक का कर्णवेध संस्कार करना चाहिये। बालक के जन्म से तीसरे या पांचवें वर्ष में कर्णवेध संस्कार करना चाहिये। दीर्घ आयु और श्री की वृद्धि के लिये कर्णवेध संस्कार किया जाता है। **'कर्णवेधं प्रशंसन्ति पुष्टयायुः श्रीविवृद्धये'** ।महान चिकित्सा शास्त्री आचार्य सुश्रुत लिखते हैं कि रक्षा एवं आभूषण के लिये बालक के दोनों कान छेदे जाते हैं। शुभ मुहूर्त में मांगलिक कृत्य एवं स्वस्तिवाचन करके बालक को माता की गोद मे बिठाकर खिलौनों से बहलाते हुए बालक के दोनों कान का छेदन करना चाहिये। यदि पुत्र हो तो पहले दाँय कान का छेदन करें यदि कन्या हो तो पहले बाँय कान का छेदन करें।

कन्या की नासिका भी छेदी जाती है **।' रक्षाभूषणनिमित्तं बालकस्य कर्णौ विध्येते। पूर्वं दक्षिणं कुमारस्यः, वामं कुमार्याः , ततः पिचुवर्तिं प्रवेशयेत्।'**जबकर्ण छिद्र पुष्ट हो जाय तो सुवर्ण का कुंडल आदि पहनाना चाहिये। सुवर्ण के स्पर्श से बालक स्वस्थ एवं दीर्घायु होता है। कन्याके के कानों में आभूषण पहनने योग्य छिद्र करना चाहिये। कर्णवेध संस्कार के माध्यम से बालरिष्ट उत्पन्न करने वाले बालग्रहों से बालक की रक्षा होती है और इसमें कुंडल आदि धारण करने से मुख की शोभा भी बढ़ जाती हैं।

कर्णव्यधे कृतो बालो न ग्रहैरभिभूयते।
भूस्यतेऽस्य मुखं तस्मात् कार्यस्तत् कर्णयोर्व्यधे ।।

मुहूर्तचिन्तामणी के अनुसार कर्णवेध संस्कार का मुहूर्त –

हित्वैतांश्चैत्रपौषावमहरिशयनं जन्ममासं च रिक्तां
युग्माब्दं जन्मतारामृतुमुनिवसुभिः सम्मिते मास्यथौ वा।
जन्माहात् सूर्यभूपैः परिमितदिवसे ज्ञेज्यशुक्रेन्दुवारे –
ऽधोजाब्दे विष्णुयुग्मादितिमृदुलघुभैः कर्णवेधः प्रशस्तः ।।

अर्थात्- चैत्र और पौष मास, तिथि क्षय, हरिशयन – (आषाढ़ शुक्ल 11 से भवान सोते हैं और कार्तिक शुक्ल 11 को उठते हैं, इतना समय हरिशयन कहलाता है), जन्म मास , रिक्ता तिथि, सम वर्ष, जन्मतारा इन सब को छोड़कर छठे , सातवें और आठवें महीने में अथवा जन्म

दिन से 12/16 वें दिन में, बुध,शुक्र,सोमवार में, विषम वर्ष में, श्रवण, धनिष्ठा, पुनर्वसु, मृदुसंज्ञक और लघुसंज्ञक नक्षत्र में कर्णवेध संस्कार शुभ है।

मुहूर्तचिन्तामणी के अनुसार कर्णवेध संस्कार में शुभ लग्न –

संशुद्धे मृतिभवने त्रिकोणकेन्द्र –

त्र्यास्थैः शुभखचरैः कवीज्यलग्ने।

पापाख्यैररिसहजायगेहसंस्थै –

र्लग्नस्थे त्रिदशगुरौ शुभावहः स्यात्।।

अर्थात्- लग्न से अष्टम स्थान शुद्ध हो, केंद्र में, त्रिकोण में और 3/11 में शुभ ग्रहे हो,लग्न में गुरु, शुक्र की राशि हो, 6/3/11 में पाप ग्रह हो, लग्न में गुरु हो तो कर्णवेध संस्कार शुभ होता है।

कर्णवेध संस्कार के लिये किसी शुभ दिन शुभ नक्षत्र में पिता प्रातः काल उठकर नित्य कर्मों को सम्पन्न कर शुद्ध आसन पर पूर्व मुख होकर बैठे। बालक को गोद में लेकर माता भी दाहिनी ओर पूर्व मुख होकर बैठ जाय। सभी सामग्री को व्यवस्थित रूप में रख लें। दीप प्रज्वलित कर, आचमन, प्रणायम, पवित्री धारण आदि कर्म करने के पश्चात संकल्प करें। गणेशादि पूजन के पश्चात नीराजन तथा पुष्पांजलि प्रदान करें। इसके बाद अपने कुलदेवता, वैद्य, ब्राह्मणों तथा कर्णच्छेदन कर्ता को नमस्कार करके माता की गोद में वस्त्र अभूषणों से अलंकृत पूर्वाभिमुख बालक के हाथ में गुड़,मोदक आदि मधुर द्रव्य देना चाहिये। ऐसे करने से बालक का ध्यान खाने एवं खेलने में लगा रहे और उसको कर्णवेधन की पीड़ा का भान न रहे। कन्याओं का सर्वप्रथम बायें कान वेधन करना चाहिये फिर दायें कान का वेधन करना चाहिये। कन्याओं का नासिका के वामभाग में आभूषण धारण करने के लिये भी वेधन करना चाहिये। कन्याओं की यह क्रिया अमंत्रक होती हैं। पश्चात आचार्यों को दक्षिणा प्रदान करनी चाहिये फिर जलाक्षत लेकर भूयसी दक्षिणा तथा ब्राह्मण भोजन का संकल्प करना चाहिये। तदनंतर आवाहित सभी देवताओं पर अक्षत-पुष्प समर्पित कर निम्न मंत्र से विसर्जन करें।

यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम्।

इष्टकाममृद्धयर्थं पुनरागमनाय च।।

अभ्यास प्रश्न 2

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिये।

1.कर्णवेध संस्कार करना चाहिये

(क) पहले-दूसरे वर्ष में

(ख) दूसरे वर्ष में

(ग) तीसरे-पांचवें वर्ष में

(घ) इनमे से कोई नहीं

2. **'कृतचूडे च बाले च कर्णवेधो विधीयते'**कहा गया है।

(क) व्यास स्मृति में

(ख) मनुस्मृति में

(ग) याज्ञवल्क्य स्मृति में

(घ) पुराणों में

3. मृदुसंज्ञक और लघुसंज्ञक नक्षत्र में कर्णवेध संस्कार करना माना जाता है।

(क)शुभ

(ख)अशुभ
(ग)सामान्य
(घ) इनमे से कोई नहीं
4. आचार्य सुश्रुत थे।
(क)धर्मशास्त्री
(ख)नैयायिक
(ग)वैयाकरणी
(घ) चिकित्सा शास्त्री

(2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

1. बालक के जन्म से ---------- वर्ष में कर्णवेध संस्कार करना चाहिये।
2. कर्णवेध संस्कार के माध्यम से ----------उत्पन्न करने वाले बालग्रहों से बालक की रक्षा होती है।
3. बालक का सर्वप्रथम ---------- कान का छेदन किया जाता है।
4. कर्णभेद संस्कार में कन्याओं की क्रिया----------होती हैं।

(3) सही गलत का चयन कीजिए।

1. तीसरे या पांचवें वर्ष में कर्णवेध संस्कार करना चाहिये। ( )
2. कर्णवेध संस्कार में बालक का दायें कान का छेदन किया जाता है। ( )
3. जिसका चूड़ाकरण संस्कार हो उस बालक का कर्णवेध संस्कार नहीं करना चाहिये। ( )
4. महान चिकित्सा शास्त्री आचार्य सुश्रुत लिखते हैं कि रक्षा एवं आभूषण के लिये बालक के दोनों कान छेदे
जाते हैं। ( )

4.5 यज्ञोपवीत संस्कार की विधि एवं महत्त्व

यज्ञोपवीत या उपनयन संस्कार 'उपनयन' शब्द 'उप' उपसर्ग पूर्वक 'नी' धातु से 'ल्यु'प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। उप अर्थात आचार्य के पास नयन अर्थात बालक को विद्याध्ययन के लिये ले जाने को 'उपनयन' कहते है। शिखा और सूत्र भारतीय संस्कृति के दो सर्वमान्य प्रतीक हैं।यज्ञोपवीत सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर अपने जीवन में परिवर्तन के संकल्प का प्रतीक है। इसके साथ ही गायत्री मंत्र की गुरुदीक्षा भी दी जाती है। दीक्षा यज्ञोपवीत मिलकर द्विजत्व का संस्कार पूरा करते हैं। जिसका अर्थ है दूसरा जन्म **'जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते'।** जन्म से मनुष्य एक प्रकार का पशु ही है। उसमें स्वार्थपरता की वृति अन्य जीव-जंतुओं जैसी होती है, पर उत्कृष्ट आदर्शवादी मान्यताओं द्वारा वह मनुष्य बनता है। यज्ञोपवीत धारण कर बालक विशेष-विशेष व्रतों में उपनिबद्ध हो जाता है। द्विजों का जीवन व्रतमय होता है। जिसका प्रारंभ यज्ञोपवीत संस्कार से ही होता है। यज्ञोपवीत संस्कार से बालक दीर्घायु, बली और तेजस्वी होता है –**'यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे'।**संस्कारों में षोडश संस्कार मुख्य माने गये हैं, उनमे भी यज्ञोपवीत संस्कार की ही सर्वोपरि महत्ता है। यज्ञोपवीत संस्कार के बिना बालक किसी भी श्रौत –स्मार्त कर्म का अधिकारी नहीं होता। **'न ह्यस्मिन् युज्यते कर्म किञ्चिदामौञ्जिबन्धनात्'** ।यज्ञोपवीत संस्कार के बिना देवकार्य एवं पितृ कार्य नहीं किये जा सकते और श्रौत –स्मार्त –

कर्मों में तथा विवाह, संध्या, तर्पण आदि कर्मों में भी उसका अधिकार नहीं रहता। यज्ञोपवीत संस्कार में समंत्रक –संस्कारित यज्ञोपवीत धारण तथा गायत्री मंत्र का उपदेश ये दोनों प्रधान कर्म होते हैं। उपनयन का अधिकार केवल ब्राह्मण,क्षत्रिय, वैश्य, द्विजाति को होता है। बालक का प्रथम जन्म माता के गर्भ से होता है तथा द्वितीय जन्म मौंजीबन्धन उपनयन संस्कार द्वारा होता है तभी ब्राह्मण,क्षत्रिय, वैश्य, द्विज कहा जाता है।

याज्ञवल्क्यस्मृति में भी कहा गया है कि –

मातुर्यदग्रे जायन्ते द्वितीयं मौञ्जिबन्धनात्।
ब्राह्माणक्षत्रियविशस्तस्मादेते द्विजाः स्मृताः ।।
जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते।
विद्यया वापि विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रिय उच्यते ।।

इसलिये द्विजों का दो बार जन्म होता है और दो बार जन्म होने के पश्चात ही उन्हे द्विज की संज्ञा सार्थक होती है - **'द्विधा जन्म। जन्मना विद्यया च।'** मनुष्य जन्म तीन ऋणों को साथ लेकर लेता है, ऋषि ऋण, देव ऋण, पितृ ऋण इन तीन ऋणों से मुक्ति बिना यज्ञोपवीत संस्कार के सम्भव नहीं है। मनुष्य यज्ञोपवीत संस्कार के पश्चात ब्रह्मचर्य व्रत का विधिवत पालन करने से ऋषि ऋण से मुक्त होता है। पूजा-यज्ञ आदि देव पूजन करके देव ऋण से मुक्त होता है और गृहस्थ धर्म के पालन से सन्तानोंत्पत्ति से पितृ-ऋण से उऋण होता है। इसलिये संस्कारों में यज्ञोपवीत संस्कार का बहुत महत्त्व है। यज्ञोपवीत संस्कार के अनन्तर ब्रह्मचर्य,सदाचार,शौचाचार, भक्ष्याभक्ष्य आदि नियमों का सावधानी पूर्वक पालन करना चाहिये। यम-नियम-सयमपूर्वक रहना चाहिये। आचार्य पारस्कर के अनुसार ब्राह्मण बालक का यज्ञोपवीत संस्कार आठ वर्ष में, क्षत्रिय बालक का ग्यारह वर्ष में,वैश्य बालक का बारह वर्ष में यह संस्कार होने का मुख्य काल बताया गया है – **'अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयेद् गर्भाष्टमे वा। एकादशवर्षं राजन्यम्। द्वादशवर्षं वैश्यम्'**

मनुस्मृति के अनुसार –

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ।।

यदि किसी कारण वश यज्ञोपवीत संस्कार समय पर न हो सके तो गौणकाल में सम्पन्न करने का भी विधान है ब्राह्मण बालक का सोलह वर्ष, क्षत्रिय बालक का बाईस वर्ष, तथा वैश्य बालक का चौबीस वर्ष तक यज्ञोपवीत संस्कार हो जाना चाहिये।

आषोडशाद्वर्षाद् ब्राह्मणस्यानतीतः कालो भवति।
आद्वाविंशाद्राजन्यस्य आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य ।।
आषोडशाद ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते।
आद्वाविंशात् क्षत्रबन्धोराचतुर्विं शतेर्विंशः ।।

उपनयन के विहित मुख्य काल तथा गौण काल के व्यतीत हो जाने पर वह द्विज बालक **'पतितसावित्रीक' 'सावित्रीपतित' अथवा 'व्रात्य'** कहलाता है। और वह संस्कार न होने से पतित हो जाता है। साथ ही धर्म कर्मादि में उसका कोई अधिकार नहीं रहता। वह प्रायश्चित्ती हो जाता है। आचार्य पारस्कर जी ने कुल परम्परा का समादर करते हुए कहा है कि उपनयन संस्कार के लिये नियत मुख्य काल अथवा गौण काल वर्ष में बालक का उपनयन न हो सके तो अपने कुलाचारानुकूल उपनयन काल की सीमा के भीतर नवें ,दसवें ,ग्यारहवें ,बारहवें , तेहरवें ,

चौदहवें और पंद्रहवें वर्ष में भी उपनयन संस्कार किया जा सकता है– **'यथामङ्गलं वा सर्वेषाम्'**अर्थात द्विजातियों को शास्त्रविहित उपनयन काल के भीतर सुविधानुसार उपनयन संस्कार अवश्य सम्पन्न कर लेना चाहिये। मुहूर्तचिन्तामणी के अनुसार यज्ञोपवीत संस्कार का समय –

विप्राणां व्रतबन्धनं निगदितं गर्भाज्जनेर्वाष्टम
वर्षे वाप्यथ पञ्चमे क्षितिभुजां षष्ठे तथैकादशे।
वैश्यानां पुनरष्टमेऽप्यथ पुनः स्याद् द्वादशे वत्सरे
कालेऽथ द्विगुणे गते निगदिते गौणंतदाहुर्बुधाः ।।

अर्थात् - गर्भाधान समय से या जन्म समय से 5वें अथवा 8वें वर्ष में ब्राह्मण का, 6ठे या 11वें वर्ष में क्षत्रियों का, 8 वें या 12वें वर्ष में वैश्यों का यज्ञोपवीत संस्कार श्रेष्ठ माना गया है और उपरोक्त समय से दुगने वर्ष तक उपनयन मध्यम होता है। मुहूर्तचिन्तामणी के अनुसार यज्ञोपवीत संस्कार का व्रतबन्ध का मुहूर्त-

क्षिप्रध्रुवाहिचरमूलमृदुत्रिपूर्वा-
रौद्रेऽर्कविद्रुरुसितेन्दुदिने व्रतं सत्।
द्वित्रीषुरुद्ररविदिक्प्रमिते तिथौ च
कृष्णादिमत्रिलवकेऽपि न चापराह्णे ।।

अर्थात् - क्षिप्रसंज्ञक,ध्रुवसंज्ञक, आश्लेषा , चरसंज्ञक, मूल, मृदुसंज्ञक, तीनों पूर्वा और आद्रा इन नक्षत्रों में, रवि , बुध , गुरु ,शुक्र , सोम , इन वारों में, द्वितीय,तृतीया , पंचमी, एकादशी, द्वादशी , दशमी इन तिथियों में, शुक्ल पक्ष तथा कृष्ण पक्ष की पंचमी तक दोपहर के पहले उपनयन करना शुभ है।

कवीज्यचन्द्रलग्नपा रिपौ मृतौ व्रतेऽधमाः।
व्ययेऽब्जभार्गवौ तथा तनौ मृतौ सुते खलाः ।।

अर्थात्- शुक्र,गुरु,चंद्र और लग्नेश ये छठे और आठवें स्थान में हों तो उपनयन संस्कार अशुभ है। 12 वें में चंद्र और शुक्र हो तथा लग्न में, आठवें में और पांचवें स्थान में पाप ग्रह हो तो अशुभ है।

व्रतबन्धेऽष्टषडरिः फ़वर्जिताः शोभनाः शुभाः।
त्रिषडाये खलाः पूर्णो गोकर्कस्थो विधुस्तनौ ।।

अर्थात्- व्रतबन्ध में (उपनयन में), लग्न से 6/8/12 इनसे भिन्न स्थान में शुभ ग्रह हों 3/6/11 इनमें पाप ग्रह हो और पूर्ण चंद्रमा वृष कर्क राशि होकर लग्न में हो तो उपनयन में शुभ है। यज्ञोपवीत सदैव धारण करना चाहिये और शिखा में ओंकार रुपिणी ग्रन्थि बाँधे रखनी चाहिये। शिखा सूत्र विहीन होकर जो कुछ भी धर्म कर्म किया जाता है, वह सब निष्फल हो जाता है। इसलिये द्विजातियों को यज्ञोपवीत सदैव धारण करना चाहिये।

सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च।
विशिखो व्युपवीतश्च यत् करोति न तत्कृतम् ।।(कात्यायन स्मृति 1/4)

यज्ञोपवीत की उत्पत्ति एवं यज्ञोपवीत धारण कारने की परम्परा अनादि काल से है। जब से मानव सृष्टि हुई तब से यज्ञोपवीत का सम्बन्ध है। जब सृष्टि हुई उस समय ब्रह्मा जी स्वयं यज्ञोपवीत धारण किये हुये थे। यही कारण है कि जब यज्ञोपवीत धारण किया जाता है तो निम्न मंत्र पढ़ा जाता है।

ॐ यज्ञोपवितं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्रयं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ।।
ॐ यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ।

अर्थात् ब्रह्मा के द्वारा आदि काल में धारण किये गये, आयुष्यको प्रदान करने वाला, सर्वश्रेष्ठ, अत्यंत शुद्ध यज्ञोपवीत को मैं धारण करता हूँ । यह मुझे तेज और बल प्रदान करे । ब्रह्मसूत्र ही यज्ञोपवीत है, मैं ऐसे यज्ञोपवीत को धारण करता हूँ । भगवान श्रीराम , भगवान श्रीकृष्ण के यज्ञोपवीत संस्कार का भी वर्णन है ।

यज्ञोपवीत धारण करने के कुछ नियम भी है जैसे कि – यदि यज्ञोपवीत बाँये कंधे से खिसककर बाँये हाथ के नीचे आ जाय अथवा उससे निकलकर कमर के नीचे आ जाये या वस्त्रादि निकालते समय शरीर से अलग हो जाये अथवा टूट जाय तो नवीन प्रतिष्ठित यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये - **'वामहस्ते व्यतीते तु तत् त्यक्त्वा धारयेत् नवम् ।'**

यदि कभी मल-मूत्र का त्याग करते समय कान मे लपेटना भूल जायें या कान में लिपटा सूत्र कान से सरककर अलग हो जाये तो नवीन यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये ।

मलमूत्रे त्यजेद् विप्रो विस्मृत्यैवोपवीतधृक् ।
उपवीतं तदुत्सृज्य धार्यमन्यन्नवं तदा ।। (आचारेन्दु)

उपाकर्म, जननाशौच, मरणाशौच, श्राद्धकर्म, सूर्य एवं चंद्रग्रहण के समय, अस्पृश्य से स्पर्श हो जाने तथा श्रावणी में यज्ञोपवीत को बदल लेना चाहिये ।

सूतके मृतके क्षौरे चाण्डालस्पर्शने तथा ।
रजस्वलाशवस्पर्शे धार्यमन्यन्नवं तदा ।।(नारायणसंग्रह)
उपकर्मणि चोत्सर्गे सूतकद्वितये तथा ।
श्राद्धकर्मणि यज्ञादौ शशिसूर्यग्रहेऽपि च ।।
नवयज्ञोपवितानि धृत्वा जीर्णानि च त्यजेत् ।।(ज्योतिषार्णव)

शरीर के मलादि से यज्ञोपवीत दूषित और जीर्ण हो जाये तब भी नवीन यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये । यज्ञोपवीत संस्कार में वटु को स्नानादि कराकर अलंकृत कर आचार्य के पास ले आयें । आचार्य मंत्र पूर्वक कटिसूत्र और कौपीन धारण कराते हैं, मेखला बांधते हैं और वटु को गायत्री मंत्र पूर्वक शिखा बंधन कराते हैं, साथ ही मंत्र पूर्वक यज्ञोपवीत भी धारण करते हैं । इसके पश्चात वटु को मृगचर्म और बिना मंत्र के दण्ड धारण करवाया जाता है । आचार्य वटु की अंजली में जल देते हैं और वटु सूर्य अर्घ्य प्रदान करता है । आचार्य वटु (माणवक) की रक्षा के लिये मंत्र पूर्वक उसे प्रजापति आदि देवताओं का संरक्षण प्रदान करते हैं । तदननन्तर वटु को अग्नि की प्रदक्षिणा करके आचार्य की उत्तरी ओर बैठाते हैं, आचार्य हवन का कार्य सम्पन्न करते हैं । ब्रह्मचर्य एवं आचार की शिक्षा प्रदान करते हैं । पश्चात आचार्य वटु के दक्षिण कर्ण में गायत्री मंत्र का उपदेश करते हैं ।**'ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात्'**गायत्री मन्त्र के उपदेश के पश्चात माणवक आचार्य को दक्षिणा प्रदान कर उन्हें प्रणाम करता है । तदनन्तर ब्रह्मचारी बटुक नये पीत वस्त्र को झोली की तरह गले में डालकर दण्ड ग्रहण कर भिक्षा मांगने प्रस्थान करता है ।

सर्वप्रथम ब्रह्मचारी माता से कहता है –**'भवति भिक्षां देहि मातः'**यह कहकर माता से भिक्षा माँगनी चाहिये। क्षत्रिय ब्रह्मचारी **'भिक्षां भवति देहि मातः'** यह कहे , और वैश्य ब्रह्मचारी **'देहि भिक्षां भवति मातः'** यह कहे। पुरुषों से कहे **'भवन् भिक्षां देहि'**यह कहे ।और

ब्रह्मचारी**'स्वस्ति'** ऐसा कहकर भिक्षा ग्रहण करें ।इस कर्म के पश्चात माणवक ग्रहण की हुई भिक्षा आचार्य को निवेदित करे । तदनंतर आचार्य को दक्षिणा प्रदान कर ब्राहमण भोजन का संकल्प कर अग्नि को वसर्जित करना चाहिये ।

अभ्यास प्रश्न 3

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिये ।

1.आचार्य पारस्कर के अनुसार ब्राह्मण बालक का यज्ञोपवीत संस्कार करना चाहिये ।

(क) पांचवें वर्ष में

(ख) दूसरे वर्ष में

(ग) तीसरे वर्ष में

(घ) आठ वर्ष में

2. यज्ञोपवीत की उत्पत्ति एवं यज्ञोपवीत धारण करने की परम्पराकब से है ?

(क) 5000 साल से

(ख) मध्यकाल से

(ग) अनादि काल से

(घ) उपर्युक्त तीनों गलत

3. ब्राहमण बालकभिक्षा मांगते समय सर्वप्रथम माता से कहता है ।

(क) भवति भिक्षां देहि मातः

(ख) भिक्षां भवति देहि मातः

(ग) देहि भिक्षां भवति मातः

(घ) इनमे से कोई नहीं

4. क्षत्रीय बालक भिक्षा मांगते समय माता से कहता है ।

(क) भवति भिक्षां देहि मातः

(ख) भिक्षां भवति देहि मातः

(ग) देहि भिक्षां भवति मातः

(घ) इनमे से कोई नहीं

(2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. क्षत्रिय बालक का उपनयन संस्कार----------वर्ष में करवाना चाहिये ।

2. जिस संस्कार के द्वारा बालक आचार्य के पास जाकर वेद आदि शस्त्रों का अध्ययन करता है, वह ----------संस्कार कहलाता है ।

3. वैश्य ब्रह्मचारी माता से कहता है ---------- ।

4. जब सृष्टि हुई उस समय ब्रह्मा जी स्वयं ---------- धारण किये हुये थे ।

(3) सही गलत का चयन कीजिए ।

1 यज्ञोपवीत या उपनयन संस्कार 'उपनयन' शब्द 'उप' उपसर्ग पूर्वक 'नी' धातु से 'ल्युं'प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है । ( )

2 आचार्य पारस्कर के अनुसार ब्राह्मण बालक का यज्ञोपवीत संस्कार आठ वर्ष में करना चाहिये । ( )

3 एकादशी , द्वादशी , दशमी इन तिथियों में, शुक्ल पक्ष तथा कृष्ण पक्ष की पंचमी तक दोपहर के पहले उपनयन करना अशुभ है । ( )

4 बटु ब्रह्मचारी काली रंग की झोली रखता है। ( )

4.6 वेदारम्भ संस्कार की विधि एवं महत्त्व

यज्ञोपवीत संस्कार के उपरांत वेदारम्भ संस्कार का विधान है । इस संस्कार के द्वारा आचार्य ब्रह्मचारी को अपनी वेद शाखा का ज्ञान और मंत्रोपदेश कराते हैं । वेदों का सार गायत्री है । गायत्री को वेद माता कहा जाता है । वेद बीज और वेदमूल भी कहा जाता है । वेद भगवान का पूजन किया जाता है ।

उपनीयः गुरुः शिष्यं महाव्याहृतिपूर्वकम् ।
वेदमध्यापयेदेनं शौचाचाराँश्च शिक्षयेत् ।।

अर्थात्- आचार्य बालक का उपनयन संस्कार करके उसे महाव्याहृतियों के साथ वेद का अध्ययन कराये और साथ ही ब्रह्मचारी को शौचाचार की शिक्षा प्रदान करें ।उपनयन संस्कार के पश्चात आचार्य वेदारम्भ वेदी के समीप आकर ब्रह्मचारी को भी अपने दाहिने ओर एक शुद्ध आसन पर बैठाये इसके बाद आचमन , प्रणायम आदि करके गणेश आदि देवताओं को पूजन करें ।वेदारम्भ संस्कार में सर्वप्रथम प्रारम्भ में वेद आरंभ वेदी में पंच-भू संस्कार पूर्वक अग्नि स्थापना एवं हवन कर्म होता है । हवन इत्यादि के पश्चात अक्षत छोड़ते हुए समुद्भव नामक अग्नि की पूजा कर विसर्जन करें ।इस कर्म के पश्चात ब्रह्मचारी वटुक प्रथम गणेश आदि पूजन करे तदनंतर वाग्देवी सरस्वती का पूजन करे , गुरु का पूजन कर उन्हे प्रणाम करे । इसके पश्चात वेद माता गायत्री का पाठ कर अपने वेद की शिक्षा आचार्य से प्राप्त करे इसके पश्चात अन्य वेदों की भी शिक्षा प्राप्त करे । महर्षि वसिष्ठ के अनुसार ब्रह्मचारी सर्वप्रथम अपनी वेद शाखा का सांगोपांग अध्ययन करने के पश्चात ही अन्य दूसरी शाखाओं का अध्ययन करे -**'अधीत्य शाखामात्मीयां परशाखां ततः पठेत्'**

4.7 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों !

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान चुके हैं कि विद्यारंभ-कर्णवेध-यज्ञोपवीत-वेदारम्भ संस्कार की विधि एवं महत्त्व । जैसा कि आपने विद्यारम्भ संस्कार में जाना कि अभिभावक का परम पुनीत धर्म कर्त्तव्य है कि वह संतान को जन्म देने के साथ- साथ भोजन,वस्त्र आदि की शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति होने पर संतान की शिक्षा-दीक्षा का प्रबंध भी करें । विद्यारंभ संस्कार मानव जीवन का अत्यंत महत्त्वपूर्ण संस्कार है । विद्यारंभ संस्कार में गुरुद्वारा श्रीभगवान के स्मरण पूर्वक बालक को लिखना,पढ़ना, प्रारम्भ कराया जाता है ।कर्णवेध संस्कार में विधि पूर्वक बालक एवं बालिका के दाहिने एवं बायें कान का छेदन किया जाता है । । बालक के जन्म से तीसरे या पांचवें वर्ष में कर्णवेध संस्कार करना चाहिये । दीर्घ आयु और श्री की वृद्धि के लिये कर्णवेध संस्कार किया जाता है ।यज्ञोपवीत या उपनयन संस्कार 'उपनयन' शब्द 'उप' उपसर्ग पूर्वक 'नी' धातु से 'ल्युं'प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है । उप अर्थात आचार्य के पास नयन अर्थात बालक को विद्याध्ययन के लिये ले जाने को 'उपनयन' कहते है । । यज्ञोपवीत संस्कार के अनन्तर ब्रह्मचर्य,सदाचार,शौचाचार, भक्ष्याभक्ष्य आदि नियमों का सावधानी पूर्वक पालन करना चाहिये । यम-नियम-सयमपूर्वक रहना चाहिये । आचार्य पारस्कर के अनुसार ब्राह्मण बालक का यज्ञोपवीत संस्कार आठ वर्ष में, क्षत्रिय बालक का

ग्यारह वर्ष में,वैश्य बालक का बारह वर्ष में यह संस्कार होने का मुख्य काल बताया गया है – **'अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयेद् गर्भाष्टमे वा। एकादशवर्षं राजन्यम्। द्वादशवर्षं वैश्यम्'**

यज्ञोपवीत संस्कार के उपरांत वेदारम्भ संस्कार का विधान है। इस संस्कार के द्वारा आचार्य ब्रह्मचारी को अपनी वेद शाखा का ज्ञान और मंत्रोपदेश कराते हैं। ब्रह्मचारी वटुक प्रथम गणेश आदि पूजन करे तदनंतर वाग्देवी सरस्वती का पूजन करता हु , गुरु का पूजन कर उन्हे प्रणाम करते हैं । इसके पश्चात वेद माता गायत्री का पाठ कर अपने वेदकी शिक्षा आचार्य से प्राप्त करते हैं, इसके पश्चात अन्य वेदों की भी शिक्षा प्राप्त किया करते हैं।

4.8 पारिभाषिक शब्दावली

- भक्ष्याभक्ष्य - क्या भक्षण करना चाहिये और क्या नहीं
- वटुक - छोटी उम्र का बालक
- मंत्रोपदेश - मंत्र का उपदेश
- वाग्देवी – शिक्षा की देवी , सरस्वती
- दीक्षा – गुरु के पास रहकर सीखी गई शिक्षा का समापन
- शौचाचार- स्नान आदि शुद्धि और सदाचार
- अन्य - दूसरा
- अनंतर – बाद
- श्री – लक्ष्मी

अभ्यास प्रश्न 4

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिये।

1. यज्ञोपवीत संस्कार के उपरांत कौनसा संस्कार का विधान है।

(क)कर्णभेद

(ख)विवाह

(ग)उपनयन

(घ) वेदारम्भ

2. वेदारम्भ संस्कार में आचार्य ब्रह्मचारी को क्या अध्ययन कराते हैं ?

(क) तंत्र अध्ययन

(ख) कथाअध्ययन

(ग) अपनी वेदशाखा का अध्ययन

(घ) दूसरों की वेदशाखा का अध्ययन

3. वेद माता कौन हैं ?

(क) अदिति

(ख) दिति

(ग) मैत्री

(घ) गायत्री

4. वेदों का सार कहा जाता है।

(क)गायत्री को

(ख)ऋचा को

(ग)मंत्र को

(घ) इनमे के कोई नहीं

(2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1 आचार्य ब्रह्मचारी को अपनी वेद शाखा का ज्ञान और ---------- कराते हैं।

2 महर्षि वसिष्ठ के अनुसार ब्रह्मचारी सर्वप्रथम----------का सांगोपांग अध्ययन करे।

3 ब्रह्मचारी बटु सर्वप्रथम ---------- का पूजन करे।

4 आचार्य ब्रह्मचारी को ---------- की शिक्षा भी प्रदान करें।

(3) सही गलत का चयन कीजिए ।

1. आचार्य बालक का उपनयन संस्कार करके उसे महाव्याहृतियों के साथ वेद का अध्ययन कराते हैं। ( )

2. महर्षि वसिष्ठ के अनुसार ब्रह्मचारी सर्वप्रथम अपनी वेद शाखा का सांगोपांग अध्ययन करने के पश्चात ही अन्य दूसरी शाखाओं का अध्ययन करे। ( )

3. वेद माता अदिति को कहा जाता है। ( )

4. वेदारम्भ संस्कार की आयु 18 वर्ष है। ( )

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1 – 1 घ, 2 क, 3 ख, 4 घ

2 – 1 पाँचवें, 2 अक्षर परमात्मा, 3 द्वादश, 4 लिखना-पढ़ना

3 – 1 गलत, 2 सही, 3 सही, 4 गलत

अभ्यास प्रश्न 2

1 – 1 ग, 2 क, 3 क, 4 घ

2 – 1 तीसरे या पाँचवें, 2 बालरिष्ट, 3 दाँय, 4 अमंत्रक

3 – 1 सही, 2 सही, 3 गलत, 4 सही

अभ्यास प्रश्न 3

1 – 1 घ, 2 ग, 3 क, 4 ख

2 – 1 ग्यारहवें, 2 उपनयन, 3 देहि भिक्षां भवति मातः, 4 यज्ञोपवीत

3 – 1 सही, 2 सही, 3 गलत, 4 गलत

अभ्यास प्रश्न 4

1 – 1घ, 2 ग, 3 घ, 4 क

2 – 1 मंत्रोपदेश, 2 अपनी वेदशाखा, 3 गणेश, 4 शौचाचार

3 – 1 सही, 2 सही, 3 गलत, 4 गलत

4.10 संदर्भ सूची ग्रंथ

1. संस्कारप्रकाश गीतप्रेस, गोरखपुर

2. संस्कार प्रकाश – डॉ मंडन मिश्र प्रधान सम्पादक, लेखक भवानीशंकर त्रिवेदी

3. यज्ञवल्क्यस्मृतिः - डॉ गङ्गासागर राय

4. मनुस्मृति – शिवराज आचार्य:कौण्डिन्न्यानः

5. मुहूर्तचिन्तामणि – ज्योतिषाचार्य पं उमाशंकर शुक्ल

4.11अन्य सहायक पुस्तकें

1. कर्मकाण्ड भास्कर- श्रीराम आचार्य

2. बृहदकर्मकाण्ड

4.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. यज्ञोपवीत संस्कार का विस्तार से वर्णन किजिये।

2. विद्यारंभ संस्कार की विधि एवं महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

3. कर्णवेध संस्कार का वर्णन किजिये।

इकाई 5 : केशान्त-समावर्तन-विवाह-अन्त्येष्टि संस्कार विधि एवं महत्त्व

इकाई की रूपरेखा
5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 केशान्त संस्कार की विधि एवं महत्त्व
5.4 समावर्तन संस्कार की विधि एवं महत्त्व
5.5 विवाह संस्कार की विधि एवं महत्त्व
5.6 अन्त्येष्टि संस्कार की विधि एवं महत्त्व
5.7 सारांश
5.8 पारिभाषिक शब्दावली
5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.10 संदर्भ सूची ग्रंथ
5.11अन्य सहायक पुस्तकें
5.12 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में आप केशान्त-समावर्तन-विवाह-अन्त्येष्टि संस्कार की विधि एवं महत्त्व के बारे में अध्ययन करेंगे। केशान्त संस्कार समावर्तन संस्कार से पूर्व किया जाता है। विद्यार्थी विद्याध्ययन के लिए गुरुकुल या गुरु के आश्रम में जाते हैं। वहाँ वे ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं साथ ही विद्याध्ययन पूर्ण होने तक विद्यार्थी केश नहीं कटवाता ब्रह्मचर्याश्रम में रहते हुए 25 वर्ष की आयु तक बाल कटवाना निषिद्ध है। किन्तु समावर्तन से पूर्व ब्रह्मचारी को दाढ़ी, मूछ आदि कटवा लेने का विधान किया गया है ।समावर्तन संस्कार शिक्षा प्राप्ति का दीक्षांत संस्कार है। ब्रह्मचारी बालक उपनयन संस्कार के पश्चात गुरुकुल में विद्याध्ययन हेतु निवास करता है। गुरुकुल में बालक वेदादि शास्त्रों की शिक्षा आचार्य से प्राप्त करता है। समावर्तन संस्कार के द्वारा बालक की शिक्षा पूर्ण होती है ।समावर्तन संस्कार के पश्चात विवाह संस्कार होता है। विवाह संस्कार के बाद ही ब्रह्मचर्य आश्रम की पूर्णता होती है ।विवाह संस्कार से श्रौत, स्मार्तनुष्ठान, कर्मों की अधिकारसिद्धि और धर्माचरण की योग्यता प्राप्त होती है। विवाह संस्कार में वर और कन्या दोनों के संस्कार का विधान है। विवाह दो आत्माओं का पवित्र बन्धन है। अन्त में शरीर पूरा होने के पश्चात अन्त्येष्टि संस्कार किया जाता है। जीवन यापन करने का सही तरीका यह है कि जीवन को यज्ञीय आदर्शों के अनुरूप यापन किया जाए और जीवन की समाप्ति भी यज्ञ आयोजन में ही होनी चाहिये। अन्त्येष्टि शब्द दो पदों के योग से बना है, अन्त्य और इष्टिका ।अन्त्य का अर्थ है अंतिम तथा इष्टिका का अर्थ है यज्ञ अर्थात मृत्यु के अनंतर जीव की सद्गति हेतु किया जाने वाला संस्कार अन्त्येष्टि संस्कार कहलाता है।

5.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों ! इस इकाई में आप—

- केशान्त संस्कार की विधि एवं महत्त्व के बारे में जानेंगे।
- समावर्तन संस्कार की विधि एवं महत्त्व के बारे में जानेंगे।
- विवाह संस्कार की विधि एवं महत्त्व के बारे में जानेंगे।
- अंत्येष्ठी संस्कार की विधि एवं महत्त्व के बारे में जानेंगे।

5.3 केशान्त संस्कार की विधि एवं महत्त्व

केशान्त संस्कार समावर्तन संस्कार से पूर्व किया जाता है। विद्यार्थी विद्याध्ययन के लिए गुरुकुल या गुरु के आश्रम में जाते हैं। वहाँ वे ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं साथ ही विद्याध्ययन पूर्ण होने तक विद्यार्थी केश नहीं कटवाता ब्रह्मचर्याश्रम में रहते हुए 25 वर्ष की आयु तक बाल कटवाना निषिद्ध है। किन्तु समावर्तन से पूर्व ब्रह्मचारी को दाढ़ी, मूछ आदि कटवा लेने का विधान किया गया है। समावर्तन से पूर्व की जाने वाली इसी 'केशच्छेदन' विधि को केशान्तसंस्कार कहा गया है। इस संस्कार में भी यज्ञ-पूजन के पश्चात केशच्छेदन की विधि ही मुख्य है। ब्रह्मचारी न होने पर नियम से सत्रहवें आदि वर्ष में ही केशान्त संस्कार करना चाहिये। जटिल ब्रह्मचारियों का शिखा को छोड़करसिर के तथा दाढ़ी, मूंछ और बगलों के सब केशों का छेदन केशान्त कहा जाता है। केशान्त संस्कार उत्तरायण शुक्ल पक्ष में तथा ज्योतिष शास्त्र में चूड़ाकर्म के लिए बताए तिथि नक्षत्रादि में शुभमुहूर्त में करना चाहिये ।आचार्य या पिता यज्ञशाला के बाहर पत्नी सहित सुभासन पर बैठ पत्नी से दक्षिण में ब्रह्मचारी को बैठा के

आचमन, प्रणायाम, कर केशान्त संस्कार का संकल्प करे । पश्चात गणपति पूजनादि करके पुण्यावाचन आदि करे। उसके पश्चात शुद्ध भूमि में स्थाण्डिल वेदिका बना के विधि पूर्वक हवन करें। चूड़ाकरण की भांति सब विधि सम्पन्न कर घृतादि मिले शीत और उष्ण जल से केशों को भिगोकर नाई शिखा को छोड़कर शेष सब बाल, दाढ़ी, मूंछ को बनाये । तब ब्रह्मचारी स्वयं स्नान कर आचार्य को गौ दान करें । इसके पश्चात ब्रह्मचारी तीन दिन तक ब्रह्मचर्य रहे और केशच्छेदन न करावे। यह संस्कार कब करवाना चाहिये ? मनुस्मृति के अनुसार- ब्राह्मण बालक का केशांत संस्कार (मुंडनसंस्कारविशेष) सोलहवें वर्ष में किया जाता है, क्षत्रिय का बाइसवें वर्ष में किया जाता हैऔर वैश्य का उस में से दो वर्ष ज्यादा (चौबीसवें) वर्ष में केशांत संस्कार किया जाता है।

केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते।

राजन्यबन्धोर् द्वाविंशे वैश्यस्य द्वयधिके ततः ।।

मुहूर्तचिन्तामणी के अनुसार - केशांत संस्कार सोलहवें वर्ष में और मुंडन में कहे हुए समय में केशांत कर्म करना चाहिये। तथा उपनयन में कहे हुये समय में समावर्तन कर्म करना चाहिये।

केशान्तं षोडशे वर्षे चौलोक्तदिवसे शुभम्।

व्रतोक्तदिवसादौ हि समावर्त्तनमिष्यते ।।

अभ्यास प्रश्न 1

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिये।

1. केशान्त संस्कार समावर्तन संस्कार से।

(क) पूर्व किया जाता है

(ख) बाद में किया जाता है

(ग) नहीं किया जाता है

(घ) इनमे से कोई नहीं

2. मुहूर्तचिंतामणी के अनुसार केशान्त संस्कार कब करना चाहिये ?

(क) दश वर्ष में

(ख) सोलहवें वर्ष में

(ग) बीसवर्ष में

(घ) इनमे से कोई नहीं

3. मनुस्मृति के अनुसार क्षत्रिय को केशान्त संस्कार कब कराने चाहिये ?

(क) दश वर्ष में

(ख) सोलहवें वर्ष में

(ग) बीसवर्ष में

(घ) बाईस वर्ष में

4. मनुस्मृति के अनुसार वैश्य को केशान्त संस्कार कब कराने चाहिये ?

(क) दश वर्ष में

(ख) सोलहवें वर्ष में

(ग) चौबीसवें वर्ष में

(घ) बाईस वर्ष में

(2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए ।

1. क्षत्रिय बालक का केशांत संस्कार ---------- वर्ष में किया जाता है।

2. केशान्त संस्कार उत्तरायण---------- में तथा ज्योतिष शास्त्र में चूड़ाकर्म के लिए बताए तिथि नक्षत्रादि में शुभमुहूर्त में करना चाहिये।

3. ब्राह्मण बालक का केशांत संस्कार ---------- वर्ष में किया जाता है।

4. केशान्त संस्कार के पश्चात ब्रह्मचारी तीन दिन तक ---------- रहे और केशच्छेदन न करावे।

(3) सही गलत का चयन कीजिए।

1. ब्रह्मचर्याश्रम में रहते हुए 25 वर्ष की आयु तक बाल कटवाना निषिद्ध है। ( )

2. ब्रह्मचारी न होने पर नियम से सत्रहवें आदि वर्ष में ही केशान्त संस्कार करना चाहिये। ( )

3. केशान्त संस्कार में आचार्य को गोदान नहीं करना चाहिये। ( )

4. जटिल ब्रह्मचारियों का शिखा को छोड़करसिर के तथा दाढ़ी, मूंछ और बगलों के सब केशों का छेदन केशान्त कहा जाता है। ( )

5.4 समावर्तन संस्कार की विधि एवं महत्त्व

समावर्तन संस्कार का अर्थ है – **'सम्यक् आवर्तनम्'** गुरुकुल से शिक्षा ग्रहण कर अपने घर वापस आगमन। यह शिक्षा प्राप्ति का दीक्षांत संस्कार है। ब्रह्मचारी बालक उपनयन संस्कार के पश्चात गुरुकुल में विद्याध्यायन हेतु निवास करता है। गुरुकुल में बालक वेदादि शास्त्रों की शिक्षा आचार्य से प्राप्त करता है। समावर्तन संस्कार के द्वारा बालक की शिक्षा पूर्ण होती है। इस संस्कार में गुरु की आज्ञा से मंत्राभिषेक पूर्वक स्नात होता है। आचार्य पारस्कर ने कहा है कि वेदाध्ययन के समाप्त हो जाने पर या ब्रह्मचर्य काल की समाप्ति पर शिष्य अपने गुरु याआचार्य से अनुज्ञा लेकर ब्रह्मचारी स्नान करे। समावर्तन संस्कार विवाह से पूर्व किया जाना चाहिये। इस संस्कार में ब्रह्मचारी गुरु जी से प्रार्थना करे कि अब मैं स्नातक बनने के लिए शास्त्रीय विधि से स्नान करूंगा। आचार्य शिष्य को स्नान की आज्ञा प्रदान करें।

भो गुरो अहं स्नास्यामि, इति सम्प्रार्थ्य।

स्नाहि इति लब्धानुज्ञः वक्ष्यमाणविधिना स्नायात्॥

ब्रह्मचर्य के चिन्ह मेखला आदि का ब्रह्मचारी त्याग करता है। और गार्हस्थ्य उपयुक्त चंदन, पुष्पमाला, पगड़ी, वस्त्राभूषण, अलंकार आदि को धारण करवाया जाता है।इस संस्कर के पश्चात ब्रह्मचारी के लिये जिन कर्मों का निषेध रहता है उन कर्मों को कर सकता है। जैसेदर्पण देखना, सुरमा लगाना, जूता पहनना, आदि। ये सारे कर्म आचार्य की देख रेख में समंत्रक होते हैं।सर्वप्रथम आचार्य समावर्तन संस्कार की यज्ञवेदी के पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठकर दायीं और ब्रह्मचारी को उत्तराभिमुख बैठाकर स्वस्तिवाचन एवं गणेशादि की पूजा करने के पश्चात कुश-कण्डिका एवं पात्रासादनादि कार्य सम्पन्न कर संकल्प करे। पश्चात विधि पूर्वक आचार्य हवन करे। तथा ब्रह्मचारी पाँच घृताक्त समिधाओं को मंत्र-पूर्वक यज्ञाग्नि में डालें और उसके पश्चात तीन समिधाओं का आधान कर अंग प्रतपन और त्रायायुषीकरण आदि सम्पूर्ण विधि सम्पन्न करें।पश्चात आचार्य को गुरु दक्षिणा प्रदान कर शिष्य अपने घर में आता है। और संतान परंपरा की रक्षा के लिये स्नातक गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे। इस संदर्भ में महर्षि याज्ञवल्क्य जी ने भी निर्देश किया है –

वेदं व्रतानि वा पारं नीत्वा ह्युभयमेव वा।

आविप्लुतब्रह्मचर्यो लक्ष्ण्यां स्त्रियमुद्वहेत्॥

अर्थात्- समग्र अथवा एक या दो वेद का अध्ययन कर अस्खलित ब्रह्मचारी सुलक्षणा स्त्री से विवाह करे। वेद विद्या प्राप्त यह स्नातक विद्याव्रतस्नातक कहलाता है ।समावर्तन संस्कार के अनन्तरगृहस्थधर्म में प्रवेश करके कैसे रहना चाहिये। इसका उपदेश गुरु या आचार्य द्वारा दिया जाता है। जो दीक्षांत उपदेश कहलाता है। इन उपदेशों से स्नातक से गृहस्थ हुए व्यक्ति का जीवन पूर्ण सदाचारमय, भगवतभक्तिमय तथा आनंदमय हो जाता है। वह उपदेश है –

सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्य्म्। भूत्यै न प्रमदितव्यम् स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्।

अर्थात् – सदा सत्य भाषण करना। विपत्ति के समय भी झूठ का आश्रय कदापि न लेना , अपने वर्णाश्रम के अनुकूल शास्त्र सम्मत धर्म का अनुष्ठान करना। स्वाध्याय से वेदों के अभ्यास से, संध्या वंदन, गायत्री जप और भगवन्न नाम गुणकीर्तन नित्य कर्म में कभी भी प्रमाद न करना, और न तो आलस्यवश उनका त्याग करना। गुरु के लिए दक्षिणा के रूप में उनकी रुचि के अनुरूप धन लाकर प्रेम पूर्वक देना। पश्चात उनकी आज्ञा से गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करके स्वधर्म का पालन करते हुए संतान परम्परा को सुरक्षित रखना। उसका लोप न करना। अनासक्ति पूर्वक संतानोत्पत्ति कार्य करना। सत्य से कभी मत चूकना। व्यर्थ की बातों वाणी की शक्ति को न तो नष्ट करना चाहिये और न परिहास के बहाने कभी झूठ बोलना चाहिये। कोई बहाना बनाकर या आलस्यवश कभी धर्म की अवहेलना नहीं करनी चाहिये। लौकिक एवं शास्त्रीय कर्तव्य रूप से प्राप्त शुभ कर्म का अभी त्याग एवं उनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये।

धन-संपत्ति को बढ़ाने वाले लौकिक उन्नतिके साधनों के प्रति भी उदासीन नहीं होना चाहिये। पढ़ने-पढ़ाने का जो मुख्य नियम है। उसकी अवहेलना या आलस्यवश त्याग नहीं करना चाहिये। ठीक इसी प्रकार आग्निहोत्र और याज्ञादि के अनुष्ठानरूप देवकार्य तथा श्राद्ध-तर्पण आदि पितृकार्य के सम्पादन में भी आलस्य या अवहेलनापूर्वक प्रमाद नहीं करना चाहिये।

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। यान्यस्माक सुचरितानि। तानि त्व्योपास्यानि। नो इतराणि। ये के चास्मच्छेया सो ब्रह्मणाः। तेषां त्वयाSSसनेने प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयादेयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्।

माता में सर्वदा देव बुद्धि रखनी चाहिये, पिता में देव बुद्धि रखनी चाहिये, आचार्य में देव बुद्धि रखनी चाहिये, और अतिथि में भी देव बुद्धि रखनी चाहिये, इन चारों को सदैव ईश्वर की प्रतिमूर्ति समझकर श्रद्धा और भक्ति पूर्वक सदा अपने विनयपूर्ण व्यवहार से प्रसन्न रखना। संसार में जो निर्दोष कर्म हैं उन्ही का सदैव सेवन करना। जो निषिद्ध कर्म हैं उनका कभी भी भूलकर स्वप्न में भी आचरण नहीं करना चाहिए। गुरुजनों के उत्तम आचरण का अनुकरण करें। जिन के विषय में या आचरण में संदेह हो उनका आचरण का अनुकरण कभी भी न करें। अपनी शक्ति के अनुसार दान करने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिये। जो भी दान करें श्रद्धा पूर्वक दान करें। अश्रद्धा पूर्वक कुछ भी दान न करें। यह विचार करके दान करें की जो कुछ मेरे पास पर्याप्त है वह सब भगवान का है। अतः दान करके प्राणियों के हृदय में विराज मान भगवान की सेवा ही मेरे द्वारा की जा रही है। और जो कुछ भी दान कर रहा हूँ, वह भी बहुत काम है। कभी भी मन में

दानी पन का अभिमान नहीं आने देना चाहिये । निष्काम भाव से कर्तव्य समझकर दान करना चाहिये।

स्नातक आचार्य के मुख से गृहस्थ जीवन के लिए पालनीय नियमों को श्रद्धापूर्वक सुने **'स्नातकस्य यमान् वक्ष्यामः'**स्नातक के नियम कुछ इस प्रकार से है।

1. नाचने, गाने तथा बजाने का काम न स्वयं करे और न ही दूसरों द्वारा अनुष्ठित ऐसे कार्यों में भाग ले।
2. यदि सब कुछ ठीक हो तो रात्री में दूसरे गाँव में न जाय और न अनावश्यक दौड़े।
3. कुएँ में न झाँके, पेड़ पर न चढ़े, कच्चे फल तोड़कर न गिराये, संधि-वेलामें यात्रा न करें ।और जीर्णद्वार से गमन न करे तथा परस्पर मैत्री में भेद उपस्थित न करे, नग्न होकर स्नान न करे, ऊबड़ – खाबड़ भूमि को न लांघे, लज्जानक, अमंगलकर तथा निष्ठुर वाक्यों को न बोले, संधिवेला में सूर्यदर्शन न करे, समावर्तन संस्कार के बाद भिक्षाटन न करे।
4. जल में अपनी परछाई न देखे।
5. अपने बछड़े को दूध पिलाती हुई गाय के बारे में दूसरे से न कहे।
6. उर्वर भूमि या बंजर भूमि पर खड़े होकर या कूद-कूदकर मल-मूत्र का त्याग न करें।
7. अपवित्र एवं निषिद्ध वस्त्र न पहने।
8. निष्ठापूर्वक अपने व्रत नियम का पालन करे तथा हिंसासे अपनी तथा दूसरों की भी रक्षा करे।
9. सर्वतोभावेन अपनी रक्षा करे।
10. सभी के साथ मित्रवत व्यवहार करे।
11. स्नातक को समावर्तन संस्कार से तीन दिनतक व्रत रखना चाहिये।
12. मांस न खाये तथा मिट्टी के बर्तन में जल न पीये।
13. मरणाशौच से युक्त व्यक्तियों का, शूद्र का तथा जननाशौच वाले लोगों का अन्न नहीं खाना चाहिये।
14. धूप में मल-मूत्र का त्याग न करे और न थूके।
15. रात्री में दीपक जलाकर ही भोजन करे, अंधकार में भोजन न करे।
16. सदा सत्य बोले, मिथ्या भाषण न करे।

पश्चात् अंत में स्नातक गुरु के चरणों में प्रणामकर ऐसा कहे **'एतान्नियमान् करिष्यामि'**मैं इन सभी नियमों कापालन करूंगा ।सभी कर्मों के पश्चात हाथों में पुष्प आदि लेकर श्रीभगवान का स्मरण पूर्वक समस्त कर्म उन्हें अर्पित करें।

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुध्यात्मना वा प्रकृतिस्वभावात्।
करोमि यद्यत सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयामि ।।

अभ्यास प्रश्न 2

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिये।

1. समावर्तन संस्कार के पश्चात होता है।

(क) विवाह संस्कार
(ख) केशांत संस्कार
(ग) अन्त्येष्टि संस्कार
(घ) इनमे से कोई नहीं

2. समावर्तन संस्कार को कहा जाता है।

(क) विवाह संस्कार
(ख) केशांत संस्कार
(ग) अन्त्येष्टि संस्कार
(घ) दीक्षांत संस्कार

3. समावर्तन संस्कार के अनन्तर गृहस्थधर्म में प्रवेश करके कैसे रहना चाहिये ? इसका उपदेश देते हैं।
(क) पिता
(ख) माता
(ग) देव
(घ) आचार्य

4. गुरुकुल में बालक वेदादि शास्त्रों की शिक्षा किससे प्राप्त करता ?
(क) आचार्य से
(ख) माता से
(ग) देवता से
(घ) स्वयं से

(2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए ।

1. ब्रह्मचारी बालक उपनयन संस्कार के पश्चात गुरुकुल में ---------- हेतु निवास करता है।
2. गुरुकुल में बालक वेदादि शास्त्रों की शिक्षा---------- से प्राप्त करता है।
3. माता में सर्वदा----------बुद्धि रखनी चाहिये।
4. समावर्तन संस्कार के द्वारा बालक की---------- पूर्ण होती है।

(3) सही गलत का चयन कीजिए ।

1. समावर्तन संस्कार शिक्षा प्राप्ति का दीक्षांत संस्कार है। ( )
2. स्नातक अपने बछड़े को दूध पिलाती हुई गाय के बारे में दूसरे से न कहे।( )
3. आचार्य में देव बुद्धि नहीं रखनी चाहिये। ( )
4. समावर्तन संस्कार का अर्थ है -'सम्यक् आवर्तनम्'। ( )

5.5 विवाह संस्कार की विधि एवं महत्त्व

भारतीय परंपरा में विवाह संस्कार सब संस्कारों में प्रमुख एवं महत्त्वपूर्ण माना जाता है। समावर्तन संस्कार के पश्चात विवाह संस्कार होता है। विवाह संस्कार के बाद ही ब्रह्मचर्य आश्रम की पूर्णता होती है ।विवाह संस्कार से श्रौत , स्मार्तनुष्ठान, कर्मों की अधिकारसिद्धि और धर्माचरण की योग्यता प्राप्त होती है। विवाह संस्कार में वर और कन्या दोनों के संस्कार का विधान है। विवाह दो आत्माओं का पवित्र बन्धन है। विवाह से पूर्व वरवरण होता है, जिसे लोक भाषा में तिलक या सगाई कहते हैं ।दो प्राणी अपने अलग-अलग अस्तित्वों को समाप्त कर एक सम्मलित इकाई का निर्माण करते हैं। मनुस्मृति में कहा गया है किआयु का द्वितीय भाग यानि 25 से 50 वर्ष तक का समय गृहस्थ आश्रम में व्यतीत करना चाहिये। **'द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत्'**गृहस्थाश्रम को अन्य तीनों आश्रमों की योनि कहा गया है । **'त्रयाणामाश्रमाणं तु गृहस्थो योनिरुच्यते'**गृहस्थाश्रम के विषय में यह तक कहा गया है कि

जिस प्रकार सभी जीव माता का आश्रय प्राप्त कर जीवित रहते हैं, ठीक उसी प्रकार सभी गृहस्थाश्रम का आश्रय पाकर जीवित रहते हैं।

यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः।
तथा गृहाश्रमं प्राप्य सर्वे जीवन्ति चाश्रमाः ।।

जिस प्रकार सभी आश्रमों का मूल गृहस्थाश्रम है। ठीक उसी प्रकार गृहस्थाश्रम का मूल स्त्री (पत्नी) है। **'गृहवासो सुखार्थो हि पत्नीमूलं च तत्सुखम्'**। मुहूर्तचिन्तामणि के अनुसार विवाह समय में विचारणीय प्रमुख बातें—

भार्या त्रिवर्गकरणं शुभशीलयुक्ता
शीलं शुभं भवति लग्नवशेन तस्याः।
तस्माद् विवाहसमयः परिचिन्त्यते हि
तत्रिघ्नतामुपगताः सुतशीलधर्माः ।।

अर्थात् - सुंदर विचार और शिष्टाचार वाली स्त्री, धर्म, अर्थ, और काम को देनेवाली होती है। उसका उस प्रकार का आचरण होना लग्न के वश में होता है। इसलिए विवाह समय में इसका विचार करना चाहिये, क्योंकि पुत्र, स्वभाव, आचरण और धर्म ये सब विवाह समय के ही अधीन हैं। मुहूर्तचिन्तामणि के अनुसार विवाह के मास—

मिथुनकुम्भमृगालिवृषाजगे मिथुनागेऽपि रवौ त्रिलवे शुचे।
अलिमृगाजगते करपीडनं भवति कार्तिकपौषमधुष्वपि ।।

अर्थात् -मिथुन, कुम्भ, मकर, वृश्चिक, वृष, मेष, इन राशियों के सूर्य में विवाह शुभ है और मिथुन के सूर्य में आषाढ़ शुक्ल की 10 तक शुभ है और वृहश्चिक का सूर्य होने पर कार्तिक में, मकर का सूर्य होने पर पौष में, मेष का सूर्य हो तो चैत में भी विवाह शुभ है। अर्थात इन महीनों में उक्त राशि में सूर्य होने पर भी विवाह होना शुभ है।

विवाह को सामान्यतया मानव जीवन की एक आवश्यक्ता माना गया है। वासना का दाम्पत्य जीवन में में तुच्छ और गौण स्थान है।विवाह गृहस्थाश्रयम में प्रवेश का संस्कार है और गृहस्थाश्रयम चारों आश्रमों का आधार है। मनुष्य पर तीन ऋण होते है – देव ऋण, ऋषि ऋण, और पितृ ऋण। समाज, राष्ट्र, ज्ञान-विज्ञान, और परिवार की सेवा के रूप में निवृति होती है। पितृ ऋण संतानोत्पत्ति के द्वारा वंश-परंपरा को बनाये रखने और बढ़ाते रहने से उत्तरता है। पिता , पितामह, भाई अथवा कुल का कोई व्यक्ति या माता इन सभी के अभाव होने पर कन्या दान के अधिकारी हैं। मातामह (नाना) तथा मामा को भी अधिकार है। किसी के न रहने पर राजा कन्यादान का अधिकारी होता है –**'यदा तु नैव कश्चित् स्यात् कन्या राजानमाव्रजेत्।'**

माता-पिता अपने पुत्र या पुत्री का विवाह करके ही पितृ ऋण से मुक्त हो पाते हैं। एकपत्नीव्रत तथा पातिव्रत यह भारतीय विवाह पद्धति की पवित्र देन है।हिन्दू विवाह मात्र लड़के-लड़की का कौन्ट्रेक्ट या अनुबन्ध नहीं है, यह तो पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाला स्थायी संबंध है। यहाँ तक की सात पीड़ियों तक के सुदूरवर्ती कुल की भी लड़की से विवाह संबंध स्थापित करना निषिद्ध है। लड़के और लड़की के विवाह योग्य हो जाने पर सर्व प्रथम लड़के और लड़की के कुलाचार एवं शील आदि की समानता देखी जाती है-

ययारेव समं वित्तं ययारेव समं कुलम्।
तयोर्मैत्री विवाहश्च न तु पुष्टिविपुष्टयोः ।।

विवाह संस्कार हेतु लड़के एवं लड़की के गोत्र आदि का मिलान किया जाता है। गौत्र मिलान में ध्यान रखने वाली बात यह है कि लड़के एवं लड़की के पिता का गौत्र एक नहीं होना चाहिये।विवाह में 'ऋषि गौत्र' नहीं अपितु 'कुल गौत्र' जिसे 'अवंटक' या 'अल्ल' आदि भी कहा जाता है वर्जित है। क्योंकि अवंटक वास्तव में किसी एक कुल का ही सूचक है। इसके विपरीत 'ऋषिगौत्र' किसी एक कुल के सूचक नहीं है। गोत्र या सपिण्ड्य के निर्णय के पश्चात जब यह देख लिया जाता है कि लड़के-लड़की की कुंडली के अनुसार कम से कम 22 गुण मिलने चाहिये। और दोनों में किसी भी प्रकार का शारीरिक एवं मानसिक दोष नहीं होना चाहिये। तब लड़की के पक्ष से लड़के वालों को विवाह प्रस्ताव भेजा जाता है। इसके पश्चात कन्या पक्ष और लड़के के पक्ष वाले एकमत होकर वाग्दान अथवा सगाई के रूप में इस प्रस्ताव को वैधानिक रूप दिया जाता है। विवाह संस्कार जितना महत्त्वपूर्ण है, उसका आयोजन व सम्पादन उतने ही उल्लास व धूमधाम के साथ किया जाता है। विवाह संस्कार का आरम्भ वाग्दान से होता है।साथ ही भारतीय हिन्दू-विवाह संस्कार में देवताओं और पित्रों का पूजन करके उनका आशीर्वाद प्राप्त किया जाता है। मातृकाओं की पूजन वंदना इत्यादि की जाती है। विवाह में वर को विष्णु स्वरूप मानकर उसे सर्वाधिक पूजनीय कहा गया है। इसलिए सर्वप्रथम मधुपर्क से उसकी की पूजा की जाती है। पाद्य, अर्घ, आचमनीय, विष्टर, मधुपर्क, तथा गोदान ये उसके सत्कार के अंग हैं। पश्चात संकल्प पूर्वक कन्यादान होता है, यह महादान कहा गया है। कन्यादाता को राजा वरुण की उपाधि दी गयी है। वर साक्षात नारायण और वधू साक्षात लक्ष्मी। भगवान को लक्ष्मी प्रदान कर जो पुण्य प्राप्त होता है। वही पुण्य कन्यादाता को प्राप्त होता है। पश्चात वर अग्नि देव की प्रदक्षिणा करके वधू को स्वीकार करता है, इसके बाद वैवाहिक अग्नि की स्थापना पूर्वक होम होता है। इस होम में वैदिक मंत्रों द्वारा दामपत्य जीवन को सुखमय, सफल तथा धर्म एवं यश से समुन्नत बनाने के लिये प्रार्थनाएँ की जाती हैं। वर वधू के सांगुष्ठ दक्षिण हस्त को ग्रहण करके गार्हस्थ्यधर्म को निभाने की प्रतिज्ञा तथा आजीवन साथ रहकर परस्पर सहयोग का वचन देता है। लाजाहोम में वधू पतिकुल और पितृकुल दोनों की मंगलकामना करती है, गार्हपत्य-अग्नि से पति के दीर्घजीवन की प्रार्थना करती है। आश्मारोहण में पति अपनी पत्नी के अविचल सौभाग्य की कामना करता है। अग्नि परिक्रमा में अग्नि देवता से शुभ आशीर्वाद प्राप्ति के लिए प्रार्थना की जाती है।उस समय उत्तम पतिव्रताओं कीगाथागान की भी परम्परा है। इससे वधू को स्वधर्म-निर्वाह की प्रेरणा मिलती है। सप्तपदी में पति-पत्नी के मांगलिक दृढ़ सख्य-सम्बन्ध की प्रतिष्ठा होती है। सप्तपदी के समय वर-वधू सदैव एक दूसरे के अनुकूल चलने की प्रतिज्ञा करते हैं। साथ ही ध्रुव अरुन्धती एवं सप्तऋषि के दर्शनों से आजीवन सम्बन्ध की सुदृढ़ता की तथा पातिव्रतधर्म पालन की प्रेरणा होती है।विवाह संस्कार वर-वधू दोनों के जीवन को मंगलमय बनाने तथा धर्माचरण करने की धार्मिक प्रक्रिया है। विवाह संस्कार की प्रत्येक क्रिया वैदिक मंत्रों से उपनिबद्ध है।विवाह संस्कार में अनेक कर्म हैं। कुछ प्रधान हैं, कुछ अंगभूत हैं और कुछ कुलपरम्परा के आचार्य से प्राप्त है। कन्याप्रतिग्रह, पाणिग्रहण, लाजाहोम, अश्मारोहण, सप्तपदी तथा जयादिहोम- प्रधान कर्म है। मधुपर्क, दिन में सूर्यावेक्षण, रात्रि मेंध्रुवावेक्षण, हृदयालम्भ, अभिषेक तथा चतुर्थी कर्म ये अंगभूत हैं। शाखोच्चार, ग्रंथिबंधन, अन्तः पटकरण, सिन्दूरदान इत्यादि आचार प्राप्त कर्म हैं। विवाह संस्कार मे कई कर्म होते हैं। पहले कर्मों में वह पिता के गोत्र की रहती है, परंतु जब पाणिग्रहण कर्म के अनंतर सप्तपदी पूर्ण हो जाती है तब कन्या का अपने पिता का गोत्र नहीं रहता, अपितु तब वह पति के

गोत्र की हो जाती है। पाणिग्रहण कर्म से वह च्युत हो जाती है और सप्तपदी के सात पदों के अनुक्रम के अनंतर उसे पति के गोत्र की प्राप्ति हो जाती है।

कन्या का पिता वर से इस प्रकार प्रार्थना करता है कि स्वर्णाभूषणों से विभूषित तथा स्वर्ण सदृश आभावली इस पवित्र कन्या को मैं विष्णु स्वरूप आप वर को देता हूँ। प्रार्थना-

कन्याकनकसम्पन्नां कनकाभरणैर्युताम्।
दास्यामि विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मलोकजिगीषया।।
विश्वम्भरः सर्वभूताः साक्षिण्यः सर्वदेवताः।
इमां कन्यां प्रदास्यामि पितृणां तारणाय च।।

मनुस्मृति में कहा गया है कि पति-पत्नी दोनों का जीवनपर्यन्त धर्म, अर्थ तथा काम के विषय में व्यभिचार नहीं होना चाहिये और त्रिवर्ग के साधनों में पार्थक्य न हो, दोनों आपनी मर्यादा में रहकर शस्त्रों में वर्णित कर्मों का अनुष्ठान करें। विवाह किये स्त्री-पुरुष को एसा प्रयत्न करना चाहिये कि वे धर्म,अर्थ, तथा काम विषयक कार्यों में कभी भी एक दूसरे से अलग न हों।

अन्योन्यस्याव्यभिचार भवेदामरणान्तिकः।
एषः धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रिपुंसयोः परः।।
तथा नित्यं यतेयातां स्त्रिपुंसौ तु कृतक्रियौ।
यथा नाभिचरेतां तौ वियुक्तावितरेतरम्।।

मनुस्मृति में बताया गया है कि गृहाश्रमी को चाहिये कि वह विवाह के समय लाई गयी या घर में प्रतिष्ठित अग्नि में विधिपूर्वक गृहस्थ कर्म प्रातः-सांय हवन आदि कर्म, पंचमहायज्ञ, बलिवैश्वदेव और प्रतिदिन की रसोई करे –

वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्म यथाविधि।
पञ्चयज्ञविधानं च पङ्क्ति चान्वाहिकिं गृही।।
वैश्वदेवस्य सिध्दस्य गृह्येऽग्नौ विधिपूर्वकम्।
आभ्यः कुर्याद् देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम्।।

गृहस्थ को श्रोत एवं स्मार्त कर्मों का सम्पादन करना पड़ता है। स्मार्तकर्मों का सम्पादन विवाह अग्नि में संपादित होते हैं तथा श्रोतकर्मों का सम्पादन त्रेताग्नि में होता है।

स्मार्तं वैवाहिके वह्नौ श्रौतं वैतानिकाग्निषु।(व्यासस्मृति २/१६)

अभ्यास प्रश्न 3

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिये।

1.मनुस्मृति में कितने वर्ष विवाह आश्रम में व्यतीत करने चाहिये।

(क) 25 से 40

(ख) 20 से 50

(ग) 25 से 50

(घ) 25 से 55

2. समावर्तन संस्कार के पश्चात कौन सा संस्कार होता है ?

(क) विवाह

(ख) केशांत

(ग) यज्ञोपवीत

(घ) इनमे से कोई नहीं

3. विवाह के लिए लड़के-लड़की की कुंडली के अनुसार कम से कम कितने गुण चाहिये ?

(क) 10

(ख) 15

(ग) 20

(घ) 22

4. गृहस्थाश्रम को अन्य तीनों आश्रमों की----------कहा गया है।

(क) गुण

(ख) कारण

(ग) योनि

(घ) इनमे से कोई नहीं

(2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए ।

1. मनुस्मृति में कहा गया है कि आयु का---------भाग गृहस्थ आश्रम में व्यतीत करना चाहिये।

2. विवाह हेतु लड़के एवं लड़की की कुंडली में ----------गुण मिलने चाहिये।

3. विवाह संस्कार में वर और ---------- दोनों के संस्कार का विधान है।

4. गृहस्थ को---------- एवं स्मार्त कर्मों का सम्पादन करना पड़ता है।

(3) सही गलत का चयन कीजिए ।

1. विवाह संस्कार से श्रौत, स्मार्तनुष्ठान, कर्मों की अधिकारसिद्धि और धर्माचरण की योग्यता प्राप्त होती है। ( )

2. मनुस्मृति में कहा गया है कि आयु का द्वितीय भाग यानि 20 से 55 वर्ष तक का समय गृहस्थ आश्रम में व्यतीत करना चाहिये। ( )

3. सप्तपदी के समय वर-वधू सदैव एक दूसरे के अनुकूल चलने की प्रतिज्ञा करते हैं। ( )

4. विवाह के लिये की कुंडली के अनुसार कम से कम 15 गुण मिलने चाहिये। ()

5.6 अन्त्येष्टि संस्कार की विधि एवं महत्त्व

भारतीय संस्कृति यज्ञ आदर्शों की संस्कृति है। जीवन यापन करने का सही तरीका यह है कि जीवन को यज्ञीय आदर्शों के अनुरूप यापन किया जाए और जीवन की समाप्ति भी यज्ञ आयोजन में ही होनी चाहिये ।अन्त्येष्टि शब्द दो पदों के योग से बना है,अन्त्य और इष्टिका। अन्त्य का अर्थ है अंतिम तथा इष्टिका का अर्थ है यज्ञ अर्थात मृत्यु के अनंतर जीव की सद्गति हेतु किया जाने वाला संस्कार अन्त्येष्टि संस्कार कहलाता है। इसी संस्कार को अंत्यकर्म,पितृमेध तथा पिण्डपितृयज्ञ भी कहा गया है।

वर्तमान समय में अन्त्येष्टि संस्कार भी अन्य संस्कारों जैसा दिखावा बनकर रह गया है। जबकि इस संस्कार को गरिमा दी जानी चाहिये। मृतात्मा की सद्गति के लिए किये जाने वाले कर्मकाण्ड के समय, उसे कराने वाले पुरोहित, करने वाले सम्बन्धी तथा उपस्थित हितैषियों आदि सभी का भावनात्मक एकीकरण किया जाना आवश्यक है ।महर्षि याज्ञवल्क्य जी ने कहा है कि द्विजों के गर्भाधान से लेकर श्मशान तक के संस्कार मंत्र पूर्वक करने चाहिये –

'ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा वर्णास्त्वाद्यास्त्रयो द्विजाः। निषेकाद्याः श्मशानान्तास्तेषां वै मन्त्रतः क्रियाः ।।' शरीरी समाप्त होने के पश्चात यह संस्कार शरीर के द्वारा ही होता है। संस्कृत अग्नि से शरीर के दाह से आत्मा की परलोक मे सद्गति होती है। यह संस्कार दो रूपों में सम्पन्न किया

जाता है, पहला मरणासन्न अवस्था का है, और दूसरा मृत्यु के पश्चात अस्थि संचयन तक किया जाने वाला कर्म है । अतः मृतक का अन्त्येष्टि संस्कार यथाविधि अवश्य करना चाहिये । अन्त्येष्टि संस्कार को प्रेम और सम्मान के साथ सम्पन्न किया जाना चाहिये। इस संस्कार का हर कार्य ठीक ढंग से ठीक व्यवस्था एवं सावधानी के साथ करना चाहिये। इस संस्कार के समय शोक का वातावरण होता है । अधिकांश व्यक्ति ठीक प्रकार सोचने-करने की स्थिति में नहीं होते, इसलिए व्यवस्था पर विशेष ध्यान देना पड़ता है । अनुभवी एवं संतुलित बुद्धि वाले व्यक्तियों को इसके लिए सहयोग के रूप में नियुक्त कर लेना चाहिये ।जीवन के अंतिम क्षण में गोदान, भूमिदान, तिलदान,स्वर्णदान, घृतदान, वस्त्रदान, धान्यदान, गुड़दान, चाँदीदान तथा लवणदान का विशेष महत्त्व है। यदि प्रत्यक्ष वस्तु न हो तो उसका निष्क्रय द्रव्य रखकर संकल्प करना चाहिये ।मरणासन्न व्यक्ति के हाथ से ये दान कराने चाहिये । यदि यह सम्भव न हो तो उत्तराधिकारी या प्रतिनिधि इस कार्य के सम्पन्न कर सकते है। महाभारत में भी कहा गया है कि यह दस दान पापी मनुष्य को भी तार देते हैं। **'हिरण्यदानं गोदानंपृथिवीदानमेव च। एतानि वै पवित्राणि तारयन्त्यपि दुष्कृतम् ।'** गरुडपुराण में भी बताया गया है कि ये दान जीव को परलोक में भी सुख पहुँचाते हैं- **'महादानेषु दत्तेषु गतस्तत्र सुखी भवेत् ।'**प्रत्येकदान अत्यंत पवित्र करने वाला है –**'एकैकं पावनं स्मृतम्'**इन दानों का महत्त्व गयादान से भी अधिक है। यदि ये दान नहीं दिये गये तो प्राणी को बहुत कष्ट से यममार्ग में यात्रा करनी पड़ती है। मरणासन्न व्यक्ति के लिए शस्त्रों अंतिम समय में गोदान करने तथा पंचधेनु दान करने का विशेष महत्त्व है ।मरणासन्न व्यक्ति के द्वारा गोदान करने का विशेष मनत्व है । यदि प्रत्यक्ष गोदान करने में असमर्थ हो तो संकल्प पूर्वक गोनिष्क्रय द्रव्य का दान करना चाहिये। शस्त्रों में पंचधेनु (ऋणधेनु, पापापनोदधेनु, उत्क्रान्तिधेनु, वैतरणीधेनु, मोक्षधेनु) के दान की व्यवस्था है।

1. ऋणापनोधेनु- देव-ऋण, पितृ ऋण, तथा मनुष्य ऋण एवं अन्य ऋणों से उऋण होने के लिये ऋणापनोधेनु का दान किया जाता है।
2. पापापनोदधेनु- ज्ञात-अज्ञात पापों से छुटकारा पाने के लिये पापापनोदधेनु का दान किया जाता है।
3. उत्क्रान्तिधेनु- अंतिम समय में प्राणोत्सर्ग में अत्यधिक कष्ट की अनुभूति होती है, सुख पूर्वक प्राण निकले, इसके लिये उत्क्रान्तिधेनु का दान होता है।
4. वैतरणीधेनु – यममार्ग मे स्थित घोर वैतरणी नदी को बिना कष्ट के पार करने के लिये वैतरणी धेनु का दान होता है।
5. मोक्षधेनु- मोक्ष प्राप्ति के लिये मोक्ष धेनु का दान किया जाता है।

प्रत्यक्ष गौ देना हो तो सर्वप्रथम उसकी पूजा कर लें । यदि निष्क्रय द्रव्य देना हो तो गो का मानसिक पूजन कर प्रार्थना करें –

नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च।
नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः ।।

प्रार्थना के पश्चात त्रिकुश, तिल, जल, पुष्प और दक्षिणा लेकर यदि निष्क्रय द्रव्य से करना हो तो वह द्रव्य भी साथ में ले लें और गोदान का संकल्प करें। इसके पश्चात मरणासन्न अवस्था के दानादि कृत्य करने के बाद दाहकर्ता क्षौर एवं स्नान करके शव का संस्कार करे और अर्थी बनवा ले। मृतक के लिये नये वस्त्र, शय्या, उस पर बिछाने-उढ़ाने के लिए कुश एवं वस्त्र तैयार रखें। मृतक शय्या की सज्जा के लिए पुष्प आदि उपलब्ध कर लें ।शव का सिरहाना उत्तर

अथवा पूर्व की ओर करने का वचन है, किन्तु परंपरा से उत्तर की ओर सिरहाना करना प्रशस्त है । स्नान कराने के लिए घड़े में जल भरकर उसमें गंगादि तीर्थ जलों की भावना करें । पश्चात इस जल से शव को स्नान करायें नये वस्त्र (कौपीन) पहना दें । गोघृत का लेप करें । द्विज हो तो नया यज्ञोपवीत भी पहना दें । फूल और तुलसी की माला पहना दें । कर्पूर, अगर, कस्तूरी , आदि सुगंधित द्रव्यों से सारे शरीर में लेप कर दें । मुख , दोनों कानों , दोनों नासा छिद्र में सोना डाल दें । सुवर्ण के अभाव में घृत की बूंदें डाल दें । कपड़े से पैर की अंगुली से लेकर सारा शरीर ढक लें । तलवा खुला रखें । अर्थी को अलंकृत कर कुश या कुशासन बिछाकर उत्तर की ओर सिर करके लिटा दें ।पिण्डदान के लिये जौ का आटा एवं जौ, तिल, चावल, आदि मिलाकर तैयार कर लें । यदि जौ का आटा न मिले, तो गेहूँ के आटे में जौ मिलाकर गूँध लिया जाता है । कई स्थानों पर संस्कार के लिए अग्नि घर से ले जाने का प्रचलन होता है । यदि ऐसा हो तो उसकी व्यवस्था कर ली जाये । तदनंतर मृत्यु स्थान से अस्थि संचयन तक के लिये पिण्डदान करने के लिये जौ के आटे आदि से छः पिण्डों को बना लें ।यह छः पिण्डदान अलग-अलग स्थानों पर दिए जाते हैं । पहला पिण्डदान जिस स्थान पर मृत्यु हुई हो, उस स्थान पर किया जाता है । दूसरा पिण्डदान घर के दरवाजे पर किया जाता है । तीसरा पिण्डदान श्मशान मार्ग के चौराहे पर किया जाता है । चौथा पिण्डदान विश्राम स्थान पर किया जाता है । पाँचवा काष्ट चयन (चितास्थान) पर किया जाता है । तथा छटा पिण्डदान दाहस्थान पर दिया जाता है । पश्चात स्नान कर प्रेत के उद्देश्य से तिलतोयांजलि प्रदान करें । जा श्मशान से वापस घर लौटें तो गृह द्वार पर अग्नि आदि का स्पर्श करके ही घर में प्रवेश करें । जीव के उद्देश्य से दस दिनों तक दीप एवं घट दान करें । औरदशगात्र के दस पिण्डों को प्रदान करें । आगे एकादशाह तथा सपिण्डीकरण के श्राद्ध आदि करें । वर्ष अनंतर वार्षिक श्राद्ध तथा महालय में मृत्यु तिथि पर पार्णव श्राद्ध करें । जीव की सद्गति के लिए पुत्र को गया श्राद्ध आदि करने का विधान है । देवीभागवत पुराण में कहा भी गया है कि पुत्र की सर्थकता इसमें है कि वह जीते-जी माता-पिता की आज्ञा का पालन करे, उनकी सेवा करे । उनका शरीर पूर्ण हो जाने पर क्षयाह तिथि को उनके निमित्त ब्राह्मण भोजन कराये और गया में जाकर के उनके निमत्त पिण्डदान करें ।

जीवतो वाक्यकरणात् क्षयाहे भूरिभोजनात् ।
गयायां पिण्डदानाच्च त्रिभि: पुत्रस्य पुत्रता ।।

पंचक मृत्यु पर विचार धनिष्ठार्ध, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, और रेवती इन पाँच नक्षत्रों को पंचक नक्षत्र कहा जाता है । पंचक नक्षत्र में मृत्यु होने पर कुशों की पाँच प्रतिमा (पुत्तल) बनाकर शव के साथ ही इनका भी दाह किया जाता है । यदि मृत्यु पंचक के पूर्व हो तो और दाह पंचक में हो तो केवल पुत्तलों का विधान करें । पंचकशान्ति की आवश्यकता नहीं रहती । और यदि पंचक में मृत्यु हो और दाह पंचक के बाद हो तो केवल पंचक शांति करें । यदिमृत्यु भी पंचक में हो, और दाह भी पंचक में हो तो पुत्तलदाह तथा शांति दोनों कर्म करें ।

5.7 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों !

आपने इस इकाई में केशान्त-समावर्तन-विवाह-अन्त्येष्टि संस्कार विधि एवं महत्त्व का भली-भांति से अध्ययन किया । आपने जाना कि केशान्त संस्कार समावर्तन संस्कार से पूर्व किया जाता है । विद्यार्थी विद्याध्ययन के लिए गुरुकुल या गुरु के आश्रम में जाते हैं । वहाँ वे

ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं साथ ही विद्याध्ययन पूर्ण होने तक विद्यार्थी केश नहीं कटवाता ब्रह्मचर्याश्रम में रहते हुए 25 वर्ष की आयु तक बाल कटवाना निषिद्ध है। किन्तु समावर्तन से पूर्व ब्रह्मचारी को दाढ़ी, मूछ आदि कटवा लेने का विधान किया गया है ।पश्चात आपने समावर्तन संस्कार का अध्ययन किया कि समावर्तन संस्कार शिक्षा प्राप्ति का दीक्षांत संस्कार है। ब्रह्मचारी बालक उपनयन संस्कार के पश्चात गुरुकुल में विद्याध्यायन हेतु निवास करता है । गुरुकुल में बालक वेदादि शास्त्रों की शिक्षा आचार्य से प्राप्त करता है । समावर्तन संस्कार के द्वारा बालक की शिक्षा पूर्ण होती है । साथ ही आपने विवाह संस्कार के बारे में भी जाना कि समावर्तन संस्कार के पश्चात विवाह संस्कार होता है। विवाह संस्कार के बाद ही ब्रह्मचर्य आश्रम की पूर्णता होती है ।विवाह संस्कार से श्रौत , स्मार्तनुष्ठान, कर्मों की अधिकारसिद्धि और धर्माचरण की योग्यता प्राप्त होती है। विवाह संस्कार में वर और कन्या दोनों के संस्कार का विधान है। विवाह दो आत्माओं का पवित्र बन्धन है। विवाह से पूर्व वरवरण होता है, जिसे लोक भाषा में तिलक या सगाई कहते हैं। दो प्राणी अपने अलग-अलग अस्तित्वों को समाप्त कर एक सम्मलित इकाई का निर्माण करते हैं। मनुस्मृति में कहा गया है कि आयु का द्वितीय भाग यानि 25 से 50 वर्ष तक का समय गृहस्थ आश्रम में व्यतीत करना चाहिये। **'द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत्'** गृहस्थाश्रम को अन्य तीनों आश्रमों की योनि कहा गया है । अन्त में आपने अंतेष्टि संस्कार के बारे में अध्ययन किया कि शरीरी समाप्त होने के पश्चात यह संस्कार शरीर के द्वारा ही होता है। संस्कृत अग्नि से शरीर के दाह से आत्मा की परलोक मे सद्गति होती है। यह संस्कार दो रूपों में सम्पन्न किया जाता है, पहला मरणासन्न अवस्था का है, और दूसरा मृत्यु के पश्चात अस्थि संचयन तक किया जाने वाला कर्म है । अतः मृतक का अन्त्येष्टि संस्कार यथाविधि अवश्य करना चाहिये। अन्त्येष्टि संस्कार को प्रेम और सम्मान के साथ सम्पन्न किया जाना चाहिये। इस संस्कार का हर कार्य ठीक ढंग से ठीक व्यवस्था एवं सावधानी के साथ करना चाहिये । इस संस्कार के समय शोक का वातावरण होता है। अधिकांश व्यक्ति ठीक प्रकार सोचने-करने की स्थिति में नहीं होते, इसलिए व्यवस्था पर विशेष ध्यान देना पड़ता है । अनुभवी एवं संतुलित बुद्धि वाले व्यक्तियों को इसके लिए सहयोग के रूप में नियुक्त कर लेना चाहिये । जीवन के अंतिम क्षण में गोदान, भूमिदान, तिलदान,स्वर्णदान, घृतदान, वस्त्रदान, धान्यदान, गुड़दान, चाँदीदान तथा लवणदान का विशेष महत्त्व है। यदि प्रत्यक्ष वस्तु न हो तो उसका निष्क्रय द्रव्य रखकर संकल्प करना चाहिये। मरणासन्न व्यक्ति के हाथ से ये दान कराने चाहिये । यदि यह सम्भव न हो तो उत्तराधिकारी या प्रतिनिधि इस कार्य को सम्पन्न कर सकते है। महाभारत में भी कहा गया है कि यह दस दान पापी मनुष्य को भी तार देते हैं ।**'हिरण्यदानं गोदानंपृथिवीदानमेव च। एतानि वै पवित्राणि तारयन्त्यपि दुष्कृतम्।'** इस प्रकारआपने इन चारों संस्कारों का इस इकाई में भली-भांति भांति अध्ययन किया।

5.8 पारिभाषिक शब्दावली

स्वर्ण	-	सोना
सदृश	-	समान
उत्तराधिकारी	-	किसी की मृत्यु के बाद उसकी संपत्ति पाने का अधिकारी
निवृति	-	मुक्ति , छुटकारा
प्रशस्त	-	प्रशंसा योग्य

इष्टिका	-	यज्ञ
प्रतिनिधि	-	किसी के स्थान पर कार्य करने वाला व्यक्ति
पाणिग्रहण	-	स्त्री को पत्नी रूप में स्वीकारने हेतु उसका हाथ पकड़ना।
दर्पण	-	शीशा
धर्माचरण	-	धर्म के अनुसार आचरण
निष्क्रय	-	वह धन जो किसी पदार्थ के बदले दिया जाये
सम्मलित	-	मिलाया हुआ या सामूहिक
संचयन	-	जमा होना या इकट्ठा करना

अभ्यास प्रश्न 4

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिये।

1. इष्टिका शब्द का अर्थ है।

(क) दान

(ख) कर्म

(ग) यज्ञ

(घ) इनमे से कोई नहीं

2. देव-ऋण, पितृ ऋण, तथा मनुष्य ऋण एवं अन्य ऋणों से उऋण होने के लिये किस का दान किया जाता है।

(क) ऋणापनोधेनु

(ख) पापापनोदधेनु

(ग) वैतरणीधेनु

(घ) इनमे से कोई नहीं

3. पंचक नक्षत्रों की संख्या है।

(क) एक

(ख) दो

(ग) तीन

(घ) पाँच

4. पंचक नक्षत्र है।

(क) अश्वनी

(ख) भरणी

(ग) रेवती

(घ) इनमे से कोई नहीं

(2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए ।

1. पंचक नक्षत्र में मृत्यु होने पर ----------की पाँच प्रतिमा (पुत्तल) बनाकर शव के साथ ही इनका भी दाह किया जाता है।

2. संस्कृत अग्नि से शरीर के दाह से आत्मा की ---------मे सद्गति होती है।

3. यममार्ग मे स्थित घोर वैतरणी नदी को बिना कष्ट के पार करने के लिये---- का दान होता है।

4. शरीर समाप्त होने पर ----------संस्कार किया जाता है।

(3) सही गलत का चयन कीजिए ।

1. जीवन के अंतिम क्षण में गोदान, भूमिदान, तिलदान, स्वर्णदान, घृतदान, वस्त्रदान, धान्यदान, गुड़दान, चाँदीदान तथा लवणदान का विशेष महत्त्व है। ( )
2. वर्तमान समय में अन्त्येष्टि संस्कार भी अन्य संस्कारों जैसा दिखावा बनकर रह गया है। ( )
3. यदि मृत्यु पंचक के पूर्व हो तो और दाह पंचक में हो तो केवल पुत्तलों का विधान करें। ( )
4. विवाह संस्कार से श्रौत , स्मार्तनुष्ठान, कर्मों की अधिकारसिद्धि और धर्माचरण की योग्यता प्राप्त होती है। ( )

5.9अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1 – 1 क, 2 ख, 3 घ, 4 ग

2 – 1 बाइसवें, 2 शुक्ल पक्ष, 3 सोलहवें, 4 ब्रह्मचर्य में

3 – 1 सही, 2 सही, 3 गलत, 4 सही

अभ्यास प्रश्न 2

1 – 1 क, 2 घ, 3 घ, 4 क

2 – 1 विद्याध्ययन, 2 आचार्य, 3 देव, 4 शिक्षा

3 – 1 सही, 2 सही, 3 गलत, 4 सही

अभ्यास प्रश्न 3

1 – 1 ग, 2 क, 3 घ, 4 घ

2 – 1 द्वितीय, 2 बाईस, 3 कन्या, 4 श्रोत

3 – 1 सही, 2 गलत, 3 सही, 4 गलत

अभ्यास प्रश्न 4

1 – 1 ग, 2 क, 3 घ, 4 ग

2 – 1 कुशों, 2 परलोक, 3 वैतरणी धेनु, 4 अंत्येष्ठी

3 – 1 सही, 2 सही, 3 सही, 4 सही

5.10 संदर्भ सूची ग्रंथ

1. संस्कारप्रकाश गीतप्रेस, गोरखपुर
2. संस्कार प्रकाश – डॉ मंडन मिश्र प्रधान सम्पादक, लेखक भवानीशंकर त्रिवेदी
3. यज्ञवल्क्यस्मृति: - डॉ गङ्गासागर राय
4. मनुस्मृति – शिवराज आचार्य: कौण्डिन्न्यानः
5. मुहूर्तचिन्तामणि – ज्योतिषाचार्य पं उमाशंकर शुक्ल

5.11अन्य सहायक पुस्तकें

1. कर्मकाण्ड भास्कर- श्रीराम आचार्य
2. बृहदकर्मकाण्ड

5.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. विवाह संस्कार का विस्तृत विवेचन कीजिये।
2. अन्त्येष्टि संस्कार का वर्णन कीजिये।
3. समावर्तन संस्कार से आप क्या समझते हैं ? विस्तार से वर्णन कीजिये।